इलाहाबाद यूनिवर्सिटी को डी० फ़िल० उपाधि के लिए

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी के निर्देशन में

प्रस्तुत प्रबन्ध

छायावादयुगीन काव्यभाषा का निराला के विशेष सन्दर्भ में अध्ययन

कु० रेखा खरे

हिन्दी विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

१९७३

विषय - सूची

पृष्ठ

है, जिसका जीवन्त साक्ष्य प्रस्तुत करती है उनकी काव्यभाषा। काव्यभाषा को लेकर निराला के मानस में रचनात्मक बेचैनी उनकी विविध भाषा-रूपों में देखी जा सकती है। व्यक्ति के रूप में ही नहीं वह बहुत बातों से उपेक्षित रहे, कवि के रूप में भी उनकी प्रतिभा को बहुत समय तक नहीं पहचाना गया।" बाहर मैं कर दिया गया हूँ। भीतर, पर, भर दिया गया हूँ " में कवि के मानसिक द्वन्द्व की ध्वनि सुनी जा सकती है।

निराला के सूक्ष्म-संश्लिष्ट सृजन की ओर कुछ ही समीक्षकों का ध्यान गया। डॉ० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक " निराला " (१९५८ ई०) में कवि की रचनात्मक क्षमता को उजागर करने की पहल की। निराला पर अपनी नई पुस्तक " निराला की साहित्य साधना " खण्ड १ में वे मुख्यतया जीवन-रेखा की भावभूमि से अनुप्राणित रहे हैं, वैसे निराला के कवि रूप को प्रतिष्ठित करने की उनकी प्रवृत्ति देखी जा सकती है।" क्रांतिकारी कवि निराला " (सं० २००४) में डॉ० बच्चनसिंह ने निराला के उन्मुक्त काव्य-व्यक्तित्व को विवृत करने की कोशिश की है। निराला पर उल्लेखनीय पुस्तक " निराला और नवजागरण " (१९६५ ई०) में डॉ० राम रतन भटनागर ने निराला की काव्यभाषा-विषयक पैनी समझ की ओर कई स्थलों पर संकेत दिये हैं - " एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दिशा निराला की काव्यभाषा से संबंधित है। काव्यभाषा के क्षेत्र में उनके प्रयोग शिखर तक पहुँचे हैं और इससे उनके काव्य में खड़ीबोली की काव्यभाषा के विकास का सारा इतिहास समाहित हो गया है " - (पृ० ४१७)। नये समीक्षकों में रमेशचन्द्र शाह ने अपने छिटपुट लेखों में ही सही, निराला की भाषा-चेतना पर बढ़िया टिप्पणी की है, " भाषा की काव्यमुक्ति क्यों होती है और कैसे होती है, यह हम निराला से सीख सकते हैं -" (आलोचना, अक्टूबर-दिसम्बर, १९७० ई० " भाषा की काव्यमुक्ति " शीर्षक लेख)। दूधनाथ सिंह की पुस्तक " निराला : आत्महंता आस्था " में निराला की कविताओं के आंतरिक संघटन को समझने की आकुलता है, लेकिन वह मुख्यतया कवि की अपनी भावभूमि से परिचालित है।

इस दृष्टि से निराला के काव्य-सृजन के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष को प्रस्तुत अध्ययन में लिया गया है । निराला की काव्यभाषा, अपनी विविध स्तरीयता और अर्थ-अनुभूति में स्वतंत्र अध्ययन का विषय बन सकती है और बननी भी चाहिए । इस दिशा में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने संकेत किया था - " वास्तव में निराला की काव्यभाषा एक स्वतंत्र शोध का विषय है ।" - (" कवि निराला , पृ० ११२")

किन्तु इस अध्ययन में समग्र छायावादी काव्यभाषा को समाविष्ट किया गया है, इस आशा से कि यह विषय अधिक संश्लिष्ट , व्यापक और सम्पूर्ण हो सके । छायावाद खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा की व्यस्कता का काल है, और इस माने में अध्ययन के इस कोण का एक ऐतिहासिक संदर्भ है ।

अध्याय सं० ३,४,५,६ में इस दृष्टि से प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी - छायावाद के " कवि- चतुष्टय " - की काव्यभाषा का अलग-अलग विवेचन किया गया है । अंत में निराला की कुछ चुनी हुई कविताओं का काव्यभाषा के संदर्भ में व्यावहारिक और अपेक्षया विस्तृत अध्ययन है । प्रारंभिक अध्याय काव्यभाषा संबंधी प्रमुख मान्यताओं की ओर संकेत करता है ।

अध्याय २ और ७ के विषय में कुछ कहना शेष रह जाता है । अध्याय २ में आधुनिक युग में खड़ीबोली हिन्दी काव्यभाषा के विकास की चर्चा हुई है । इस अपेक्षाकृत वर्णनात्मक पक्ष पर भी काव्यभाषा-विषयक शोध-प्रबंध होने के कारण अधिकतर रचनात्मक दृष्टि से ही विचार किया गया है । इसीलिए यहाँ ऐतिहासिक और तथ्यपरक दृष्टि उतनी नहीं मिलेगी, जितनी कि रचनात्मक । वर्णनात्मक पद्धति पर विशद विवेचन डॉ० शितिकंठ मिश्र अपने शोध-प्रबंध " खड़ीबोली का आंदोलन " में कर चुके हैं ।

अध्याय ७ में छायावादी काव्यभाषा के स्वरूप की चर्चा हुई है । छायावाद के प्रमुख कवि चार हैं - प्रसाद, निराला , पंत और महादेवी । उनकी काव्यभाषा पर अलग-अलग विचार किया गया है । निराला क्योंकि विशेष

"छंद" में है, क्योंकि उनकी काव्यभाषा की चर्चा अंतिम अध्याय में उनकी कविताओं की विराट रूप में चर्चा हुई है। छायावाद विषयक सामान्य अध्याय (७) में पुनरुक्ति से बचने के लिए छायावादी काव्यभाषा की प्रमुख विशेषताओं का ही विश्लेषण किया गया है, बहुत से अन्य तत्व तो कवियों की काव्यभाषा विषयक अध्यायों (३, ४, ५, ६) में विवेचित हो चुके हैं। रामकुमार वर्मा, रामेश्वर शुक्ल "अंचल", भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा प्रभृति कवि छायावाद के प्रभाव-क्षेत्र में आते हैं पर छायावादी परिवेश से निकट रूप में वे संबद्ध नहीं रहे और छायावादी काव्यभाषा में गुणात्मक उन्मेष भरने की कोशिश भी उनमें नहीं देखी जाती। फलतः इन कवियों की काव्यभाषा पर सामूहिक रूप में ही विचार किया गया है।

मेरे निदेशक आदरणीय डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने प्रबंध की देख-रेख जिस आत्मीयता के साथ की है, जो सिर्फ समझा जा सकता है, उसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता। अपने विशिष्ट स्नेह और सौजन्य से उन्होंने मुझे भी इस स्थिति में ही नहीं रखा है कि मैं उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के औपचारिक ढंग का अवलंबन ले सकूँ।

रेखा सेठ

अध्याय – १

काव्यभाषा : प्रकृति और प्रक्रिया

काव्यभाषा के आधार पर काव्य के मूल्यांकन की पद्धति जहाँ अधिकतम संभव रूप में वस्तुनिष्ठ है, वहीं अधिकतम संश्लेषण में सर्जनात्मक है, क्योंकि जहाँ सामान्य व्यवहार में शब्द 'शब्द मात्र' रहते हैं, वहीं काव्य में कवि के अनुभव-विशेष से संयुक्त होने के कारण वे विशिष्ट प्रयोग बन जाते हैं। काव्यभाषा में सामान्य और विशेष का रचनात्मक संश्लेष होता है। इस रूप में वह कवि की अनुभावन-क्षमता की परिचायक और एक सीमा तक उसकी संवेदना की नियामक और अनुशासक भी है।

काव्यभाषा आधुनिक युग में साहित्य-चिन्तन की नयी दिशा है। यों तो व्याकरण, शैली-विज्ञान, अलंकार-शास्त्र में भी भाषा का अध्ययन होता है, पर वहाँ दृष्टि अलग है। वैयाकरण तो स्पष्टतः भाषा के सर्जनात्मक पक्ष से कुछ लेना-देना नहीं रखता, वह तो किसी भाषा के आधार-रूप को ही अपने अध्ययन का विषय बनाता है। इस तरह कविता में भाषिक सृजन की समस्या का अध्ययन उसके विषय-क्षेत्र से बाहर की चीज़ है। शैली-विज्ञान भाषाविज्ञान की नई दिशा है, जिसमें कविता का विश्लेषण एक विशिष्ट पद्धति के अनुसार होता है। कविता में प्रयुक्त एक-एक शब्द का संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, लिंग, वचन, काल आदि खण्डों में वर्गीकरण करके इस तरह व्याकरणिक संबंधों का विश्लेषण किया जाता है कि कविता की आंतरिक संघटना को समझना मुश्किल हो जाता है, अनुभव के वैशिष्ट्य की पकड़ छूट जाती है। अलंकार-शास्त्र में भी कविता का भाषिक विश्लेषण सृजन के धरातल पर नहीं होता, अलंकारों को केन्द्र में रखनेवाली दृष्टि कविता के रचनात्मक अनुभव को टटोल नहीं पाती, क्योंकि अलंकार साधारणतः काव्यभाषा में पर्यवसित नहीं हो पाते। खासतौर से आधुनिकयुगीन चमत्कार-विमुख काव्य की कविता का विश्लेषण अलंकार-शास्त्र के सिद्धांतों के आधार पर यों भी नहीं हो सकता।

आधुनिक युग में अंग्रेज़ी और अमेरिकन समीक्षकों ने काव्यभाषा के सर्जनात्मक पक्ष को लेकर गंभीर विचार किया है। ओवेन बारफ़ील्ड ने अपनी पुस्तक 'द पोएटिक डिक्शन' (१९२८ ई०) में काव्यभाषा को लेकर कुछ मौलिक मान्यताएँ प्रस्तुत की हैं, यों पूरी पुस्तक की दृष्टि आधुनिक नहीं है। एम्पसन ने अपने क्लासिक ग्रन्थ " सेवेन टाइप्स ऑव एम्बीग्विटी " (१९३० ई०) में भाषा की अनेकार्थता ('एम्बीग्विटी') को केन्द्र में रखा है और सात प्रकारों में उसका विश्लेषण किया है। अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि और समीक्षक आर्चिबाल्ड मैकलीश ने " पोएट्री ऐंड एक्सपीरियन्स " (१९६०) नामक पुस्तक में मुख्यतया कवि की रचनात्मक भावभूमि पर कविता में भाषिक सृजन की समस्या पर विचार किया है। पहले दो अध्यायों में शब्दों की अर्थवत्ता पर व्यावहारिक धरातल से जुड़कर सधे ढंग से उन्होंने विचार व्यक्त किए हैं। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है - स्टीफेन मलार्मे की सिर्फ़ ध्वनि के रूप में शब्दों को देखनेवाली धारणा का मैकलीश द्वारा रचना के स्तर पर निषेध।[1] इस महत्त्वपूर्ण उपपत्ति के अतिरिक्त पुस्तक में जगह-जगह उन्होंने कविता की सार्थकता का, जीवन की सापेक्षता में, विशुद्ध रचनात्मक धरातल पर सूक्ष्म उद्घाटन किया है। विनिफ्रेड नोवोत्नी की पुस्तक है " द लैंग्वेज पोएट्स यूज़ " (१९६२)। इसमें बहुत क्रमबद्ध रीति से आलोचिका ने काव्यभाषा के विभिन्न तत्वों पर गंभीर विचार प्रस्तुत किये हैं। काव्यभाषा के संदर्भ में प्रयोग-विधि और गठन ('स्ट्रक्चर') जैसे तत्वों पर बल देना अपने में इस बात का सूचक है कि श्रीमती नोवोत्नी काव्यभाषा के प्रति आधुनिक, रचनात्मक दृष्टिकोण रखती हैं। सिद्धांत और व्यवहार दोनों पक्षों का उन्होंने पूरी गंभीरता और विशदता के साथ विवेचन किया है। विम्सेट और ब्रुक्स का प्रसिद्ध आलोचनात्मक इतिहास-ग्रंथ -" लिटरेरी क्रिटिसिज़्म : ए शार्ट हिस्ट्री " (१९५७) काव्यभाषा संबंधी पाश्चात्य चिन्तन पर अच्छी टिप्पणियाँ प्रस्तुत करता है। नये समीक्षकों में जॉर्ज स्टीनर की पुस्तक " लैंग्वेज ऐंड साइलेंस " (१९६७ ई०) काव्यभाषा संबंधी चिंतन को नये सिरे से देखने की बढ़िया

---

1. The sounds of words are obviously not the plastic material of the art of poetry, as stone is the plastic material of the art of sculpture . X To lose the meaning, you must lose the word. page 26.

कोशिश है । पुस्तक की - विशेषतः " द स्ट्रीट फ्रॉम द वर्ड " शीर्षक निबंध की - विचारोत्तेजकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

परंपरागत भारतीय काव्यशास्त्र में कविता की परिभाषा के अंतर्गत शब्द-अर्थ के साथ-साथ उल्लेख के बावजूद काव्यभाषा का विवेचन नहीं मिलता, अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि से संबंधित मुख्य सिद्धांतों के स्वरूपों का विश्लेषण जरूर करता है, इतना ही नहीं, एक-एक के भेदों-उपभेदों का विशद विवेचन है, लेकिन काव्यभाषा के आधार पर भाषिक सर्जनात्मकता को पहचानने की सुस्पष्ट प्रक्रिया नहीं है । अलंकारों के अंतर्गत सादृश्यमूलक की जो ब्यौरेवार वर्णन - प्रणाली है, अप्रस्तुत-विधान के क्षेत्र में स्वरूप और संप्रेषण-प्रक्रिया के स्तर पर प्रस्तुत और अप्रस्तुत के द्वैत का उल्लेख है, वह काव्यभाषा के समूचे अनुभव को किसी सीमा तक खंडित कर जाता है । इसी तरह ध्वनि-सिद्धांत, जो अपेक्षाकृत खुली दृष्टि का परिचायक है, मुख्यार्थ और व्यंग्यार्थ की नियोजना के द्वारा रचना को अर्थ के स्तर पर उन्मुक्तता के साथ देख-परख नहीं पाता । रचना की अखण्ड आंतरिक एकता - जो उसकी श्रेष्ठता का निदर्शन है - इस द्वैत प्रधान प्रक्रिया से नहीं समझी जा सकती । हिन्दी में अपने काव्यशास्त्र की शुरुआत रीतिकाल से होती है, जिसमें मुख्यतः संस्कृत आचार्यों की मान्यताओं का 'भाषा' में पुनर्स्थापन है । यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत का सूक्ष्म काव्य-चिंतन हिंदी के रीति ग्रंथों में नहीं उभर सका । उलटे स्थूल वर्गीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती गई ।

पर एक बात ध्यान देने योग्य है। काव्यभाषा का विवेचन भले ही परंपरागत भारतीय काव्यशास्त्र में न उभर पाया हो, लेकिन भारतीय रचनाकार के दृष्टि-क्षेत्र में वह रहा है । कालिदास ने " रघुवंश " के प्रारंभिक श्लोक में 'वागर्थप्रतिपत्ति' का जो आदर्श रखा है, ('वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये जगतः पितरौ वंदे पार्वतीपरमेश्वरौ ।'), उसका प्रतिफलित उनका काव्य करता है । तुलसीदास ने " रामचरितमानस " में " गिरा-अरथ " की अभिन्नता का संकेत किया है :

गिरा-अरथ जल-बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीता-राम-पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ।।

प्राचीन रचनाकार और समीक्षक - विशेषतः जिनकी दृष्टि शास्त्र-केंद्रित थी- कविता में प्रयुक्त शब्दों की प्रकृति को निर्दिष्ट तथा सुनिश्चित रखना समझते थे, इसीलिए उनके अर्थों को एक पद में रख देते थे । आधुनिक रचना और समीक्षा में काव्यभाषा की उन्मुक्तता और अनेकार्थकता को केंद्र में रखा जाने लगा है । एक तीसरा दृष्टिकोण विकसित हुआ है, जिसके अनुसार अर्थ कोशकोष की बात की जा रही है । इस दृष्टिकोण ने मानवीय संगीत की स्वरों और चित्रकला के रंगों के सादृश्य पर काव्यभाषा के अर्थ-निरपेक्ष होने की चर्चा करते हैं । स्टीनर ने द रिट्रीट फ्रॉम द वर्ड " निबंध में इसका समर्थन करते हुए स्थिति का बढ़िया विश्लेषण किया है ।

वस्तुतः स्वरों और रंगों की श्रेणी में शब्दों को नहीं रखा जा सकता । क्योंकि दोनों उपादान अमूर्त हैं - स्वर ध्वनिमय, रंग दृश्य रूप । वे सिर्फ अर्थ-विशेष से संपृक्त नहीं होते । लेकिन शब्दों के साथ एक सांस्कृतिक परिवेश जुड़ा होता है, उनकी मूल्यवत्ता उनके अर्थों के साथ ही आँकी जा सकती है । यह शब्दों के साथ जुड़ा हुआ अर्थ संस्कार उन्हें स्वरों और रंगों की तुलना में महत्त्वपूर्ण स्थान देता है, क्योंकि घटना-क्रम अन्वित जीवन में सार्थकता की प्रतीति ये अर्थवान् शब्द ही कराते हैं । संगीत तन्मयता की सृष्टि कर सकता है, एक मनःस्थिति-विशेष को अपने अमूर्त स्वरों द्वारा उद्भूत कर सकता है, लेकिन भाषा की तरह स्वर जीवन के अनुभव में रूपान्तरित नहीं हो पाता । यही बात चित्रकला के रंगों के विषय में भी है । जीवन से उनकी संपृक्ति भाषा की तरह नहीं हो पाती । अर्थ-संस्कार को समेटने के कारण भाषा में बौद्धिकता है, जो स्वरों और रंगों के उपादानों में नहीं । यही बौद्धिकता, अनुभावन-क्षमता और कविता के स्तर पर भाषा मनुष्य की सर्जन-प्रक्रियाओं में कविता को सब से ऊँचा स्थान देती है । आर्चिबाल्ड मेक्लीश ने कवि के साथ जुड़ी सार्थकता और अक्षमता की समस्या पर बहुत अच्छी टिप्पणी प्रस्तुत की है ।[1]

---

1. The poet's labour is to struggle with the meaninglessness and silence of the world until he can force it to mean : until he can make the silence answer and the Non-being be. It is a labour , which undertakes to 'know' the world not by exegesis or demonstrations or proofs but directly, as a man knows apple in the mouth. p. 18.

थी कि ब्रजभाषा से खड़ीबोली भिन्न नहीं है और रचना के आधार पर उन्होंने खड़ीबोली को उत्तम बतलाया है ।

पूरी और श्रीधर पाठक खड़ीबोली में काव्य-रचना के समर्थक थे, फलतः उन्होंने २७ दिसंबर, १८८७ ई० के " हिन्दुस्तान " में राधाचरण गोस्वामी के आरोपों को निराधार सिद्ध किया ।[1] खड़ीबोली के एक अन्य प्रबल समर्थक थे अयोध्या प्रसाद खत्री जिन्होंने " खड़ीबोली का आंदोलन " नामक पुस्तक १८८८ ई० में प्रकाशित कराई और तन-मन-धन से खड़ीबोली के प्रचार-प्रसार में योग दिया । कविता की भाषा के रूप में खड़ीबोली के प्रयोग की बात उन्होंने ही १८८७ ई० में उठाई । उनका ही राधाचरण गोस्वामी से वाद-विवाद चला करता था । आगे चलकर बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में द्विवेदी जी के अथक प्रयत्नों और प्रेरक व्यक्तित्व के फलस्वरूप खड़ीबोली की कविता की भाषा के रूप में प्रतिष्ठा हुई, जिसके लिए मार्ग बनाने में अयोध्या प्रसाद खत्री और श्रीधर पाठक ने प्रचुर योग दिया ।

खड़ीबोली में काव्य-रचना के विरोधियों का प्रमुख तर्क यह था कि यह कर्कश है, कठोर है, ब्रजभाषा का-सा मार्दव और लालित्य इसमें नहीं है । पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने अपने एक वक्तव्य में कहा :" खड़ीबोली की कविता पर इधर उनकों का झुण्ड का झुण्ड टूट पड़ा है । आजकल के पत्रों और मासिक पत्रिकाओं में बहुत सी इस तरह की कविताएँ छपती हैं ; परन्तु इनमें अधिकतर ऐसी हैं, जिनको कविता कहना ही कविता की मानो हँसी करना है ; इनमें तो काव्य के गुण बहुत कम पैठते हैं ।[2] इस विरोध के मूल में उन्होंने खड़ीबोली की कठोरता को रखा - मेरे विचार में खड़ीबोली में एक इस प्रकार का कर्कशपन है कि कविता के काम में ला उसमें सरसता संपादन करना प्रतिभावान् के लिए भी कठिन है, तब तुकबंदी करनेवालों की कौन कहे ?"[3] यहाँ स्पष्ट ही चिंता जितनी 'तुकबंदी' के लिए व्यक्त होती है, उतनी कविता के लिए नहीं ।

---

१) खड़ीबोली का आंदोलन" पुस्तक में यह पत्र संगृहीत है । पृ० ३५१

२) प्रियप्रवास " की भूमिका में " हरिऔध " ने भट्ट जी का यह विचार प्रस्तुत किया है । पृ० १०

३) वही, पृ० १० ।

अध्याय - ३

जयशंकर प्रसाद की काव्यभाषा

प्रसाद की काव्यभाषा के अध्ययन-क्रम में दो बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। एक तो, उनमें विकास अपने ढंग का ही मिलता है यानी वे अपनी पहली कविता से, आरंभिक काव्य-सृजन से ही पाठक-वर्ग को आंदोलित करनेवाले क्रांतिकारी रचनाकार नहीं हैं। अपने समानधर्मा कवि निराला के विद्रोही काव्य-व्यक्तित्व के विपरीत प्रसाद की प्रतिभा क्रमशः विकासशील रही है, एकदम से नवोन्मेष भर देनेवाली नहीं। दूसरे, प्रसाद की काव्यभाषा में एकरूपता अधिक है, विविधता कम (विविधता को उनके संयत, अनुशासित, तल्लीन रचनाकार ने कभी महत्व ही नहीं दिया) और इस संदर्भ में फिर एक बार निराला का विविध-रूप काव्य-व्यक्तित्व उभरता है, जिसके अंतर्गत भाषिक संरचना के कई-कई स्तर एक ही काल में विद्यमान मिलते हैं। लेकिन प्रसाद की काव्यभाषा में एकरूपता की अवस्थिति एकरसता, ऊब और बासीपन की प्रतीति नहीं कराती, वह अर्थ के गहनतम स्तरों का साक्षात्कार कराती है। यह अपने में बड़ी बात है और कवि के शब्द-प्रयोग की सृजनशीलता और उसमें अनुस्यूत रचाव का प्रतिफलन है। प्रसाद की काव्यभाषा इस दृष्टि से एकरस नहीं, समरस है।

प्रसाद की प्रारंभिक काव्य-रचना ब्रजभाषा में हुई है। "प्रेमपथिक" (ब्रजभाषा संस्करण) 'चित्राधार' और 'कानन-कुसुम' के प्रथम संस्करण में ब्रजभाषा की कविताएँ हैं। ब्रजभाषा के इस काव्य-सृजन में कुल मिलाकर परंपरागत संवेदना का ही निर्वाह हुआ है। इस भाषा रूप में मध्यकालीन ब्रजभाषा की भंगिमा और तराश का लगभग अभाव समझना चाहिये। समूचे रूप में ये कविताएँ किसी खास समृद्धि का बोध नहीं कराती और पुराने ढंग की कविता की तुलना में कोई गुणात्मक अंतर उद्भूत करने की क्षमता भी इनमें नहीं है। कहीं-कहीं नये विषयों का चुनाव ज़रूर है।

गीतिकाव्य 'करुणालय' (सर्वप्रथम प्रसाद के पत्र " इन्दु " में १६१३ ई० में प्रकाशित), 'महाराणा का महत्त्व' (सर्वप्रथम " इन्दु " में ही १६१४ ई० में प्रकाशित), 'प्रेमपथिक' (खड़ीबोली में रूपान्तरित संस्करण) और 'काननकुसुम' (संशोधित संस्करण में केवल खड़ीबोली की कविताएँ हैं) के माध्यम से प्रसाद की खड़ीबोली की आरंभिक काव्य-रचना सामने आती है लेकिन " प्रेमपथिक " के रचाव तंत्र और " काननकुसुम " की एक-दो कविताओं को छोड़कर उनमें कोई वैशिष्ट्य नहीं है । इस तरह से प्रसाद की प्रारंभिक काव्यभाषा को अगर उनकी परवर्ती काव्यभाषा से मिलाया जाए, तो उनमें भरपूर (सामान्य से अधिक) गुणात्मक अंतर दिखाई पड़ेगा । प्रारंभिक काव्य-सृजन की इन खामियों के बावजूद उनमें यत्र-तत्र छिटपुट और सूक्ष्म निखार के अनेक संकेत मिल जाते हैं । 'प्रेमपथिक' के ब्रजभाषा संस्करण का यह अंश रखा जा रहा है - " यह वह अमरलता है रहै जो सून,

सून रहै पै बरसत नित प्रति फून ।

यहाँ प्रेम को भौतिक-आत्मीय ढंग से कवि ने देखा है, समझा-समझाया है । प्रेम की इस सूक्ष्म परिभाषा में निहित मनोवैज्ञानिकता को अनदेखा नहीं किया जा सकता । इसी क्रम में 'चित्राधार' की यह पंक्ति रखी जा सकती है -

प्रथम भाषण ज्यों अधरान में ।

रहत है तऊ गुंजत प्रान में ।। ("नीरव प्रेम")

नीरव प्रेम के अंकन में अनुस्यूत सुकुमार मार्मिकता की यह आस्वादन - प्रक्रिया परंपरित ढंग से अलग है ।

" प्रेमपथिक " का ब्रजभाषा से खड़ीबोली हिंदी में रूपान्तरण कवि प्रसाद के अन्वेषी, विकासमान् व्यक्तित्व का सूचक है । खड़ीबोली संस्करण की एक पंक्ति द्रष्टव्य है -

" सच्चा मित्र कहाँ मिलता है दुखी हृदय की छाया-सा "

यहाँ " दुखी हृदय की छाया-सा " के उपमान में निहित सूक्ष्मता-अमूर्तता की पकड़ी भगुर में उल्लेखनीय होगी , इस सूक्ष्मता-अमूर्तता को

प्रवणशील कल्पनावाली एक विशिष्ट तरह की आत्मीयता अधिक गौर करने के बाद पकड़ में आएगी - " दुखी हृदय की छाया-सा " ।

" चित्राधार " के पद्य-खण्ड में कुछ कविताएँ ऐसी हैं जिनके शीर्षक नये ढंग के हैं (" नीरव प्रेम ", " विस्मृत प्रेम ", " मकरन्द-बिन्दु ") । यह नवीनता कविता के सूक्ष्म स्तरों के प्रति कवि की जिज्ञासा को प्रकाशित करती है, यद्यपि इनका नयापन, इनकी सूक्ष्मता कुछ मिलाकर इनके शीर्षकों में ही है, रचना-प्रक्रिया में नहीं । इसीलिए शीर्षक और रचना-प्रक्रिया के बीच एक अजीब-सा घालमेल दिखाई देता है ।

खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा में प्रसाद की विविध कविताओं का पहला संकलन " काननकुसुम " (दूसरे संस्करण में केवल खड़ीबोली की कविताएँ हैं) के रूप में है, जिसकी एक कविता (" प्रथम प्रभात ") वास्तविक रचनात्मक नवोन्मेष का संकेत देती है । रीतिकालीन श्लिष्ट शब्दावलीपरक कविता के विपरीत यहाँ एक ही अर्थ के तीन स्तरों के संश्लेषण से काव्यभाषा में रचाव लाने की महत्त्वपूर्ण कोशिश की गई है । इस कविता से दो तरह की प्रतिक्रियाएँ एक साथ उद्भूत होती हैं । पहली रचनात्मक आकुलता की ; प्रणय, अध्यात्म और प्रकृति - तीनों को संपृक्त अनुभव बनाने की चेष्टा । (यह उल्लेखनीय है कि कवि की इस कोशिश में पूरा रचाव आगामी संकलन झरना की " विषाद " कविता में आया है।) दूसरी " प्रथम प्रभात " में भाषा की सपाटता और कुछ - कुछ द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा की भावुक सरलता की - और यही वजह है कि यह द्वन्द्वात्मकता कम है, जिससे अर्थ रचना में गहराई से परिव्याप्त होता है । छायावादी सूक्ष्म अभिव्यक्ति प्रणाली को पूर्वाभासित करनेवाला यह अंश देखा जा सकता है -

बहा, अचानक किस मलयानिल ने तभी,
फूलों के सौरभ से पूरा लदा हुआ ।
आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया मुझे,
खुली आँख आनंद-दृश्य दिखला दिया ।

" मलयानिल " अपनी सूक्ष्म-अमूर्त रूप में अर्थ के उन्मुक्त स्तर पर संक्रमित होकर सारी मनःस्थिति को ताज़ी ऊर्जा से भर देता है ।

" झरना " के पहले संस्करण (१९१८ ई०) की कविताओं में " काननकुसुम " की कविताओं (" प्रथम प्रभात " के अपवाद-सहित) के समान परंपरा-पोषण है, रचनात्मक तत्परता नहीं ।" झरना " के दूसरे संस्करण (१९२७ ई०) में आधी से अधिक अर्थात् ३३ कविताएँ रखी गई हैं, जिनमें नवीन अभिव्यंजना, रचनात्मक अन्वेषण का स्पष्ट परिचय मिल जाता है ।" झरना " की परंपरित कविताओं में प्रेमपात्र के प्रति उपालंभपरक कई एक कविताएँ हैं, उसी तरह जिनमें संयोग-चित्र है ।" प्रियतम "," निवेदन "," प्यास "," प्रत्याशा ", " स्वप्नलोक ", इस क्रम में रखी जा सकती हैं । इन कविताओं की तुलना अगर प्रसाद की परवर्ती रचनाओं (जिनमें शरीर-सुख के अनेक चित्र हैं) से की जाए, तो इस संभावित आपत्ति के बावजूद कि दोनों दौर की कविताओं में बहुत असमानता है, अतः यह तुलना असंगत है," कविता की रचना-प्रक्रिया में काव्यभाषा के केन्द्रीय स्थान से संबंधित एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रसाद के विविध मांसल प्रणय-चित्रों पर नज़र डालते हुए थोड़ी चुटकी लेकर यह बात कही है कि प्रसाद जी का ध्यान शरीर-विकारों पर विशेष जमता था ।[1] उन्होंने प्रसाद काव्य में भरपूर शरीर- सुख के चित्रों के लिए " मधुचर्या " नाम देकर उनके प्रति अपने सौन्दर्यग्राही एवं अनुशासित दृष्टिकोण का परिचय दिया है ।[2] यहाँ काव्यभाषा के विश्लेषण-प्रसंग में इतना कहना ज़रूरी हो जाता है कि प्रसाद के परवर्ती गीतों में मधुचर्या का वर्णन भाषा के स्तर पर इतना कलात्मक बन सका है कि वह पूरी प्रक्रिया गहरे, रचनात्मक अनुभव में परिणत हो जाती है या यों कहें कि मधुचर्या की यह स्थिति अनुभावन-क्षमता को बढ़ाती है ।" लहर " के अनेक गीत " बीती विभावरी जाग री " ," आह रे, वह अधीर यौवन ", " कोमल कुसुमों की मधुर रात " इस क्रम में रखे जा सकते हैं , जबकि " झरना " के गीतों में अंकित प्रणय अनुभव में रूपांतरित होता ही नहीं, उसमें एक तरह का हल्कापन है ।" प्यास " कविता से एक उदाहरण रखा जाता है -

---

१) हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ५६०

२) वही, पृ० ५६२ ।

राग रंजित थी वह पैया
    जो पीछे पीछे रुक गये ।
प्रश्न मेरा था उनसे था,
    पूछने से वे प्रमुदित हुए ।।
नशीली आँखों सदृश कहो
    तुम्हारी थी, इसमें है नशा ।
गुलाबी कलिका-सा होठ,
    स्वाद्य सी रही मौन की निशा ।।

" झरना " की एक अति सामान्य कविता " कहो " की पिछली पंक्ति का विशिष्ट प्रयोग छायावादी सूक्ष्म कल्पना के निकट प्रतीत होता है । शरीर शास्त्री के चित्र का अपने ढंग से यह उपयोग प्रसाद की आरंभिक रचनाशील मनःस्थिति में किसी उन्मेषापरक बेचैनी का संकेत देता है -

शिथिल शयन सम्भोग दलित कबरी के कुसुम सदृश हो,
प्रतिपद व्याकुल आज कुन्द क्यों होते है प्रियतम । सो ?

अपनी रचना-प्रक्रिया में परिपक्व कुछ कविताएं (" झरना " में संगृहीत) प्रसाद के कवि- व्यक्तित्व के एक विशिष्ट पक्ष-दिशा-संधान, अनिर्दिष्ट बेचैनी - को छूने की कोशिश करती है । पहली कविता " झरना " की संवेदना सामान्य से थोड़ी अलग हटकर है जिसे विशिष्ट मौलिक रूप में उपलब्ध करने के लिए तत्पर काव्यभाषा यों प्रकाशित करती है -

मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी
न है उत्पात, छटा है छहरी ।।
        मनोहर झरना,
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना ।
बात कुछ छिपी हुई है गहरी ।
मधुर है स्रोत मधुर है लहरी ।।

इस तरह प्रसाद की काव्यभाषा प्राकृतिक झरना, मानवीय प्रेम और किसी खुई गहरी बात को एक श्रेणी में रखने की कोशिश करती है।

"अव्यवस्थित" अपेक्षाकृत नये ढंग की कविता है, जिसमें अस्पष्ट भावना की न समझ में आ सकनेवाली - पकड़ से बाहर स्थिति - को कविता के स्तर पर उसी अस्पष्टता - सूक्ष्मता के साथ रखने की कोशिश की गई है। प्रारंभिक अंश इस प्रकार है ;

विश्व के नीरव निर्जन में।
जब करता हूँ बेकल चंचल,
मानस को कुछ शान्त,
होती है कुछ ऐसी हलचल,
हो जाता है भ्रान्त,
भटकता है भ्रम के बन में,
विश्व के कुसुमित कानन में।

"अव्यवस्थित" में व्यक्तित्व - प्रक्षेपण - अपनी जटिलता के साथ - संभव हो सका है। कवि पूरी ईमानदारी से अपने आपको - या फिर मानस मात्र को - टटोलता है :

जब करता हूँ कभी प्रार्थना
कर संकलित विचार
तभी कामना के नूपुर की
हो जाती झनकार ;
चमत्कृत होता हूँ मन में
विश्व के नीरव निर्जन में।

सांसारिक आकर्षण की प्रबलता अथवा इस तरह कहें मन की पराजित स्थिति - को कवि नये ढंग के बिंब में रूपायित करता है। पुराने ढंग के अलंकार - विधान में ब्यौरे की प्रधानता रहती थी, किन्तु बिंब में एक नूपुर की झनकार मात्र के उल्लेख से आसक्ति का पूरा रूप प्रत्यक्ष हो जाता है। चूँकि प्रसंग

कामना का है (" उसी कामना के नूपुर की हो जाती झनकार "), अत: यह बिंब केवल चाक्षुष प्रतिमा-मात्र न निर्मित कर नृत्य और संगीत के समूचे आकर्षण, प्रलोभन और विलासिता को तत्काल व्यक्त कर देता है।

मानसिक स्थिति को धुंधले और अतुल सुकुमार ढंग से संबंध बनाने की चेष्टा में " विषाद " कविता अपने ढंग की अकेली है, जिसमें ' अवस्थित ' से कहीं अधिक जटिल अनुभव और कलात्मकता है। ' काननकुसुम ' की ' प्रथम प्रभात ' (जो ' झरना ' में भी संगृहीत है) कविता में पहली बार जो भी कई छायाओं को एक साथ विकसित करने की महत्त्वाकांक्षी कोशिश हुई थी, इस दिशा में ' विषाद ' की काव्यभाषा अभूतपूर्व प्रभावशीलता और उन्मुक्तता को कायम रखती है। भारतीय काव्यशास्त्र की प्रमुख उपपत्ति ध्वनि-सिद्धांत और पश्चिम में इलियट का 'आब्जेक्टिव कोरिलेटिव' इस तरह की अनेकार्थ-स्तरीय कविता के विश्लेषण में अपूर्ण ही कहा जाएगा। न तो ध्वनिकार के सिद्धान्तानुसार इसमें एक अर्थ प्रधान है, दूसरा गौण - यानी यहाँ मुख्यार्थ जैसे तत्व की अनुपस्थिति है, या यों कहें, उसकी एकान्तिक वर्जना है (और यही विशिष्टता इस कविता को अधिक अर्थगर्भित बनाती है)। और इलियट के ढंग पर तो आंतरिक विषाद और बाह्य संध्या-छाया अलग-अलग तत्व हैं। लेकिन वस्तुस्थिति तो कुछ और है, जो पूरी कविता की संश्लिष्ट रचना-प्रक्रिया को, उसी संश्लिष्टता से समझने में उजागर होगी। और, यह प्रसाद की, अधिक व्यापक रूप में छायावादी कवियों की (अपने श्रेष्ठ अंशों में) मौलिक विशिष्टता है कि वे अपनी अर्थगर्भित नवीनता के कारण समीक्षा के परंपरित मानदण्ड का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए बाध्य करते हैं, और एक नयी संपृक्त समीक्षा दृष्टि को जन्म देते हैं। समीक्षा-मान और रचना की यह टकराहट अपने में सर्जनात्मक है।

न तो ऐसी कविता के विषय में चलते ढंग पर यही कहा जा सकता है कि यह विशिष्ट मनःस्थिति की कविता है और न यही कि उसमें संध्याकालीन प्रकृति का अंकन है। दोनों स्थितियाँ मानसिक और बाह्य एक दूसरे में घुल-मिलकर एक दूसरे के अनुभव को विकसित करती हैं। कौन प्रधान है, कौन अप्रधान

यह प्रश्न व्यर्थ हो जाता है । संध्याकालीन निस्तब्धता, उदासी और वर्णहीनता में रही- सही विषाद का अंकन कुछ-कुछ में भी मानवीकरण के ढंग का लगता है, जिसमें गोधूलि के मलिनांचल में वन में बैठे हुए पंछी का चित्रण है, प्रत्यंचा, नीरव पंछी, इत्यादि का अंकन है, और इस तरह यह रेखाचित्र बन जाता है, लेकिन वस्तुतः इसके मूल में मन के उलझाव को, भाव-ग्रंथि को पहचानने की उससे तादात्म्य करने की छटपटाहट है । बाहरी जगत् संध्याकालीन दृश्य मात्र संवेदन नहीं निर्मित करता, वह इससे कहीं अधिक गहरी, रचनात्मकता का उपक्रम है । यह कवि को अपनी ज़मीन पर पहुँचने, अपनी सृजन की जटिलता को फैलाने के लिए बढ़ावा देता है । प्रकृति बिंब और मानसिक बिंब का यह अंकन गहरे स्तर पर सराहनीय है । यह अंश द्रष्टव्य है :

निर्झर कौन बहुत बल खाकर,
बिलखाता ठुकराता फिरता ?
खोज रहा है स्थान धरा में,
अपने ही चरणों में गिरता ।।

इस प्रकार में ऐसा लगेगा कि कवि प्रकृति पर निर्झर पर अपनी अनुभूति का प्रक्षेपण कर उससे तटस्थ होने की चेष्टा कर रहा है। लेकिन प्रसाद की कला इतने सीधे प्रकाशन की कला नहीं है, उसमें अपने कवि-कर्म से इतनी आसानी से निस्तार नहीं है । वस्तुस्थिति यह है कि जीवन-स्थिति को जानने-समझने की व्यग्रता मानवीय प्रयास की अपूर्णता से उद्भूत बेचैनी और इसके बावजूद उसकी जिजीविषा तथा अन्वेषण - प्रकृति को टटोलने की साहसिक प्रवृत्ति प्रसाद की असली चिन्तना है, समस्या है । इस स्थापना के परिप्रेक्ष्य में एक बार पुनः ये पंक्तियाँ पढ़ी जा सकती हैं :

निर्झर कौन बहुत बल खाकर
बिलखाता ठुकराता फिरता ?
खोज रहा है स्थान धरा में,
अपने ही चरणों में गिरता ।।

और यही वजह है, कि इस तरह की पंक्तियाँ, जिनमें पंत की कविता की-सी शिल्पकारिता नहीं है, और साथ ही निराला के गीतों का-सा

तीव्र प्रसार वेग नहीं है, अपनी भव्य-उदात्त सादगी में, बहुत गहरा असर डालती है। प्रसाद की ही कविता की शब्दावली में कहा जाय, तो ये पंक्तियाँ मन के कोने को मसला देती हैं (" आँसू " की पंक्तियाँ हैं - " उद्वेलित तरल तरंगें। मन की न लौट जावेगी। हाँ, उस अतल कोने को। ये सचमुच मसला देंगी।")

छायावादी काव्यभाषा अपने गहरे आत्मीय रूप में बहुत कोमल पक्ष को छूती है, यह " विषाद " कविता के अंतिम अंश में देखा जा सकता है -

किसी हृदय का यह विषाद है
छेड़ो मत यह सुख का कण है।
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ,
करुणा का विश्रान्त चरण है।।

इसी स्तर पर आकर पूरी कविता का विषाद एक खास ढंग की अनुभूति में, जीवन के प्रति कवि की एक विशिष्ट दृष्टि में बदल जाता है, जो " आँसू " में वेदना या आँसू उपलब्धि बन जाती है।

झरना में संकलित " बसंत " प्रसाद की विशिष्ट कविता है, जिसमें बसंत के माध्यम से कवि जीवन के यथार्थ को समझने की कोशिश करता है। यहाँ भी रीतिकालीन श्लिष्ट काव्य से अलग हटकर नये और निश्चय ही अधिक रचनात्मक ढंग से कोमलता विकसित की गई है। प्रारंभिक अंश इस प्रकार है :

तू आता है फिर जाता है।
जीवन में पुलकित प्रणय सदृश,
यौवन की पहली कान्ति अकृश
जैसी हो, वह तू पाता है, हे बसंत क्यों तू आता है?

जो सहज, सुकुमार और अछूते बिंबों में कवि बसंत के - उल्लास, भी के - आगमन और प्रत्यावर्तन के अनुभव को अनुस्यूत कर देता है। आकर्षण, प्रसन्नता, कोमलता और अस्थायित्व की सम्मिश्रित छायाएँ अनुभूत होती हैं। निराला ने बसंत के माध्यम से अपनी रचनात्मक क्षमता अनेक गीतों में विकसित की है, लेकिन

“ झरना ” की इस कविता में भी प्रसाद की विशिष्ट मनोवृत्ति के फलस्वरूप, उनकी बौद्धिक प्रतिभा के कारण वसंत के माध्यम से जीवन के प्रति गहरी जिज्ञासा मुखरित हुई है, अन्वेषण की बेचैनी विवृत हुई है । वसंत कवि को विचारोत्तेजन देता है, सार्वभौम यथार्थ को समझने-समझाने की प्रेरणा देता है ।

“ झरना ” के अंतर्गत प्रसाद की विशिष्ट कविताओं में “ किरण सम्मिलित की जा सकती है, और इसमें संदेह नहीं कि यह कविता छायावाद की कई विशेषताओं - चित्रात्मकता, नूतन कल्पना, लाक्षणिकता, रहस्य-भावना - का संवहन करती है, लेकिन इसमें प्रसाद अपनी ज़मीन पर नहीं है, उनकी द्वन्द्वात्मकता, उलझन इसमें मुखरित नहीं हुई है । वास्तव में इस तरह की कविता छायावाद के दूसरे प्रमुख कवि पंत के मिज़ाज के अधिक अनुकूल है । फिर भी, उल्लेखनीय यह है कि अपनी खास ज़मीन न होने के बावजूद, प्रसाद ने इस कविता में अनूठी कल्पनाशीलता और विराट दृष्टि का परिचय दिया है, ठीक उसी तरह, जैसे “ यमुना के प्रति कविता ” की रचना में निराला अपने धरातल से अलग होकर भी रचना-प्रक्रिया में सफल हो सके हैं । “ किरण ” के माध्यम से प्रसाद ने अद्वैत भाव और प्रेम-तत्त्व की व्यापकता की ओर संकेत किया है । यह सूक्ष्म-अमूर्त बिंब छायावादी काव्यभाषा के निर्माण और विकास क्रम में विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है -

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश
मधुर मुरली सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल
वेदना-दूती सी तुम कौन ?

प्रार्थना के बिंब में किरण की रूपगत स्थिति को बहुत कुशलता से अंकित किया गया है । इसी तरह विराट् कल्पना - यद्यपि जिसमें जटिलता की गुंजाइश नहीं है - की नियोजना इस अंश में हुई है -

स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन
मिलाती हो उससे भूलोक

निचुड़ी हो ऐसा संबंध,
बना दोगी क्या विश्व वियोग ?

" आँसू " से वास्तविक रूप में कवि अपनी रचना-भूमि में पहुँचता है । " आँसू " का पहला संस्करण १९२५ ई० में प्रकाशित हुआ । दूसरे संस्करण का १९३३ ई० में प्रकाशन हुआ, जिसमें छंदों की संख्या भी बढ़ गई और पूर्ववर्ती संस्करण में निहित निराशा की भावना का स्थान एक विशिष्ट तरह के आत्म विश्वास ने ले लिया ।" आँसू " अपने सामान्य रूप में एक प्रेमकथा है, जिसमें स्मृतियों के माध्यम से सुखद अतीत की झाँकी है और फिर वियोग-वेदना का अंकन है । इस सामान्य प्रेमकथा को विशिष्टता और गरिमामयी अर्थगर्भिता प्रदान करती है - उसकी सृजनात्मक काव्यभाषा, जो मूलतः बिंबपरक है । इन सूक्ष्म-अमूर्त बिंबों के प्रयोग से कवि ने अर्थ और अनुभव की संपृक्ति एवं उन्मुक्तता रहने की भरपूर संभावना विकसित की है । इसी बिन्दु पर याद आता है अज्ञेय का प्रसिद्ध उपन्यास - " नदी के द्वीप," जो अपने सामान्य रूप में एक प्रेमकथा ही रह जाता, अगर उसकी अर्थ-प्रवण ,रचनात्मक भाषा उसमें गहरी ऊर्जा न भरती ।

" आँसू " वस्तुतः प्रसाद की उस स्थापना का व्यावहारिक निदर्शन है, जो छायावाद-विषयक अपने विवेचन में उन्होंने रखी है - " आभ्यन्तर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा बाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यन्तर भावों के व्यवहार में प्रचलित पद-योजना असफल रही । हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यंतर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी । शब्द-विन्यास में ऐसा पानी चढ़ा कि उसमें एक तड़प उत्पन्न करके सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया ।" [१]

प्रायः पहले ही से यह कह दिया जाता रहा है कि " आँसू " में कवि के व्यक्तित्व का मार्मिक प्रकाशन हुआ है । लेकिन अगर इतना ही भर है, तब तो कोई बड़ी बात नहीं हुई । वस्तुतः " आँसू " की काव्यभाषा में अनुस्यूत अपूर्व

---

१) काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२२ ।

कुण्ठाशीलता, अधूरी ढंग के बिंब और फिर उनका भी पूर्णीकरण अपने में किसी महत्त्वाकांक्षी - गंभीर प्रयोजन से प्रतिश्रुत प्रतीत होते हैं । व्यक्तित्व का प्रकाशन और वह भी सीधे ढंग से - प्रसाद की जटिल मानसिकता को काम्य नहीं । प्रसाद की कविता में तो कुछ दूसरी , अधिक सघन छिपाता है, अन्तर्मन की अकुलाहट है, जिसे पहली बार में नहीं पहचाना जा सकता :

जाती है शून्य क्षितिज को
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी
टकराती बिलखाती-सी
पगली-सी देती फेरी ?

यह महज़ व्यक्तित्व-प्रकाशन से ऊपर की स्थिति है, और यदि ऊँचाई नज़र-अंदाज़ कर देने पर इन पंक्तियों में जो कविता बनती है, वह पकड़ में नहीं आ सकती । वैसे तो हर ऊँचे दर्जे की कविता, या अधिक स्पष्ट कहें तो हर अस्तित्व की जटिलता, मनःस्थितियों की अनिश्चितता और भाव-संवेदन की अखण्डता को टटोलनेवाली कविता की पकड़ शाब्दिक व्याख्या की सरलीकृत पद्धति से नहीं की जा सकती, किन्तु प्रसाद की कविता के विषय में यह बात सब से ज्यादा सच है । हिन्दी कविता के इतिहास में वे इस कोटि के पहले कवि हैं और झरना की " विषाद " कविता के बाद " आँसू " उनका पहला काव्य है, जिसमें यह वैशिष्ट्य काफ़ी दूर तक समाया हुआ है । और, यह प्रसाद की काव्यभाषा की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है कि उसने विविध स्रोतों को उन्मुक्त न करने के बावजूद खड़ीबोली हिन्दी को इतना सक्षम बना दिया कि वह पूरे आत्म-विश्वास से अवचना का अवचना से संवाद प्रस्तुत कर सके ।

एक अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट प्रतीत होनेवाले यानी व्यक्तित्व को खोलनेवाले - अंश की परीक्षा की जा सकती है :

छलना थी, तब भी मेरा
उसमें विश्वास घना था
उस माया की छाया में
कुछ सच्चा स्वयं बना था ।

यहाँ सामान्यतः यही नहीं समझ में आता है कि कवि अपने प्रेमास्पद के प्रवञ्चनात्मक आकर्षण को, उसके प्रति अपनी एकान्तिक निष्ठा को अभिव्यक्ति दे रहा है, किन्तु बात कुछ गहरी है - " उस माया की छाया में । कुछ सच्चा स्वयं बना था । " वह सच्चा बनने की घोषणा - एक तरह से कहीं ईमानदारी और दूसरे ढंग की निर्दोषिता के साथ अपने छलीकरण की स्वीकृति - उस माया की छाया के सूक्ष्म-व्यूही परिप्रेक्ष्य में अभूतपूर्व निश्छलता से परिपूर्ण हो जाती है । " माया की छाया " में दुहरी विष-योजना द्रष्टव्य है । " माया " में निहित आकर्षण, प्रलोभन, प्रवञ्चना, क्षणिकता को और अधिक गुरुता " छाया " के आरोपण ने दे दी है । इतनी गहरी स्थिति में पहुँचकर कवि " सच्चा " बना है । तभी तो वह कहता है - " कुछ सच्चा स्वयं बना था । " कुछ ही, पूरी तौर से नहीं, क्योंकि " माया की छाया " में यह प्रक्रिया - सच्चा बनने की - फलीभूत होती है । निराला की ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं - गहरे गया तुम्हें तब पाया

रहीं अन्यथा कायिक छाया

सत्य भास की केवल माया

मेरे श्रवण-वचन की हो तुम (" अर्चना ")

और निम्न छंद में तो प्रसाद की बेहद तटस्थ जिज्ञासा और बौद्धिक बेचैनी के साथ अपने अन्तर्मन को जानने-समझने की, उसकी तह में पहुँचने की कोशिश करते हैं :

यह पारावार तरल हो

फेनिल हो गरल उगलता

मथ डाला किस तृष्णा से

तल में बड़वानल जलता ।

इस तरह " आँसू " में आकर कवि का अपना विशिष्ट स्वर बन जाता है । यहाँ उसकी काव्यभाषा में जीवन-जगत के प्रति मौलिक बौद्धिक प्रतिक्रिया कर सकने की क्षमता है, जो " कामायनी " में पहुँचकर चरम हो जाती है । " आँसू " के दो छंद इस प्रसंग में रखे जा रहे हैं -

मत कहो कि यही सफलता
कलियों के लघु जीवन की
मकरन्द भरी खिल जायें
तोड़ी जायें बेमन की ।

यदि दो घड़ियों का जीवन
कोमल वृन्तों पर बीते
कुछ हानि तुम्हारी है क्या
चुपचाप चू पड़े जीते !

नश्वरता की स्थिति से बचने के लिए फूल का बिंब अपने में नया नहीं है । कबीर भी कह चुके हैं :

माली आवत देखि के, कलियाँ करैं पुकार ।
फूली-फूली चुनि गई, कालि हमारी बार ।

लेकिन इस दूरगामी परंपरा के बावजूद प्रसाद की कलियों के लघु जीवन में छिपा हुआ अनूठा वैशिष्ट्य है, जो इस सारे छंद को नये तरीके की ऊष्मा और प्रत्यग्रता से भर देता है । प्रसाद का कवि मकरंद-भरी, खिली हुई कली के तोड़े जाने पर मूक समझौता नहीं करता, वह उनके अधूरेपन पर, और इस तरह मानव-जीवन की बेबसी पर, नियति की निर्ममता पर कठोर दृष्टिपात करता है, उसके साथ संघर्ष करता है, क्योंकि ये मकरंद भरी कलियाँ बेमन की तोड़ी गई हैं । इस छंद की समूची रचनात्मकता का केन्द्र है - " बेमन की " प्रयोग । मृत्यु जीवन की निष्पत्ति के रूप में आए, तो कवि को कोई एतराज नहीं, लेकिन वह अपूर्णता का प्रतीक बनकर आती है, तो करुण है ।

और निम्नलिखित छंद में तो अद्भुत रचनात्मक सघनता के साथ दुहरी जीवन-स्थितियों, मानव-जीवन की अद्भुत विडम्बना को अनेक अर्थस्तरीय काव्यभाषा को सामने रखती है :

भावुकता से युक्त स्थिति ने कथन को और भी स्पृहणीय बनाया है :

उस विकल वेदना को है
जिसने सुख को ठुकराया ?
पा कर क्यों अकिंचन
सुख चैतन्य समाया ।

यहाँ है प्रसाद की कविता अनुभूति से स्वतःपूर्ण; किन्तु शब्द की सजावट से एकदम निर्लिप्त ।

प्रेमास्पद के मुख-छवि में चमत्कारिक ढंग की यह उपमान योजना रखी गई है :

बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख
क्यों भरा हुआ हीरों से ?

अगर इस दृष्टिगत उपमान-योजना के अभाव-पक्ष में यह कहा जाए कि इसके माध्यम से कवि सौन्दर्य और निष्ठुरता की एक साथ अभिव्यक्ति के कथन में सफल हुआ है, तो भी बात बहुत जमती नहीं है । निष्ठुर सौन्दर्य अपने में विशिष्ट है और उसके स्थापन के लिए यादृच्छिक या आकारगत प्रतिमा-मात्र का निर्माण काफ़ी नहीं है । यहाँ विधु (मुख) के प्रसंग में मणिवाले फणियों की नियोजना से कोई द्वन्द्वात्मक स्थिति, उसका प्रतिक्रिया नहीं उद्भूत होती । यही वस्तु-संवेदन - निष्ठुर सौन्दर्य - नए ढंग से, सूक्ष्म और श्लिष्ट बिंब में एक अद्वितीय रूप धारण कर लेता है :

चंचला स्नान कर आवे
चाँदनी पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी ।

यहाँ दो सूक्ष्म-अमूर्त बिंबों को एक दूसरे पर इस तरह से आरोपित कर दिया गया है कि वे परस्पर मिलकर एक घनिष्ठ रूप धारण कर लेते हैं

और सूक्ष्म अनुभव-संवेदना को संप्रेषित करने में सक्षम होते हैं। एक ओर कल्पना (जिसकी कमी से ये छायाएँ विकसित न होतीं) का उद्दाम वेग, आकर्षण, चमक और विशेष उल्लेखनीय : कोमलता-लाक्षणिकता है, झाड़ी और चाँदनी की शीतलता, उज्ज्वलता और मनोहारिता है जिसमें पर्व की उपस्थिति (चाँदनी पर्व) उल्लास और पवित्रता का योग कर देती है। इन सब छवि-छायाओं से विकसित प्रेमास्पद की रूप-छवि तथा भाव-छवि अधिक संश्लिष्ट, जटिल एवं गत्यात्मक हो जाती है।

" लहर " (१९३३ ई०) संकलन की कविताओं में आत्माभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक संकेतित, अर्थवान् और अपनी संरचना में जटिल-सूक्ष्म हो गई है। कवि अनुभव के सूक्ष्म रूप को अपनी अर्थ बिंब-योजना के बल पर और भी सूक्ष्म-कोमल बनाकर प्रस्तुत करता है। पहली कविता " लहर " का यह अंश द्रष्टव्य है :

उठ उठ री लघु लघु लोल लहर।
करुणा की नव अँगड़ाई-सी
मलयानिल की परछाईं-सी
इस सूखे तट पर छिटक छहर।

" करुणा की नव अँगड़ाई " और " मलयानिल की परछाईं " जैसे बिलकुल नये ढंग के सूक्ष्म-अमूर्त बिंब अपने शाब्दिक अनुवाद में कोई व्यक्तित्व नहीं उभारते। वस्तुतः यहाँ कवि लहर को - भावना को, जीवन के स्पन्दन को - नये संदर्भ में पारिभाषित कर रहा है, प्रसाद के प्रसंग में, उनकी उदात्त-सुकुमार संवेदना के आलोक में, इन बिंबों में निहित लाक्षणिकता भी अपने ढंग के निराले प्रभाव की सृष्टि करती है। वस्तुतः वह लाक्षणिकता के रूढ़ अर्थ में लाक्षणिकता लगती ही नहीं है।" करुणा की नव अँगड़ाई " में जीवन की संवेदनशील, प्रत्यग्र और अपनी निश्छलता में आत्म-विस्मृत स्थिति को संवेद्य बनाने की सुकुमार चेष्टा की गई है। " मलयानिल की परछाईं " तो अपने सूक्ष्मीकृत रूप में भावना की पकड़ में न आ सकनेवाली प्रक्रिया और ऐन्द्रिक संवेदन से परे की स्थिति को रूपायित करता है या यों कहना चाहिए, संकेतित करता है और, यही कारण है कि यहाँ मलयानिल " छायावाद के अन्य

छवियों के मत्यान्वित कोई-कोई भावुक परत्वात्मक संवेदना उद्भूत नहीं करता ।

इसी तरह " हे पथ जहाँ सुलाया देकर " गीत का यह " साँझ-चित्र " अपने अनेक रूपों को खोलता है और अपनी सूक्ष्मता-समृद्धता में विशिष्ट हो जाता है :

जहाँ साँझ-सी जीवन-छाया
ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो,
ताराओं की पाँति घनी रे ।

विश्राम- या अधिक संगत ढंग से कहें एकान्त के चरम आनंद (जो वस्तुतः कर्म-पराङ्मुखता का द्योतक न होकर मन के भावों में अधिक शक्ति अर्जित करने के उद्देश्य से परिभाषित है) का यह विराट् चित्र है (और विशिष्टता तो यह है कि यह विराटता एक साथ ही उदात्त और ललित है) " जहाँ साँझ-सी जीवन-छाया " में प्रसाद का कोमल-संवेदनशील अंकन देखा जा सकता है - " जीवन " नहीं, " जीवन की छाया " । " ढीले " क्रिया की लघुमयता अर्थ-संप्रेषण में उन्मुक्तता की अभिव्याप्ति संभव करती है । " ढीले " प्रयोग अपने सहज-स्वाभाविक, लघुतम रूप में अलसता, कोमलता, विश्रान्ति की और उन्मुक्तता एवं मंद चेष्टा की अर्थ-छायाएँ उद्भूत करता है ।

मधुचर्या के सुकुमार अनुभवगम्य सुख को प्रसाद जैसी शालीन सूक्ष्मता की प्राथमिकता देनेवाला कवि अमूर्त बिंबों में मितव्ययन की अपूर्व भंगिमा के साथ अंकित करता है, यह " बीती विभावरी जाग री " गीत के इस अंश में देखा जा सकता है :

अधरों में राग अमंद पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये -
तू अब तक सोई है आली
आँखों में भरे विहाग री !

" मलयज " और " विहाग " की अर्थ-छायाएँ-सुगन्धि, आकर्षण, कोमलता, सूक्ष्मता, संगीतात्मकता, मादकता, अलसता बहुल सुखद संकेतात्मकता

के साथ शरीर-सुख की प्रक्रिया का अंकन करती है । विशेषतः रात्रिकालीन राग विहाग के संगीतात्मक चित्र में अनुस्यूत अपने ढंग की मादकता, मांसल चित्तवृत्ति और सुखद उत्तेजना शारीरिक क्रियाओं से अपनी परम तन्मयता तथा पूर्णता के स्मरण को (" आँखों में भरे विहाग री ") अधिक अर्थ-गर्भित बना देती है ।

" विहाग " की अर्थ-क्षमता का उपयोग कवि ने अन्यत्र भी किया है । " स्कन्दगुप्त " नाटक में देवसेना के माध्यम से, एकान्त नारी-जीवन की खोखली शून्यता को सुकुमार कवि ने " विहाग की तान " के चित्र द्वारा और गहरा किया है :

अलस स्वप्न की मधुमाया में
गहन विपिन की तरु छाया में
पथिक उनींदी श्रुति में किसने -
यह विहाग की तान उठाई ?[१]

विदाई के रूप में वेदना प्राप्त करनेवाली देवसेना की असहाय विवशता विहाग की तान उठने की बिल्कुल विरोधी स्थिति (विहाग - तान : अर्थात् रात्रिकालीन जागरण- सुख के विविध अनुभव) की टकराहट में बहुत कोमल और कारुणिक हो जाती है ।

" आह रे, वह अधीर यौवन " में तो छंद-गति, बिंबात्मकता शब्द-ध्वनि - सब एक दूसरे में घुल-मिल गये हैं । कोमल स्थितियों के अंकन में सामान्यतः मृदु-सुकुमार शब्दावली व्यवहृत होती है, किन्तु कठोर वर्णों द्वारा यौवन की उद्दामता, प्रखरता एवं अपरिहार्यता को सजीव करनेवाली प्रसाद की यह प्रणाली उल्लेखनीय है : " मत्त मारुत पर चढ़ उद्भ्रान्त / बरसने ज्यों मदिरा अश्रान्त । " पूरे छंद की गति बहुत तीव्र है । यदि रस की शब्दावली में कहा जाए, तो यहाँ रौद्र और शृंगार रसों की सह-अवस्थिति हुई है । यौवन के लिए " अधीर " विशेषण कुछ इस आत्मीयता से रखा गया है कि उसे सही अर्थों में विशेषण कहा भी नहीं जा सकता । वह यौवन का मूलभूत ही बन जाता है - वह यौवन, जिसका स्वभाव ही है अधीर होना । फिर

---

१) स्कन्दगुप्त, पृ० १४०

ढंग की स्थितियों को - जिन्हें कुशलता से एक संपृक्त और अधिक रचनात्मक अनुभव में ढाल देते हैं, इसका उदाहरण इसी गीत से प्रस्तुत अंश में देखा जा सकता है :

अधर में वह अधरों की प्यास,
नयन में दर्शन का विश्वास,

शरीर का एक अध्ययनात्मक उपक्रम में डूबा हुआ है (" अधर में वह अधरों की प्यास ") और दूसरा अपनी अस्मिता की पहचान कर रहा है (निष्ठा, विश्वास का अंकन " नयन में दर्शन का विश्वास " - भी किसी आत्म-उन्नयन, आत्म-साक्षात्कार से कम नहीं है । द्रष्टव्य है - उस माया की छाया में / कुछ सच्चा स्वयं बना था ।) ध्यान देने की बात यह है कि दोनों प्रक्रियाएँ समानान्तर चल रही हैं - अपने केन्द्रों, अकुण्ठित एवं सहज मितकथन में ।" अधर में वह अधरों की प्यास " में शरीर-सुख के कोमल पक्ष अधरपान को बहुत तीव्र - प्रखर और मांसल ढंग से अंकित किया गया है, और इसी के साथ 'नयन में दर्शन का विश्वास " की समर्पणमयी निश्छलता एक " विश्वास " प्रयोग से और घुल-निखर जाती है, कुछ कुछ उसी तरह, जैसे 'आँसू' की निम्न पंक्तियों में " पर्व " प्रयोग -

चंचला स्नान कर आवे
चाँदनी पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी ।

प्रसाद के बहुत मांसल और यौन अंकन के प्रसंगों में भी उनकी पकड़ और व्याख्या से बाहर मानसिकता, उनका अनुभव-संवेदन समाविष्ट हो जाता है और समाविष्ट ही नहीं होता, बल्कि केन्द्रीय - या अनतिरंजित ढंग से कहें, तो महत्वपूर्ण - स्थान बना लेता है । काव्यभाषा के स्तर पर जब ऐसे जटिल अनुभव-संश्लेषण को बिंबों के माध्यम से साक्षात्कृत किया जाता है, तब तो इन साक्षात्कारों की सफलता पर आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि वहाँ - उस तरह की पद्धति में - वही बिंबों की द्वन्द्वात्मक प्रकृति के बल पर गहराई में स्थित होता चलता है । लेकिन

भाषा के सामान्य रूप में पर्यवसित हो जाता है, यह सच है, चमत्कार-उक्ति के रूप में रखा गया नहीं प्रतीत होता । प्रणय की तीव्रता, आत्मीयता तथा प्रभावोत्पादकता " आँखों की छाया " प्रयोग के माध्यम से और भी निखर जाती है । और अतिरिक्त पहली पंक्ति का " सुन्दर " प्रयोग अपने प्रचलित सामान्य अर्थ के बावजूद अपूर्व ताज़गी से भरपूर है - " वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे ।"

एक दूसरे गीत " मेरी आँखों की पुतली में " का एक प्रयोग " प्रान " भी " आँखों की छाया भर " की तरह से गहरी-आत्मीय व्यंजनाएँ उद्बुद्ध करता है :

मेरी आँखों की पुतली में
तू बनकर प्रान समा जा रे ।

एक तो पुतली शरीर का सब से कोमल और सब से मूल्यवान् अवयव है, फिर उसमें " प्रान " बनकर समाने की अनुनय आत्यंतिक आसक्ति एवं उत्कण्ठा से उपजी है । इस तरह के सूक्ष्म-द्वन्द्वात्मक अन्तरंग अंकनों में प्रेमास्पद भी स्थूल शरीरधारी मात्र नहीं रहता, वह स्वयं एक भव्य-उदात्त सूक्ष्मानुभव में रूपान्तरित हो जाता है । इस तरह, जहाँ तो भाव ही सूक्ष्म रहता है, फिर उसका अंकन भी वैसी ही सूक्ष्मता के साथ होता है । यह दुहरी सूक्ष्मता प्रसाद की रचना को जटिल और सघन बना देती है, और कहीं यह जोड़ना अनिवार्य होगा कि प्रसाद के साथ एकरसता, ऊब की प्रतीति न होने ; बल्कि उनके अधिक उन्मुक्त और सघन होते जाने के मूल में उनकी यही दुहरी ,गुणनात्मक सूक्ष्मता का हाथ है । इस स्थापना के व्यावहारिक निदर्शन-स्वरूप इसी गीत का अन्तिम अंश रखा जा रहा है :

जिसमें वन-वन में स्पंदन हो
मन में मलयानिल चंदन हो
करुणा का नव अभिनन्दन हो
वह जीवन-गीत सुना जा रे ।

ऐसे अंशों का शाब्दिक अर्थ संभव नहीं, केवल उनके प्रभाव का - वह भी एकान्तिक संवेदनात्मक स्तर पर - विश्लेषण हो सकता है । इस सूक्ष्मानुभव से

संपृक्त होने पर, अपने व्यक्तित्व में उसे रचाने- पचाने पर, जो विलक्षण (लेकिन चमत्कार के स्तर पर नहीं - अनुभूति की मार्मिकता के स्तर पर) प्रतिक्रियाएँ उद्भूत हो जाती हैं, उनकी संभावना को कवि पहले तो यों पहचानता है - " जिससे कन-कन में स्पंदन हो " , फिर उसे भी और अधिक उन्मुक्तता-सघनता में संप्रेषणीय बनाने के लिए एक सूक्ष्म-अमूर्त चित्र गढ़ता है; 'मन में मलयानिल चन्दन हो ।' और इस तरह, अनुभव-प्रक्रिया में वैसी ही, सुगंधि ,सुकुमारता की व्यंजनाएँ विकसित होती हैं ।
अंत में सामान्य-सा " है " संजीवन आत्मीयता को उभारता है, जो अनुभव-भाव को भी तीखा बनाता है ।" मधुर माधवी संध्या में जब रागारुण रवि होता अस्त " प्रसाद के उन विशिष्ट गीतों में से है, जिनमें अन्तर्मन की बेचैनी - बेबसी को स्वर दिया गया है ।" मधुर माधवी संध्या में अस्त होता रागारुण रवि ", " डालों से उलझा व्यस्त समीर " ," कोकिल की अधीर कूक " गोपनीय भावना को खोलने की कोशिश करती है :

> मधुर माधवी संध्या में जब रागारुण रवि होता अस्त,
> विरल मृदुल दलवाली डालों में उलझा समीर जब व्यस्त,
> प्यार भरे श्यामल अम्बर में जब कोकिल की कूक अधीर,
> नृत्य-शिथिल बिछली पड़ती है, वहन कर रहा उसे समीर,
> तब क्यों तू अपनी आँखों में जल भर कर उदास होता,
> और चाहता इतना सूना - कोई भी न पास होता ?

यहाँ कोई परंपरित ढंग के उद्दीपन रूप में प्रकृति के उपादानों की अवतारणा नहीं है, यह तो वस्तुतः स्वयं कवि - अथवा भोक्ता - के लिए भी अनिर्दिष्ट - अस्पष्ट मानसिकता को समझने की नई और अधिक संश्लिष्ट प्रक्रिया है, और यह समझ पूरी तौर पर फलवती होती भी कहाँ है - तब क्यों तू अपनी आँखों में जल भरकर उदास होता / और चाहता इतना सूना- कोई भी न पास होता ?

" क्यों " के प्रयोग से मानवीय अनुभूति - संवेदन के खास स्वरूप (अपने में उलझे, अनिश्चित और इसीलिए गतिशील होने के कारण व्याख्यमाणता की पृच्छाशील प्रकृति के लिए एक प्रीतिकर चुनौती) को पहचान-समझकर फिर उसे वैसा-ही सूक्ष्म-गूढ़ रूप में छोड़ दिया गया है, जो किसी तरह की कलात्मक अक्षमता का

यौवन न यौवन पूरी तौर पर समझ में न आनेवाले अनुभव-संवेदन को कला के स्तर पर उसी बारीक और सुकुमार अनिश्चितता से प्रस्तुत कर कविता को जीवन की पुनर्रचना बनाने की सृजनात्मक प्रवृत्ति से परिचालित है।

'लहर' में स्फुट कविताओं के अतिरिक्त तीन कथा-युक्त लम्बी कविताओं की नियोजना है। 'अशोक की चिन्ता' में मौर्य सम्राट् अशोक की वैराग्यपरक मन:स्थिति का अंकन है, जो कलिंग-विजय के समय घटित भीषण नर-संहार देखकर उद्भूत हुई थी। एक छन्द यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :

फिर निर्जन उत्सव-शाला
नीरव नूपुर श्लथ माला
सो जाती है मधुबाला
सूखा लुढ़का है प्याला,
बजती वीणा न यहाँ मृदंग।

यहाँ क्षणिकतावादी नश्वरता और उसके एहसास से उद्भूत विषाद के अनुभव को निर्जन उत्सव-शाला के सूक्ष्म-सुकुमार बिंब में ही निरूपित किया गया है। इस बिंब में ही मध्यकालीन वैराग्यपरक भावना उतनी नहीं उभरती, जितनी आधुनिक कवि की स्थिति की दुर्निवार क्षणिकता और मानव की लाचारी से उपजी हल्की खीज तथा बेचैनी की भावना। इस प्रसंग में देवसेना के आलाप, शून्य जीवन की एकान्तिकता व्यक्त करनेवाला एक मिलता-जुलता बिंब स्मरण हो आता है : 'संगीत-सभा की अन्तिम लहरदार और आश्रयहीन तान, धूपदान की एक क्षीण गन्ध-रेखा, कुचले हुए फूलों का म्लान सौरभ और उत्सव के पीछे का अवसाद, इन सबों की प्रतिकृति मेरा क्षुद्र नारी-जीवन।' [1] इस अतिशय सूक्ष्म-सुकुमार और कलात्मक बिंब-माला में निहित उदासी तथा सूनेपन में देवसेना का सीमाबद्ध आत्म-परिचय बहुत तीखा और इसीलिए मार्मिक हो जाता है।

'अशोक की चिन्ता' कविता में एक अन्य, कल्पनायुक्त अधिक विराट्-गंभीर बिंब में प्रसाद नश्वरता के अनुभव को यों अभिव्यक्त करते हैं :

---

१) स्कन्दगुप्त, पृ० १३२।

वृक्ष-माला तक में इतनी निश्चेष्टता और जड़ता आ गई है कि वे चित्रशाला में चित्रित वृक्षों की तरह लग रहे हैं । इसी तरह दूसरा बिंब धूसर शब्द-खण्ड का है : जो किनारे के महलों की छाया में परिकल्पित विषाद-खण्डहर के लिए प्रयुक्त हुआ है । " धूसर " शब्द की व्यंजना देखी जा सकती है, शब्द-खण्ड मात्र नहीं है, अन्यथा उनमें जड़ होता , वे तो धूसर हैं, जड़-शून्य हैं, जीवन-शून्य हैं । महाराणा प्रताप की वेदना, श्रीहीनता धूसर शब्द-खण्ड के महत्व में उभर उठी है।

" प्रलय की छाया " " लहर " की लम्बी और सब से लम्बी कविता है । इसका संगठन प्रसाद की अत्यन्त संवेदनशील और सानुरूप रचना-प्रक्रिया का परिचायक है । गुर्जर की रानी कमला के माध्यम से कवि ने रूपगर्विता नारी के सौन्दर्य और दर्पमयी मानसिकता का उन्मुक्त अंकन किया है । एक ओर हैं सौन्दर्य-विलास के कुंठित - मादक चित्र, दूसरी ओर हैं पराजित सौन्दर्य की पश्चाताप-पूर्ण स्थिति का अंकन है। इस प्रकार कवि प्रसाद खड़ीबोली हिन्दी पर आधारित काव्यभाषा के परंपरा से प्राप्त इतिवृत्तात्मक, रूखे रूप में भरपूर संवेदनशीलता और कोमलता प्रतिष्ठित कर सके हैं । स्मृति-रूप में शेष विगत की रागमयी संध्या का बिल्कुल नये ढंग से अंकन हुआ है :

> और उस दिन तो
> निर्जन जलधि-वेला रागमयी संध्या से -
> सीखती थी सौरभ से भरी रंग-रलियाँ ।
> दूरागत वंशी-रव
> गूँजता था धीवरों की छोटी-छोटी नावों से ।

संध्या का सारा मादन-तत्त्व केवल एक प्रयोग " वंशी-रव " में ही उभर उठा है । वंशी-रव जो एक साथ ही अर्थ की अनेक छायाओं की सृष्टि कर उनके परस्पर संघात से पूरे अंकन को बहुत उन्मुक्त बनाता है । वंशी - रव - और वह भी धीवरों की नावों से गूँजता हुआ दूरागत वंशी-रव - अपने में ही माधुर्य, उत्फुल्लता, निश्चिन्तता और — स्वच्छन्दता का परिचायक है, फिर उसके साथ मध्यकालीन कृष्णाख्यान-काव्य में बहुचर्चित मुरली-प्रसंग का साहचर्य होने से वह संदर्भापित हो जाता है । कृष्ण की मोहक मुरली-

निरूपण की शैली में ध्वनि-वर्णों की संपुष्टि के माध्यम से अधिक गहरा और कलात्मक आकार उद्भूत करता है। कमला जी का परिनिष्ठित शोभा की [illegible] अंतरिक्ष की अरुणिमा फैले हुए दिगन्त-व्यापी संध्या-संगीत के ध्वनि-वर्ण-[illegible]-विराट् पर सुकुमार बिंब में ही उन्मुक्त तथा विकसित करता है।

प्रसाद के विशिष्ट सुकुमार बिंबों में एक है - जली हुई अगरबत्ती का बिंब, जो " प्रलय की छाया " में रूपवती, किन्तु मान-मर्यादा से च्युत रानी कमला के निष्फल अहंकार और संत्रास को रूपायित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। आत्मालोचन के रूप में प्रयुक्त किये जाने के कारण यह और भी मार्मिक हो गया है :

कृष्णागुरुवर्तिका
जल चुकी स्वर्ण पात्र के ही अभिमान में
एक धूम-रेखा -मात्र शेष थी,
उस निस्पन्द रंग-मन्दिर के व्योम में
क्षीण-गन्ध निरवलम्ब।

सुगंधित धूपबत्ती भले ही यह अभिमान करे कि वह राजभवन के स्वर्ण-पात्र में है, पर वह राख हो चुकी है। उसकी सुगंधि के साथ एक धुँए की रेखा-मात्र शेष बची है, जिसके ठीक समानान्तर स्थिति कमला की है। उसका सारा रूप-गर्व, पद-प्रतिष्ठा निस्सार है, क्योंकि उसकी मान-मर्यादा नष्ट हो चुकी है। एक धूमरेखा-मात्र शेष कृष्णागुरुवर्तिका का यह बिंब पहली नज़र में इतना अर्थवान् नहीं लगता, सूक्ष्मता से समझने - परखने पर ही अर्थों की परतें खुलती हैं। एक धूमरेखा-मात्र शेष थी " ऐसा प्रयोग फिर से देवसेना के त्रस्त नारी-जीवन को अंकित करनेवाले उस बिंब की याद दिला देता है " धूपदान की एक क्षीण गन्ध रेखा "[1]

एक ही बिंब अपने विविध अर्थ-स्तरों से किस तरह एक ओर " प्रलय की छाया " में कमला के पराजित जीवन को रूपायित करता है और दूसरी ओर देवसेना के गहरे रूप में उदास- महत्त्वहीन जीवन को उभारता है - यह इन दोनों कथनों से देखा जा सकता है।

---

१) स्कन्दगुप्त, पृ० १४२

"कामायनी" के माध्यम से कवि की भाषा-क्षमता की व्यापक सीढ़ी में, महत्त्वाकांक्षी सृजन में परीक्षा होती है। "कामायनी" से ही यह पता चलता है कि प्रसाद वर्णन की भाषा के प्रति आरंभ से लेकर अन्त तक उदासीन रहे हैं। इसकी जानकारी "आँसू" और "झरना" से नहीं होती, क्योंकि वहाँ गीतों के सूक्ष्म रचना-विधान में वर्णनात्मक भाषा के लिए गुंजाइश ही नहीं है। लेकिन "कामायनी" अपनी सूक्ष्म-संश्लिष्ट रचना-प्रक्रिया के व्यापक प्रबन्धात्मकता से संपन्न है। वह मानवीय संस्कृति के विकास-क्रम-की एक सूक्ष्म स्तर पर भी - का आख्यान है। अतएव उसमें पूरे बचाव के बावजूद वर्णनात्मकता की उपस्थिति स्वाभाविक है। ऐसी वर्णनात्मक अंश "चिन्ता", "ईर्ष्या", "संघर्ष" सर्गों में अधिक है, और भाषा-संबंधी चिन्त्य दोष इनमें देखे जा सकते हैं, किन्तु वर्णनात्मक भाषा की इस सीमा से पूरी रचना-प्रक्रिया को, कामायनी के समग्र प्रभाव को कोई क्षति नहीं पहुँचती। अपने में यह बड़ी बात है और काव्यभाषा के सर्जनात्मक पक्ष के केन्द्रीय महत्त्व की ओर संकेत करती है, जिसका वर्णन की भाषा से स्थूल रूप में ही संबंध है - रचनात्मक स्तर पर नहीं और इसीलिए वो अपनी अपूर्व अर्थ-उन्मुखता के कारण वर्णनात्मक भाषा-गत सभी त्रुटियों को रचना के स्तर पर एकदम महत्त्वहीन कर देती है।

कहना न होगा कि "कामायनी" में काव्यभाषा का सर्जनात्मक पक्ष बहुत समृद्ध है, जिसके कारण अर्थ के चुकने की स्थिति कभी आती नहीं। कवि की भाषागत सर्जनात्मकता मुख्यतः उसके बिंब-प्रयोगों के माध्यम से विकसित हुई है। मानसिक वृत्तियों को मानवीय संस्कृति के विकास से संपृक्त कर उन्हें समझने-समझाने की रचनात्मक बेचैनी कवि का मूल-मन्तव्य रहा है, जिसे बिंब रचना पूरा करती है। "चिन्ता" से आरंभ कर "आनन्द" में पर्यवसान के लिए बिंब-विधान की सूक्ष्म, संश्लिष्ट और नयी प्रक्रिया की तलाश करनी थी, इस तलाश के लिए रचनात्मक सक्रियता "कामायनी" के प्रायः हर सर्ग में देखी जा सकती है, किंतु "श्रद्धा", "काम", "वासना", "लज्जा" और "इड़ा" सर्गों में यह अपने उत्कृष्टतम रूप में है।

खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा के लिए यह अपने में बड़ी बात है कि वह द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक आग्रह के बाद सूक्ष्म मनोविकारों को

मधुर विश्रान्त और एकांत —
जगत का सुलझा हुआ रहस्य
एक करुणामय सुन्दर मौन
और चंचल मन का आलस्य ।

परंपरित महाकाव्यों के नायक के रूप-गुण कथन की जो अतिशयोक्तिपरक वर्णनात्मक पद्धति है, उसका प्रत्याख्यान कर सूक्ष्म, सुकुमार और आत्मीय ढंग से नारी पुरुष को देखती है । इन तीन नये बिंबों में मनु के जटिल व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश की गई है, जिसे पहले कवि कुछ परिचयात्मक ढंग से (यद्यपि उसमें भी प्रभावोत्पादकता पूरी-पूरी है) रख चुका है :

चिंता कातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओत-प्रोत,
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत ।

प्रसाद के बिंबों की विशिष्टता इस रूप में देखी जा सकती है कि जहाँ उनमें दृश्य-पक्ष आता भी है, वहाँ उसके मूल में या उसके माध्यम से — किसी सूक्ष्म स्थिति को उरेहना कवि की प्रमुख चिन्ता रहती है । काम और वसंत की स्थितियों का संयुक्त अनुभव प्रस्तुत करने की चेष्टा 'काम' सर्ग के आरंभिक आठ छंदों में देखी जा सकती है, जिनमें वसंतकालीन प्रकृति की चित्रात्मक प्रतिष्ठा एक गहरे सुकुमार अर्थ को विकसित करती है :

जब लीला से तुम सीख रहे
कोरक कोने में लुक रहना !
तब शिथिल सुरभि से धरणी में
बिछलन न हुई थी ? सच कहना ।

प्रेमास्पद के मानस में यौवन-जन्य काम-भाव का धीरे-धीरे प्रस्फुटन करने में एक नाजुक प्रक्रिया है, जिसे संवेदनशील कवि कलात्मक सुरुचि के साथ अंकित करता है ।

वृत्तियों के क्रम में निष्णात प्रसाद पूरे मनोयोग से लज्जा का स्वरूप स्थापित करते हैं। यहाँ तो प्रायः प्रत्येक छंद में वे अपनी प्रकृति में सुकुमार सूक्ष्म और संश्लिष्ट बिंबों की नियोजना करते हैं और यह प्रसाद के माध्यम से छायावाद के लिए रची गई काव्यभाषा की रचना में स्मरणीय और अनूठी उपलब्धि है कि वह खड़ीबोली की सारी इतिवृत्तात्मकता और अक्खड़पन निरस्त कर (किन्तु साथ ही जो ब्रजभाषा जैसी कोमलता - जिसमें जटिल संश्लिष्ट अर्थ-छायाओं को अनुस्यूत करना कठिन हो जाता - से अलग) लज्जा जैसी सुकुमार वृत्ति को भी गहराई में आत्म-विश्वास के साथ प्रकाशित करती है।

मनु से अपनी शारीरिक सान्निध्य के पूर्व श्रद्धा के भीतर प्रवेश करती लज्जा का अनुभव जगने में घटित है। प्रसाद लज्जा-भाव की सुकुमारता, अपने में अस्पष्ट-गोपनीय प्रकृति की स्थितियों को इन दो बिंबों से ही चित्रित करते हैं :

कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी ;
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती-सी ।

छायावादी लाक्षणिकता अपनी मध्य-रचनात्मक रूप में इसी छंद के माध्यम से झलकी जा सकती है :

वरुणी की माया में छिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए ।
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए ।

लज्जा के आगमन पर श्रद्धा - व्यापक स्तर पर हर युवती - के मानस में उपजी विचित्र संकोच और उन्माद की अनुभूतियों का सूक्ष्म, लाक्षणिक अंकन क्रमशः 'अधरों पर उँगली धरे हुए' और 'माधव के सरस कुतूहल का आँखों में पानी भरे हुए' प्रयोगों से संभव हो सका है।

लज्जा के प्रभाव से नारी के मनोजगत में अभूतपूर्व परिवर्तन

होता है, उसके मन में एक अतिरिक्त गरिमा आ जाती है, जिसकी स्पष्ट पहचान श्रद्धा नहीं कर पाती । श्रद्धा की विशिष्ट स्थिति को उसी के स्तर पर विकासशील बने रहने देने के लिए कवि पुलकित कदंब की माला का बिंब रचता है :

पुलकित कदंब की माला-सी
    पहना देती हो अन्तर में ;
झुक जाती है मन की डाली
    अपनी फलभरता के डर में ।

मन की डाली के झुकने के चित्र में लज्जाजनित सौन्दर्य से उपजी जो विनम्रता, गरिमा, भंगिमा आदि की मिली-जुली व्यंजनाएँ हैं, वे भारतीय नारी के चित्र को संपूर्ण बनाती हैं ।

इसके आगे नारी - विशेषतः युवती - के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लज्जा की विशिष्टता को कवि जिस तरह से अंचल के बिंब में स्थापित करता है, वो उनकी कविता में बेजोड़ है :

वरदान सदृश हो डाल रही
    नीली किरनों से बुना हुआ,
यह अंचल कितना हल्का-सा
    कितने सौरभ से सना हुआ ।

नीली किरनों से बुना, हल्का और सौरभ से सना अंचल लज्जा भाव से निहित सुकुमारता, सूक्ष्मता, कमलता और मादकता की व्यंजनायें उद्भूत करता है ।

नारी की अनुभूत लज्जाजन्य कोमलता की मोम से एकरूपता कोई चमत्कार के स्तर पर नहीं है :

सब अंग मोम से बनते हैं
    कोमलता में बल खाती है ,
मैं सिमिट रही-सी अपने में
    परिहास गीत सुन पाती हूँ ।

अन्तिम दो पंक्तियों में श्रद्धा की अपनी ही समझ से बाहर स्थिति उभर उठती है।

श्रद्धा और लज्जा के संवाद में श्रद्धा की लज्जा के प्रति जिज्ञासा का समाधान लज्जा जिस तरह से करती है, वह अपने में बहुत भव्य बन पड़ा है। छन्दों की एक ऊँची माला में विराट् सौन्दर्य का अंकन करने के बाद वह अपने को उस सौन्दर्य की धात्री बतलाती है :

मैं उसी चपल की धात्री हूँ
    गौरव महिमा हूँ सिखलाती,
ठोकर जो लगने वाली है
    उसको धीरे से समझाती ।

यहाँ सौन्दर्य - यौवन के चंचल- निर्दोष सौन्दर्य को कवि बच्चे के बिंब से ही उभारता है। लज्जा के उदय से पूर्व नारी की स्थिति को बच्चे की स्थिति के समानान्तर रखकर कवि नारी के व्यक्तित्व में लज्जा की उपस्थिति एक सांस्कृतिक तत्त्व के रूप में परिलक्षित करता है। इसी भावभूमि में यह छन्द है :

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
    मैं शालीनता सिखाती हूँ,
मतवाली सुन्दरता पग में
    नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।

नृत्य-काल में नर्तकी के चरणों की गति को नूपुर नियंत्रित करते हैं। लज्जा का कार्य भी नूपुर जैसा ही है, क्योंकि वह नारी के यौवन-सौन्दर्य को एक लय में रखती है। यहाँ यद्यपि नर्तकी का उल्लेख नहीं है, तथापि एक 'नूपुर' के बिंब से नृत्यकालीन सम्पूर्ण परिवेश आलोकित हो उठता है और मादकता, चपलता, भंगिमा, लावण्य, सुकुमारता और इन्हीं सी मिलती- जुलती न जाने कितनी छवि-छायाएँ उद्भूत होती है। इस तरह लज्जा एक ओर तो धात्री बनकर चपल यौवन की,

भाँति सौन्दर्य की रखवाली करती है, चूड़ी और नूपुर की तरह सुकुमारता की मादक और उच्छृंखल भावनाओं का नियंत्रण करती है।

इसके पूर्व के एक छन्द में देवसृष्टि की रति रानी का नयी मानव-सृष्टि में लज्जा-भाव में रूपान्तरण करने में बहुत सूक्ष्म है :

अवशिष्ट रह गई अनुभव में
  अपनी अतीत असफलता-सी,
लीला विलास की खेद भरी
  अवसाद मयी श्रम दलिता -सी।

छन्द में लज्जा के सूक्ष्म प्रभाव को संवेद्य बनाने के लिए कवि प्रसाद एक अत्यन्त सुकुमार पर मांसल बिंब की रचना करते हैं, जो उनकी सौन्दर्य-भावित कल्पना का निदर्शन माना जा सकता है :

चंचल किशोर सुन्दरता की
  मैं करती रहती रखवाली;
मैं वह हलकी-सी मसलन हूँ
  जो बनती कानों की लाली।

विशिष्ट ढंग के आंगिक विकार पर जमी हुई कवि-दृष्टि अनुभव के स्तर पर बहुत संवेदनशील बन पड़ी है। लज्जा में निहित गरिमा, गंभीरता, मृदुता, श्री की अर्थ-छायाएँ कानों की लाली बननेवाली हल्की सी मसलन – जो लज्जा का ही अनुभाव है – के नये बिंब में ही उभरती हैं। छायावाद-विषयक अपने निबन्ध में कवि ने छायावादी काव्यभाषा की संरचना में मोती के पानी (यानी कान्ति) को विशेष स्थान दिया है : " अपने भीतर मोती के पानी की तरह आंतर स्पर्श करके भाव समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति छाया कान्तिमयी होती है।"[१]

अपने श्रेष्ठ अंशों में – विशेषतः लज्जा की परिकल्पना में – प्रसाद मोती की इसी चमक (अर्थ की गतिमयता-सुकुमारता) को अक्षुण्ण रखते हैं।

" कामायनी " का " श्रद्धा " सर्ग अपने विराट्-जटिल बिंब-विधान की दृष्टि से बहुत प्रभावशाली बन पड़ा है। श्रद्धा की सीधी-सरल जीवन-पद्धति

---

१) काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२६।

से इस प्रकार सारस्वत प्रदेश में पहुँचे हुए एकाकी मनु की सृष्टि सम्बन्धी जिज्ञासा और अबोधाछिनी प्रकृति से उद्भूत एक विशिष्ट तरह की विकलता को कवि ने बिंबित बनाया है। पहले छंद " किस गहन गुहा से अति अधीर " में महासमीर का विराट्-प्रभावक बिंब पूरी सृष्टि-प्रक्रिया को अपने में समेट लेता है।" जीवन-निशीथ के अन्धकार " शीर्षक दो पंक्तियों में बिंब-गठन बहुत ही जटिल और प्रौढ़ है, जिसमें मनु या मानव-मात्र के मन की महत्वाकांक्षाओं की विभ्रममयी स्थिति और निबिड़ अंधकार का वातावरण संश्लिष्ट होकर एक दूसरे के अनुभव को अधिक सघन बनाते चलते हैं।

श्रद्धा के तेजस्वी और सौन्दर्यमय व्यक्तित्व की प्रभावोत्पादकता को कई स्तर पर उन्मुक्त प्रत्यग्रता प्रदान करने के लिए कवि तापि बिंबों की रचना करता है :

वह मदन-महोत्सव की प्रतीक, अम्लान नलिन की नवमाला

विशेषतः " मदन-महोत्सव की प्रतीक " के बिंब में महोत्सव प्रयोग सौन्दर्य के प्रभाव को सूक्ष्म और गतिशील स्तर पर छूता है। इस प्रयोग के संदर्भ में ' श्रद्धा ' सर्ग का यह अंश याद आ जाता है :

और देखा वह सुन्दर दृश्य
नयन का इन्द्रजाल अभिराम;

यहाँ ' दृश्य ' प्रयोग करने में बहुत कौशल है, जैसे श्रद्धा का सौन्दर्य अपने प्रभाव में किसी दृश्य से कम नहीं है, यह व्यंजना उद्भूत होती है। इस तरह पुरानी पद्धति पर अधिकतर तरह-तरह के उपमान जुटाकर नारी सौन्दर्य का ब्यौरेपरक अंकन करने के बजाय एक खास प्रयोग से सारी स्थिति को अत्यन्त सूक्ष्मता और संश्लिष्टता में रूपायित करने की यह प्रक्रिया छायावादी काव्यभाषा के संदर्भ में उल्लेखनीय है।

मनु के द्वारा उपेक्षित बैठी श्रद्धा की उदास-मलिन स्थिति " स्वप्न " सर्ग के प्रारंभिक अंशों में बहुत शान्त संयमशीलता के साथ अंकित हुई है। संस्कृत और हिन्दी काव्य में विरह-वर्णन की लम्बी, प्रशस्त परंपरा के बीच कामायनी के विरहिणी रूप का यह अंकन अपने में बहुत सादा, किन्तु मार्मिक बन पड़ा है। कुछ

की चार पंक्तियों में छूटते हुए पुरी से भिन्न है संध्याकालीन शुभिलता की व्यंजना श्रद्धा के हृदय की गहरी उदासी को संप्रेषित करती है । आगे कामायनी का श्री-हीन जीवन इन विविध बिंब-प्रयोगों में ही उभरता है :

> कामायनी-कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरन्द रहा
> एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहाँ ?
> वह प्रभात का हीन कला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही ?
> वह संध्या थी, रवि शशि तारा ये सब कोई नहीं जहाँ ।

मकरन्द-शून्य कुसुम , रंगरहित रेखाचित्र, प्रभातकालीन निस्तेज शशि और प्रकाश रहित संध्या के बिंबों में कामायनी की - या व्यापक स्तर पर पुरुष-रहित नारी के - वैभव-शून्य, उदास जीवन का अनुभव ही के स्तर पर अधिक उन्मुक्त बन जाता है ।

श्रद्धा के इस निस्तेज व्यक्तित्व का अंकन करता हुआ कवि उसे सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर करता चलता है, जिससे कि वह एक विशिष्ट अनुभव बन जाता है :

> एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली की झनकार नहीं
> जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, एक कसक साकार रही
> हरित कुंज की छाया भर थी वसुधा आलिंगन करती
> वह छोटी-सी विरह नदी थी जिसका है अब पार नहीं ।

विरह-वर्णन की ऊहात्मक - चामत्कारिक प्रणाली से कितना अलग यह सूक्ष्म चित्रण संवेदनात्मक स्तर पर बहुत ग्राह्य बन पड़ा है। इस पूरे अंकन में गम्भीर पीड़ा का एक व्यापक भाव-चित्र निर्मित होता है ।

श्रद्धा की प्रगाढ़ अन्तर्वेदना का मनोवैज्ञानिक परिणमन इस छंद में देखने योग्य है, जहाँ काव्यभावना का निर्वेद-निर्मोचन रूप श्रद्धा-सुत कुमार की अवतारणा से वात्सल्य का कोमल परिवेश निर्मित कर देता है :

> "माँ - फिर एक किलक दूरागत, गूँज उठी कुटिया सूनी,
> माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कण्ठा दूनी ;

छुटी खुली अलक, रज-धूसर बाँहें आकर लिपट गयीं,
निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी !

“ संघर्ष ” सर्ग में यों तो प्रसाद की रचना-प्रक्रिया उनकी प्रौढ़ शैली के परिप्रेक्ष्य में – बहुत पुष्ट नहीं है, लेकिन ऊर्ध्व अनुभवों की सूक्ष्मता को कवि ने पूरी विराटता में व्यायित किया है, जिसे “ मेरी कल्पना आज परिधि में सोती जग है ” की शैली में देखा जा सकता है ।

“ निर्वेद ” में मनु और इड़ा से पुत्र मानव श्रद्धा की भेंट के बाद श्रद्धा का एक गीत प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वह आत्म-जगत के बिंबों में श्रद्धा-भाव जो वस्तुतः जीवन में आस्था-कर्मठता का द्योतक है – को सहज प्रतिपादित करती है । उस का एक अंश इस प्रकार है :

तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की बात रे मन !

विकल होकर नित्य चंचल,
खोजती जब नींद के पल,
चेतना थक सी रही तब,
मैं मलय की बात रे मन ।

यहाँ कोमल-संवेदनशील स्तर पर कोलाहलमय जीवन में व्यापती अपेक्षा और ऊब के बीच राहत देनेवाली श्रद्धा-वृत्ति का अंकन है ।“ मलय की बात ” का बिंब श्रद्धा से परिचालित जीवन में निहित ताज़गी, ऊष्मा, स्पन्दन, सुगन्धि, मादकता और सुकुमारता को उभारता है ।

“दर्शन ”,“ रहस्य और आनन्द ”,“ सर्गों में काव्यभाषा संवेदना को उतना अनुभवपरक नहीं बना पाती, जितना श्रद्धा, काम, लज्जा आदि सर्गों में। यहाँ कुछ ही अंश ऐसे हैं, जिनमें कविता बनने की स्थिति है । नटराज के नृत्य का विराट भव्य अंकन, ऊर्ध्वचेता के अनुभव का सूक्ष्म संस्पर्श, तीनों लोकों की फैंटेसी में अनुस्यूत प्रौढ़ अन्तर्दृष्टि ,मानसरोवर प्रतीक का कलात्मक चित्रण सुचिक्कन है, जिनमें

प्रसाद ने कला-श्रेष्ठता और चिन्तन गरिमा का भव्य संश्लेषण किया है।" आनन्द " सर्ग में पूरी प्रकृति का लोकोत्तर आनन्द बड़े मांसल, जीवन्त और पुष्ट बिंबों में व्यक्त हुआ है।

प्रसाद की समग्र काव्य-रचनाओं के अध्ययन से उनकी संश्लिष्ट रचना-प्रक्रिया के बारे में पाठक और समीक्षक की समझ कई रूपों में विकसित होती है। इस संदर्भ में पहली बात उनके बिंबों की संरचना को लेकर है। प्रसाद में बहुधा बिंबों के सूक्ष्मीकरण की प्रवृत्ति है।" लहर " की पहली कविता में कवि लहर के लिए " मलयानिल की परछाईं " का बिंब प्रस्तुत करता है। मलयानिल अपने में सूक्ष्म-अमूर्त है, उसकी परछाईं तो और अधिक सूक्ष्म तथा सामान्य ऐन्द्रिक संवेदना की पकड़ से बाहर कर देती है। इस दुहरी सूक्ष्मता की अभिव्यक्ति से कवि लहर-गामी भावना, जीवन के स्पन्दन - के अनुभव को और अधिक सौम्य-सूक्ष्म बना देता है, तथा भावना को अनिर्दिष्ट अस्पष्ट प्रकृति का संकेत देता प्रतीत होता है। मलय से सूक्ष्मीकृत रूप का इससे भी बढ़िया उपयोग प्रसाद 'काम' सर्ग के इस अंश में करते हैं :

है स्पर्श मलय के झिलमिल-सा
  संज्ञा को और सुलाता है ;
पुलकित हो आँखें बन्द किये
  तन्द्रा को पास बुलाता है।

प्रथम प्रणय के स्पर्श का अनुभव - और वह भी देव-सृष्टि के स्थूल उद्दाम विलास के विपरीत संदर्भ में - मलय के झिलमिल -सा " के बिंब में बहुत भास्वर और निश्चित बन पड़ा है। नयी मानवीय सृष्टि की सूक्ष्म प्रेम-वृत्ति से अनभिज्ञ देवसृष्टि के अवशेष मनु का प्रणय-स्पर्श के अनुभव की पकड़ में असमर्थ होना स्वाभाविक है, और उनकी इस विशिष्ट स्थिति को" मलय के झिलमिल -सा " का बिंब अपनी शाब्दिक अर्थ पद्धति में अविश्लेष्य ,सूक्ष्म-अमूर्त प्रकृति के माध्यम से संप्रेष्य बनाता है। यदि व्यापक रूप में देखा जाए, तो सभ्यता संस्कृति के लम्बे विकास से गुज़रे हुए मानव के संदर्भ में भी (उसके प्रथम प्रणयानुभव काल में) यह बिंब सटीक उतरता है।

जटिल अनुभव-संश्लेषण को उसकी पूरी जटिलता में संस्पर्श कर सकने की महत्त्वाकांक्षा से परिचालित प्रसाद " आँसू " में रात्रि के लिए स्पर्शहीन अनुभव का बिंब रचते हैं :

तुम स्पर्शहीन अनुभव-सी
नन्दन तमाल के तल से
जग छा दो श्याम-लता सी
तन्द्रा पल्लव विह्वल से ।

अनुभव की प्रकृति सूक्ष्म-अमूर्त होती है । यहाँ " स्पर्शहीन अनुभव " कहकर उसे और अधिक सूक्ष्म बना दिया गया है । सामान्यतः अनुभव स्पर्श का परिणाम होता है, लेकिन प्रसाद का अनुभव भी स्पर्शहीन है । इस तरह कवि रात्रि की सूक्ष्म-अमूर्त प्रकृति को सामान्य ऐन्द्रिय संवेदना से ऊपर उठा देता है । एक तो इस बिंब में कवि का अनुभव (रात्रि) सूक्ष्म है, दूसरे उस अनुभव की संप्रेषण-प्रक्रिया ('तुम स्पर्शहीन अनुभव-सी') और भी महीन है । इस तरह की सुन्दर सूक्ष्मानुभूति " लहर " के गीत " मेरी आँखों की पुतली में तू बनकर प्रान समा जा रे " में भी देखी जा सकती है, यद्यपि वहाँ पर कवि की संवेदना भिन्न कोटि की है ।

श्रद्धा के सौन्दर्य को सूक्ष्म प्रभावात्मक स्तर पर संप्रेषित करने की रचनात्मक बेचैनी कवि प्रसाद में " श्रद्धा " सर्ग के अन्तर्गत देखी जा सकती है, जिसका कदाचित् सब से बढ़िया उदाहरण वह अंश है, जहाँ श्रद्धा के सौन्दर्य-अंकन के लिए साकार सौरभ के सूक्ष्मीभूत बिंब की योजना है :

कुसुम कानन-अंचल में मंद
पवन प्रेरित सौरभ साकार,
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार ।

यहाँ श्रद्धा को तो एक पूर्ण-सा अमूर्त चित्र है, पर वह कितनी सूक्ष्म-विरल रेखाओं से बना हुआ है, यह देखा जाना चाहिए । कवि यहाँ रचनात्मक

कुछ के साथ " साकार सौरभ " का उल्लेख करता है -

" पवन प्रेरित सौरभ साकार "

— ठीक अनन्तर की पंक्तियाँ आगे यत्किंचित् चित्रात्मकता का निरसन कर देती है, या यों कहें, उसे अभूतपूर्व सूक्ष्मता प्रदान करती है :

रचित परमाणु पराग शरीर / खड़ा हो ले मधु का आधार ।

जैसे 'साकार सौरभ "('साकार " की रचनात्मक विडम्बना देखें), जिसका शरीर पराग के परमाणुओं से बना हुआ है (यह सूक्ष्मता द्रष्टव्य है) और इतना ही नहीं, जो मधु को आधार बना कर खड़ा हुआ हो (यह दूसरी सूक्ष्मता है)। जब इतना सूक्ष्म-संश्लिष्ट रूप बन गया, तब सूक्ष्म और गहरे प्रभाव से मण्डित श्रद्धा के सौन्दर्यमय व्यक्तित्व की पहचान की जा सकती है ।

आगे एक पंक्ति में श्रद्धा की सहास मुद्रा को एक अन्य सूक्ष्मीकृत बिंब में ही उतारा गया है :

हँसी का मद-विह्वल प्रतिबिंब
मधुरिमा खेला सदृश अबाध ।

इस तरह के बिंब अनुभव को कई स्तर पर प्रत्यक्ष और विकासशील बनाये रखते हैं । " हँसी नहीं ", हँसी का मद-विह्वल प्रतिबिंब --- एक भिन्न संदर्भ में मनु की जड़ताग्रस्त स्थिति को कवि " ज्योति का धुँधला-सा प्रतिबिंब " कहकर बहुत कलात्मक अस्पष्टता के साथ रूपायित करता है ।

यह तो एक, और बहुत रचनात्मक, कोशिश हुई - सूक्ष्म बिंबों को और सूक्ष्म बनाने की । दूसरी कोशिश है अपेक्षाकृत स्थूल बिंब को भी सूक्ष्म बनाने की, है, जिसके फलस्वरूप उनकी स्थूलता का निरसन होता है । श्रद्धा के रूप-चित्रण में कवि बिजली के फूल का बिंब प्रस्तुत करता है :

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ वन बीच गुलाबी रंग ।

सामान्य फूल से कहीं बिजली का फूल " अपनी अभूतपूर्व चमक, पूर्णता, रूप और गरिमा की मिली-जुली व्यंजनाओं की सौभाग्यता से श्रद्धा के सौन्दर्य-अनुभव को गतिशील बनाये रखता है । इसी तरह सामान्य फूल को कविता प्रदान करने की दूसरी उल्लेखनीय प्रक्रिया 'लज्जा ' सर्ग के इस अंश में देखी जा सकती है :

किन इन्द्रजाल के फूलों से
  लेकर सुहाग कण राग भरे,
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
  माला जिससे मधु-धार ढरे ?

लज्जा श्रद्धा के लिए - युवती मात्र के लिए - मधुधार ढारनेवाली माला गूँथ रही है, इस माला को बनाने में राग भरे सुहाग कणों का योगदान है, जिनकी विशिष्टता यही है कि वे इन्द्रजाल के फूलों से लिये गये हैं, सामान्य फूलों से नहीं । इन्द्रजाल अपने मायावी-आकर्षक रूप में प्रेम की अनेक भंगिमाओं को प्रत्यक्ष कर देता है । कवि के इस तरह के प्रयोग भाषा को विपुल क्षमता प्रदान करते हैं, जिससे कि अनुभव पुलकशील बना रहता है ।

प्रसाद के बिंबों की संरचना में दूसरी प्रक्रिया वहाँ देखी जा सकती है, जहाँ कवि किसी सूक्ष्म-अमूर्त स्थिति अथवा वृत्ति को लेकर उसके बिंब निर्मित करता है । " आँसू " का प्रसिद्ध छंद है :

मादकता से आये तुम
  संज्ञा से चले गये थे
हम व्याकुल पड़े बिलखते
  थे उतरे हुए नशे से ।

प्रेमास्पद के आगमन से प्रेमी के मानस में उपजे अभूतपूर्व हर्ष की मादकता की अमूर्त-कोमल स्थिति बहुत ही श्लिष्ट ढंग से संवेद्य बनाती है । प्रेमी के लिए प्रेमास्पद के व्यक्तित्व की परम प्रभावोत्पादकता को रूपायित करने की अनेक प्रक्रियाओं में से मादकता का बिंब अनायास ऊपर उभर आता है । इसी तरह प्रेमास्पद की

सामान्य फूल से कहीं बिजली का फूल " अपनी अभूतपूर्व चमक, सूक्ष्मता, तड़प और भंगिमा की मिली-जुली व्यंजनाओं की शोभाशाला से प्रसाद के सौन्दर्य-अनुभव को गतिशील बनाये रखता है। इसी तरह सामान्य फूल को नवीनता प्रदान करने की दूसरी उल्लेखनीय प्रक्रिया 'लज्जा' सर्ग के इस अंश में देखी जा सकती है :

किस इन्द्रजाल के फूलों से
    लेकर सुहाग कण राग भरे,
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
    माला जिससे मधु-धार ढरे ?

लज्जा श्रद्धा के लिए - युवती मानव के लिए - मधुधार ढारनेवाली माला गूँथ रही है, इस माला को बनाने में राग भरे सुहाग कणों का योगदान है, जिनकी विशिष्टता इसी में है कि वे इन्द्रजाल के फूलों से लिये गये हैं, सामान्य फूलों से नहीं। इन्द्रजाल अपने मायावी-आकर्षक रूप में प्रेम की अनेक भंगिमाओं को प्रत्यक्ष कर देता है। कवि के इस तरह के प्रयोग भाषा को विपुल क्षमता प्रदान करते हैं, जिससे कि अनुभव पुलकशील बना रहता है।

प्रसाद के बिंबों की संरचना में दूसरी प्रक्रिया वहाँ देखी जा सकती है, जहाँ कवि किसी सूक्ष्म-अमूर्त स्थिति अथवा वृत्ति को लेकर उसके बिंब निर्मित करता है। "आँसू" का प्रसिद्ध छंद है :

मादकता से आये तुम
  संज्ञा से चले गये थे
हम व्याकुल पड़े बिलखते
  थे उतरे हुए नशे से।

प्रेमास्पद के आगमन से प्रेमी के मानस में उपजे अभूतपूर्व हर्ष की मादकता की अमूर्त-कोमल स्थिति बहुत संश्लिष्ट ढंग से संवेद्य बनाती है। प्रेमी के लिए प्रेमास्पद के व्यक्तित्व की चरम प्रभावोत्पादकता को रूपायित करने की अनेक प्रक्रियाओं में से मादकता का बिंब अनायास ऊपर उभर आता है। इसी तरह प्रेमास्पद की

नारी रूप में परिकल्पित ' आँसू ' के आलम्बन का रूप एक अन्य ...ुत नये ढंग के दूसरे बिंब में ही उभरता है :

जिसमें इतराई फिरती
नारी निसर्ग सुंदरता
छलकी पड़ती हो जिसमें
शिशु की पावन निर्मलता ।

यहाँ सौन्दर्य के अपने दोनों पक्षों- मादक और निर्दोष का एक ... निर्वाह हुआ - ' अभी, इठलाकर मद भरे ' अलग-अलग नहीं, एक साथ ! सौन्दर्य ...नुभव को - या अन्य किसी भी सूक्ष्म-गंभीर अनुभव को - पकड़ न होने देने की ...ता में प्रभावात्मक संस्पर्श की अपनी अलग विशेषता है । प्रस्तुत छंद में ' नारी ...ग सुंदरता ' और ' शिशु की पावन निर्मलता ' के ' तनाव और संश्लेषण से कवि ...पदी को अनुभव का सघन, सत्यात्मक तथा भास्वर बना देता है ।

' कामायनी ' के ' श्रद्धा ' सर्ग में मनु अपनी जड़ता ग्रस्त स्थिति के ... कहते हैं : ' शून्यता का उजड़ा-सा राज ।' यहाँ ' शून्यता ' के सूक्ष्म बिंब में ...ा-सा राज ' के बिंब को आरोपित किया गया है । विनाश के लिए प्रयुक्त ... दोनों बिंबों की सम्मिलित अर्थ-शक्ति मनु के जीवन में गहराये अवसाद, नैराश्य ...चेष्टता , विभ्रम को प्रभावोत्पादक ढंग से विवृत करती है । इसी तरह ' श्रद्धा ' ... में अपने जीवन की कर्महीनता (जिसमें रचनात्मकता की गुंजाइश नहीं है) से ...न मनु की स्थिति ' साँवली शून्यता ' की सूक्ष्म और आरोपित बिंब योजना ... प्रत्यक्ष होती है :

साँवली शून्यता में प्रतिपल आकुलता अधिक कुलाँच रही ।

श्रद्धा के संपर्क के लिए अधीर मनु के प्रति समर्पित होने को उद्यत ... के मन की लज्जा, उत्कंठा, वासना, आशंका का बहुत मार्मिक और संश्लिष्ट ... प्रस्तुत छंद में आरोपित बिंबों के माध्यम से हुआ है :

धूम-लतिका सी गगन-तरु पर न चढ़ती दीन,
दबी शिशिर —निशीथ में ज्यों ओस-भार नवीन ।

झुक चली सव्रीड़ वह सुकुमारता के भार
लद गई पाकर पुरुष का नर्ममय उपचार ;

यहाँ अधिकता और लज्जा के स्थूल और परंपरित बिंबों में पुष्प और लता के बिंबों को आरोपित किया गया है । शिशिर-निशीथ में नवीन ओस-भार से लदती ; किन्तु पवन-मार्ग पर झुकने का प्रयत्न करती पुष्प-लता का यह चाक्षुष श्रद्धा की जटिल सुकुमार मनःस्थिति को संवेद्य बनाता है ।

बिंब-योजना के साथ प्रसाद के विशिष्ट प्रयोग काव्यभाषा के रचनात्मक निर्माण में केन्द्रीय स्थान रखते हैं । छायावाद की शब्द-रूढ़ि क्रम के प्रयोग " मधु " और " मधुप " प्रसाद में अभूतपूर्व प्रत्यग्रता से संपन्न हो जाते हैं ।" मधु " का प्रसाद ने बहुत अधिक प्रयोग किया है, लेकिन यह प्रायः हर स्थल पर सार्थक व्यंजनाएँ उद्भूत करता है । मधुवर्षा - या और अलग रूप में कहें, तो जीवन के रसिक पक्ष की समृद्धि - के अनुभव को अवगाह रखने की उसमें (और " मधुप " में) अभूतपूर्व क्षमता है ।

प्रसाद की काव्यभाषा के संबंध में यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि वह सामान्यतः तत्सममयी है, किन्तु उसमें निराला की तत्सम काव्यभाषा जैसी समासपरकता नहीं है । कहीं-कहीं प्रसाद ने शब्दों के ठेठ तद्भव रूपों की क्षमता का भी अत्यन्त सार्थक उपयोग किया है । विशेषतः प्रणय और विश्रान्ति के बहुत वैयक्तिक-संवेदनशील अनुभव क्रम में ।" कामायनी " के लज्जा सर्ग में लज्जा के सुकुमार प्रबोधन पर श्रद्धा अपने-व्यापक स्तर पर नारी मात्र की शरीरगत कोमलता और दुर्बलता के साथ मन की विवशता (यानी पुरुष के प्रति समर्पण की उत्कण्ठा) का उल्लेख करती है । इस संपूर्ण स्थिति को कवि का एक प्रयोग " ढीला " रूपायित करता है :

पर मन भी क्यों इतना ढीला
अपने ही होता जाता है ।

" लहर " के गीत " ले चल वहाँ भुलावा देकर " में " ढीले " प्रयोग विश्रान्ति को अधिक मार्मिक और प्रभावशील बना देता है :

जहाँ साँझ-सी जीवन-छाया
ढीले अपनी कोमल काया
नील नयन से ढुलकाती हो

' संध्या ' के बजाय ' साँझ ' प्रयोग (जहाँ साँझ-सी जीवन-छाया) अपनी अपेक्षाकृत अधिक घरेलू अर्थ-छाया के कारण जीवन में आत्मीयता और विश्रान्ति की स्थितियों को गहरा देता है ।

विशेषणों में - उनकी अलंकरणपरक प्रवृत्ति होने के कारण व्यक्तित्व निखारना अपने में कठिन कार्य है । जटिल जीवन-स्थितियों से जूझने में सुखानुभूति करनेवाली प्रसाद की मानसिकता उस कार्य को पूरा करने का दायित्व लेती है । इसीलिए जब रमेश चन्द्र शाह कहते हैं कि 'प्रसाद के विशेषण अलंकारधर्मी उतने नहीं होते, वे बात को सूक्ष्म परिभाषा प्रदान करते हैं '-[1] तो बात समझ में आती है ।" नृत्य-शिथिल " विशेषण में निहित व्यक्तित्व का यह रूप देखा जा सकता है । दो उद्धरण रखे जा रहे हैं :

प्यार भरे श्यामल अम्बर में जब कोकिल की कूक अधीर,
नृत्य-शिथिल बिछली पड़ती हो वहन कर रहा उसे समीर,

('लहर')

उन नृत्य-शिथिल निश्वासों की कितनी है मोहमयी माया
जिनसे समीर छनता-छनता बनता है प्राणों की छाया ।

('कामायनी '-" आशा " सर्ग)

दोनों स्थलों पर " नृत्य - शिथिल " प्रयोग कवि के विशिष्ट भाव संवेदन में अधीरता ,मादकता,सुकुमारता, कातरता, मधुरता आदि की अर्थ-छायाएँ उद्भूत करता है । जीवन का कोमल-मधुर रूप प्रत्यक्ष हो उठता है ।" लहर " के प्रसिद्ध गीत " आह रे, वह अधीर यौवन " में " अधीर " विशेषण यौवन का मूल धर्म बना लगने लगता है ।

" आँसू " का एक छंद है :

---

१) चार छायावादी कविताएँ : और उनके कवि (" कल्पना" ,मार्च,१९७१)
पृ० २२।५२

सोयेगी कभी न वैसी
    फिर मिलन-कुन्ज में मेरे
चाँदनी शिथिल अलसायी
    सुख के सपनों से मेरे ।

यहाँ बिना किसी प्रत्यक्ष मानसिक चेष्टा का कथन किये कवि ने मधुचर्या में रही सुखद भावकता को शिथिल अलसायी सोती चाँदनी के रूप में ही उभारा है । स्मृति-रूप में होने के कारण वह अंकन और हृदयग्राही बन पड़ा है । चाँदनी के विशेषण ' शिथिल ' और ' अलसायी ' मधुचर्या के अन्तर्गत सुकुमार भावुक प्रक्रियाओं को अपने में अनुस्यूत किये हुए है ।

काव्यभाषा की संरचना में सामान्य से प्रतीत होनेवाले, लेकिन वस्तुत: असामान्य, शब्दों का कुछ प्रयोग कवि ने कहीं-कहीं किया है । ' लहर ' के दो गीतों -' आह रे, वह अधीर यौवन ' और ' ओ री, कह ' देता है तुमने मुझे प्यार करनेवाले को ' में क्रमश: ' आह ' और ' री ' शब्द यौवन और प्रेमास्पद के प्रति कवि की ललक, अधीरता, बेचैनी, विह्वलता, तड़प का अत्यन्त सुकुमारता से संस्पर्श करते हैं ।

प्रसाद में वाक्य-विन्यास की भंगिमा सूझ-बूझ छायावादी कवियों के बीच उन्हें एक विशिष्ट स्थान देती है । ' झरना ' की ' विषाद ' कविता के लम्बे, जटिल वाक्य-विन्यास से कवि की वाक्य-विन्यास-संबंधी आगामी प्रगति का बोध हो जाता है । गीतों में उनकी विशिष्ट मानसिकता अपने गठन में संश्लिष्ट वाक्य-विन्यास के बीच गहरी हो जाती है । ' लहर ' के गीत ' मधुर माधवी संध्या में जब रागारुण रवि होता अस्त ' में संध्याकालीन उदास सौन्दर्य से आलोड़ित कवि की बेचैनी संयुक्त वाक्य में सटीक ढंग से रूपायित हो सकी है । ' कामायनी ' में ' लज्जा ' सर्ग में लज्जा द्वारा सौन्दर्य के विराट्-भव्य रूप का वर्णन उस छन्दों के लम्बे विस्तार में निखर उठता है ।

वाक्य के दूरगामी विस्तार में भाव की आंतरिक एकता का

अध्याय - ४

निराला की काव्यभाषा

(क) विकास-क्रम

निराला की गद्यात्मक भाषा-चेतना की पूरी जानकारी उनकी काव्यभाषा में विकास-क्रम के अध्ययन से मिल सकती है। विकास का रूढ़ अर्थ - उन्नति प्रस्तुत प्रसंग में अभिप्रेत नहीं - खास तौर से निराला की काव्यभाषा के संबंध में तो और भी नहीं, क्योंकि वे अपनी पहली प्रकाशित रचना 'जुही की कली' की नई रचना-प्रक्रिया से ही पाठक और समीक्षक को झकझोर देते हैं। विकास-क्रम से तात्पर्य है - कवि की विविधरूपा काव्यभाषा की एक ही काल में अथवा विभिन्न कालों में बदलती हुई प्रवृत्तियों का क्रम।

कवि का प्रथम काव्य-संग्रह 'परिमल' (१९२९ ई०) अनुभव और अभिव्यक्ति की अंतर्मुखी प्रकृति के कारण उनकी आगामी व्यापक काव्य-चेतना की ओर स्पष्ट संकेत करता है - विशेषत: अन्य समानधर्मा कवियों - प्रसाद, पंत और महादेवी - की प्रारंभिक कविताओं के कच्चेपन की तुलना में 'परिमल' के कवि की भाषिक सर्जनात्मकता स्पृहणीय है। यों तो "परिमल" में प्राय: भाषा के तत्सम रूप का उपयोग हुआ है, किन्तु "यमुना के प्रति" जैसी कल्पना-प्रधान, अलंकारिक कविता के अपवाद के साथ लगभग सभी श्रेष्ठ कविताएँ सायास शिल्प-योजना की आभारी नहीं हैं। और "यमुना के प्रति" कविता अपने उक्ति-वैचित्र्य और विशेषण-बहुलता (जो निराला की काव्यभाषा का वैशिष्ट्य नहीं है) के बावजूद वास्तविक जीवन-अंकन से परिपूर्ण है, जिसमें स्मृति-बिंबों के माध्यम से भव्य अतीत को पूरी सुकुमारता के साथ भाषा में उतारा गया है।

छायावादी काव्य के साथ कविता का शाब्दिक अर्थ लेने की परंपरा अनुपयोगी सिद्ध होती है और इस रूप में कविता काव्यभाषा की उत्तरोत्तर कुशलता

सुस्पष्टता और अनिर्दिष्ट प्रकृति से अधिक आत्मीयता और आत्म-विश्वास से जुड़ती है । कविता का शाब्दिक अर्थ न हो सकने की स्थिति में पाठक और कभी-कभी समीक्षक झींकता है, पर श्रेष्ठ कविता की सघन अर्थ-प्रक्रिया शाब्दिक अर्थ न हो सकने की सीधी और सरलीभूत पद्धति से परे होती है । जो छायावादी कविताएँ अपने रचना-संगठन में प्रौढ़ हैं, उनमें इस गुण की उपस्थिति अधिक महत्वपूर्ण लगती है । इस दृष्टि से " परिमल " की " मौन " कविता पढ़ी जाती है :-

बैठ लें कुछ देर,
आओ, एक पथ के पथिक से
प्रिय, अंत और अनंत के,
तम-गहन-जीवन घर ।

मौन मधु हो जाय
भाषा मूकता की आड़ में,
मन सरलता की बाढ़ में
जल-बिन्दु-सा बह जाय ।
सरल, अति स्वच्छन्द
जीवन, प्रात के लघु-पात से
उत्थान - पतनाघात से
रह जाय चुप, निर्द्वन्द्व

ऐसी कविताओं की भाषा का विश्लेषण (विश्लेषण के प्रचलित अर्थ में) नहीं किया जा सकता, शाब्दिक अर्थ करने की कोशिश तो और भी असफल सिद्ध होगी ; केवल उनके अनुभव में हिस्सा लिया जा सकता है । जीवन की चरमता का साक्षात्कार यों तो कवि बड़ी सरलता से करता है - वाक्यों के सरल विन्यास में, परिचित शब्दों, प्रतीकों में, किन्तु इस सरलता-तरलता में छिपी जटिल संश्लिष्टता को नज़रअंदाज़ कर देने पर कविता की उपलब्धि का भी अंदाजा नहीं लगेगा । तम-गहन-जीवन घेर कर सरलता की बाढ़ में बहने की, अति-स्वच्छंद सरल जीवन बनाने की अनुनय की गई है - कुछ देर के लिए : " बैठ लें कुछ देर " ।

यों " कुछ देर " ही मानवीय जीवन की अधिकांश जटिलता को उभारती है । कुछ ही देर - फिर वही उन्हीं " सम-गहन -जीवन " से चूकना है । हाँ, यह अवश्य है कि परम क्षणों का यह मौन - मधु मौन - संघर्षमय जीवन को रस और अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान करेगा । छायावादी काव्य का बहुप्रचलित प्रयोग " मधु " जीवन के आत्मीय क्षणों को अधिक भरा-पूरा बनाने की कोशिश में लाया होकर सारी संवेदना में कोमलता भरता है । भाषा की सरलता में छिपी हुई उस जटिलता की ओर विनिफ्रेड नवाथनी ने संकेत किया है - " किन्तु सफल कविताओं में " स्वाभाविक " और " सरल " भाषा गंभीर दृष्टिपात् करने पर सामान्यतया प्रकाशित करती है कि वह उस खास संदर्भ को उपलब्ध करने के लिए अपूर्व संगठन को अपने अंदर छिपाए हुए है ।[१] दूसरी कविता " शेष " का भाषा-प्रयोग इस दृष्टि से प्राय: सपाट और ऋजु संवेदना के प्रति आग्रही प्रतीत होता है ; किन्तु उसकी दुहरी लय और परिचित प्रतीकों में प्रतिष्ठित जीवन की सार्थकता का एहसास होने पर पूरी कविता मानवीय अपूर्णता, बेबसी और उससे उपजे पछतावे का संश्लिष्ट अनुभव बन जाती है ।

विषम-मात्रिक छंद में प्रणीत " बादल-राग " खड़ी बोली पर आधारित काव्यभाषा के अनुपम स्वर-विस्तार एवं नाद-योजना की संभावनाएं इस रूप में पहली बार उद्घाटित करता है । अपनी संस्कार-निष्ठ काव्य-भाषा में सांस्कृतिक अनुभवों का रचनात्मक उपयोग करने की प्रवृत्ति निराला में प्रारंभ से रही है ।" बादल-राग " के तीसरे खण्ड में सव्यसाची अर्जुन के पौराणिक रूपक का निर्वाह किया गया है । सव्यसाची अर्जुन के रूप में परिकल्पित बादल का सेवा-रत कर्मठ जीवन विशेष प्राणवत्ता के साथ मुखरित हुआ है । इन तीनों तत्वों-स्वर, विस्तार नाद-मयता और सांस्कृतिक अनुषंग - का प्रयोग आगामी संकलन " गीतिका " के अनेक गीतों में अपनी चरमता पर पहुँच गया है ।

---

१) But 'natural' or ' Simple' language in successful poems usually proves, on reflection, to conceal unique arrangements for achieving that very illusion.

The Language Poets use Winifred Nowothmry.
p. 106.

" परिमल " के इस वैशिष्ट्य का उल्लेख करते समय यह नजरअंदाज नहीं किया जा रहा है कि उसकी कुछेक कविताएँ अपनी भाव-भूमि और अभिव्यक्ति में कच्ची हैं। कहीं तो उनमें रीतिकालीन साज-सज्जा है, कहीं छायावाद की अपनी ही बनती हुई काव्य-रूढ़ि की प्रवृत्ति है। " नयन ", " माया " , " वन-कुसुमों की शय्या " , " रास्ते के फूल से " कविताएँ इसी कोटि की हैं। इस तरह की प्रवृत्ति फुटकल रूप में " अनामिका " संकलन तक में मिलती है। लेकिन यह उल्लेखनीय है कि अन्य छायावादी कवियों ने जहाँ अपनी ही लीकों का अधिक मात्रा में और अधिक दूरी तक - संवेदना और भाषा दोनों स्तरों पर - पोषण किया है, वहीं निराला में यह प्रवृत्ति कम है, उन्होंने अधिकतर अपनी बनाई लीकों को खुद मिटाया है।
" परिमल " के बाद कवि का दूसरा संकलन " गीतिका" (१९३६ ई०) छायावादी काव्यभाषा के और निखरने का संकेत देता है। संस्कृत निष्ठ शब्दों का भरपूर और सर्जनात्मक उपयोग करते हुए कवि ने " गीतिका " के गीतों में गंभीर चिन्तन, सांस्कृतिक संदर्भों , विविध प्रणय-स्थितियों को अनुस्यूत करने की सफल चेष्टा की है। संगीतात्मकता के केन्द्र में रखकर रचे गये इन गीतों में कविता के अनुभव को और कविता की रचना-प्रक्रिया को अलग रखने की सजगता है। " गीतिका " की भूमिका में निराला ने लिखा है - " प्राचीन गवैयों की शब्दावली, संगीत की रक्षा के लिए, किसी तरह जोड़ दी जाती थी, इसलिए उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था। आज तक उसका यह दोष प्रदर्शित होता है। मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है।[1]

कवि का शिल्पी रूप " परिमल " की अपेक्षा गीतिका में अधिक उभरा है। उसमें एक तो, संस्कृत के नाद-तत्त्व को, उसकी संगीतात्मकता को, उसकी समास-परकता को हिन्दी के ग्रहणशील रूप में घुलाने - पचाने की कोशिश है खासतौर से सामासिकता के उदाहरण स्वरूप ये अंश रखे जा रहे हैं -

" ज्वा-मुकुल -भार गंध-भार भर , (गीत सं० २)
नव अपाङ्ग, उर-तट व्याकुल-उर , (गीत सं० १३)
तरु गत-विहङ्ग जीवित निज-छन्द,(गीत सं० ८३)

---

१) " गीतिका " भूमिका, पृ० १२

दूसरे, बहुत कम शब्दों में गूढ़ कल्पनाओं की विन्यस्ति है । " पावन करो नयन " (६) गीत में कवि ने रश्मि से नील नभ पर उतरने की प्रार्थना की है, जिससे कि वह कमल के अश्रुओं (जो कमल पर ओस की बूँदें पड़ी हैं, जिन पर कवि-कल्पना है कि वे सूर्य के वियोग में कमल के नेत्र से निःसृत अश्रु-बिन्दु हैं) को मिटा सके । कवि का शब्द-संगठन इस भाव को समझने में उलझन पैदा करता है -

प्रस्तुत शरदिन्दु-वर
पद्म जल-बिन्दु पर
स्वप्न-जागृति सुघर
दुख-निशि करो शयन !

" अनामिका " (१९३७) संकलन में तत्सम शब्दावली पर आधारित भाषिक सर्जनात्मकता के प्रति कवि का झुकाव और आत्म-विश्वास अधिक मुखरित हुआ है । " प्रेयसी ", " रेखा " जैसी लम्बी प्रणय-कविताओं में कवि ने धाराप्रवाह रीति से संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है । इन कविताओं की रचना के माध्यम से कवि ऐसी इस धारणा का उन्मूलन करता है कि खड़ी बोली में संस्कार और परिष्कार की न्यूनता है । " अनामिका " में ही " राम की शक्ति-पूजा " है, जिसकी लम्बी सुगठित रचना-विधान में खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा की अभूतपूर्व व्यंजना क्षमता उद्घाटित हुई है । रचनात्मक काव्य-व्यक्तित्व भाषा के किसी प्रोक्ति को उन्मुक्त कर सकता है-यह " राम की शक्ति-पूजा " में देखा जा सकता है, जिसका आरंभिक तत्सम सामासिक रचनात्मकता का उदाहरण है, जबकि कविता के बीच के अंश में अंजना का हनुमान को प्रबोधन भाषा की घरेलू बानगी को उभारता है ।

" अनामिका " की कुछ कविताओं की रचना के साथ निराला दोहरे शिल्प के प्रणेता के रूप में सामने आते हैं - " दान ", " वनबेला " और " सरोज-स्मृति " में कौशिकता और यथार्थपरक शिल्प की सह-विन्यस्ति हुई है - खास तौर से " सरोज-स्मृति " जैसे शोक गीति का दोहरा रचना-विधान तत्सम और तद्भव पर आधारित भाषिक संरचना - सृजनशील है । तत्सम शब्दों के बीच में तद्भव शब्द की निस्संकोच विन्यस्ति " अनामिका " की अनेक कविताओं में देखी जा

ऐसी माधुरी छलकानेवाली वस्तु का प्रतीक रूप में ग्रहण किया है, और उसके माध्यम से जीवन की उदासी, श्रीहीनता की गहरी व्यंजनाएँ विकसित हुई हैं। निराला की ऐसी कविताएँ नई कविता की रचना-प्रक्रिया की आधारभूमि निर्मित करती हैं। " मैं अकेला ", " स्नेह-निर्झर बह गया है " (" अणिमा " में संकलित) की भावभूमि से समानान्तर यह गीत निराला की सतत विकासशील और मौलिक रचना-प्रक्रिया का परिचायक है जिसे पूरे-का-पूरा ही उद्धृत किया जा सकता है :

ठूँठ यह है आज ।
गई इसकी कला,
गया है सकल साज ।
अब यह वसंत से होता नहीं अधीर
पल्लवित,फुकता नहीं अब यह धनुष-सा,
कुसुम से काम के चलते नहीं हैं तीर,
छाँह में बैठते नहीं पथिक आह भर,
झरते नहीं यहाँ दो प्रणयियों के नयन-नीर ।
केवल वृद्ध विहग एक
बैठता कुछ कर याद ।

ऐसे गीतों में कवि प्रसाधनों के आकर्षण से मुक्त होकर अनुभव को उसकी पूरी गहराई में छूता है। यौवन के ढल जाने से उपजी श्रीहीनता और अनुपयोगिता के बेबस एहसास की मार्मिक स्थिति का संश्लिष्ट कथन ठूँठ के बिंब में हुआ है।

१९३८ ई० में ही निराला के " तुलसीदास " काव्य का प्रकाशन हुआ। इसमें संस्कृति की सर्वात्मकता के प्रश्न को उठानेवाली " मानसिकता " संस्कारशील शब्दों से मैत्री करती है। छंद की मौलिक प्रकृति और उसका दबाव शब्दों के जटिल रूप, सूक्ष्म-गंभीर कल्पनाएँ इस काव्य को सामान्य की चिंता में विशिष्ट बना देती है। कवि के शाब्दिक स्वेच्छाचार या दूसरी तरह से कहना चाहें तो भाषागत आभिजात्य का " राम की शक्ति-पूजा " से भी अच्छा उदाहरण " तुलसीदास " में देखा जा सकता है, क्योंकि यहाँ कवि संस्कृत के बोझवाही शब्दों का भरपूर उपयोग

करता है, इतना ही नहीं, उनमें यथोचित अर्थ भी अनुस्यूत करता है ।

शब्दों के अभिजात संस्कार का इतना दूरगामी उपयोग करने के बाद " कुकुरमुत्ता " (१९४२) की रचना अपने आपमें एक सुखद आश्चर्य है । " कुकुरमुत्ता " जन-सामान्य में रही-सही भाषा के पोषणापूर्वक रचनात्मक की शुरुआत करता है । जहाँ तत्सम शब्दों के भरपूर और कड़ा उपयोग से कवि ने हिन्दी के अभिजात शब्द-कोश की संवर्धना की है, वहीं वैसे " कुकुरमुत्ता " के माध्यम से एकदम साधारण ग्रामीण और कठोर शब्दों में भरा-पूरा आत्म-विश्वासी व्यक्तित्व दिखाया है और इस परंपरित धारणा को निर्मूल कर दिया है कि कविता की रचना के लिए संस्कारशील शब्द ही उपयुक्त होते हैं । यहाँ तो उर्दू शब्दों और एकदम ग्रामीण शब्दों में ठेठ मुहाविरेदानी की सर्वथा नयी क्षमता मुखरित हुई है -

पेट में डँड़ पेल लो मूए, जहाँ पर लफ़्ज़ प्यार ।

इस निहायत देसी अंदाज़ में आभिजात्य पर तीखे व्यंग्य किया गया है ।

" कुकुरमुत्ता " के बाद कवि का " अणिमा " (१९४३ ई०) काव्य-संग्रह प्रकाशित होता है । कुछेक प्रशस्तियों, श्रद्धांजलियों को छोड़ दें, तो " अणिमा " में अभिव्यक्ति के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं । संवेदना एवं भाषा-दोनों ही स्तरों पर यह संकलन कवि-जीवन का संधि-स्थल है, जिसमें एक ओर " गीतिका ", " अनामिका " के तमाम गीतों की-सी मृदु गीतात्मकता है, दूसरी ओर किसी भी प्रकार की व्यात्मक उद्भावना से मुक्त गद्य-प्राय शब्द-प्रधान कविताएँ हैं । लेकिन एक उल्लेखनीय तत्त्व यह है कि उत्तरोत्तर अभिव्यक्ति की ऋजुता, और उस ऋजुता में सुगठता से छिपी गहनता की ओर कविता का झुकाव होता जाता है । गीत संख्या ३४ का तीखापन अंतिम अंश में सामान्य ढंग से विवृत्त हुआ है -

प्रिय, मुक्ति यह वेला थी मेह की,
याद लिये रहे वंचित गेह की,
सोचता-फिरता , न पाया हुआ,
मेरा हृदय हारा ।

ऐसी शैली में शब्द बोझिल नहीं, अपने मितकथन में अर्थ का लयात्मक

या यह कहा जाता है कि " निराला जिस आदमी की भाषा इस्तेमाल करते हैं, वह आदमी कविता में उतना ही ज़िन्दा है, जितना जीवन में " -[१] तो बात समझ में आती है ।

" अणिमा " में प्रयोगवादी ढंग की कविता " चूँकि यहाँ दाना " अपनी अनोखी गूढ़ संरचना के कारण उल्लेखनीय है । इसकी संवेदना कुछ-कुछ अस्पष्ट और पेचीदी है, तोड़-मरोड़ करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि इस कविता में आज की पूँजीवादी सभ्यता पर व्यंग्यात्मक रीति से तीखा कटाक्ष किया गया है जिसमें सारे संबंध, सारे क्रिया-कलाप-यहाँ तक कि निकटतम आत्मीय माँ-बाप का रिश्ता - पैसे के आश्रित है । " दाना " की यह शान है -

चूँकि यहाँ दाना है,
इसीलिए दीन है, दीवाना है
लोग हैं महफ़िल है
नग्मे हैं, साज है, दिलदार है और दिल है
शम्मा है, परवाना है,
चूँकि यहाँ दाना है -

अन्य तीन कविताएँ भैर पर से पश्चिम की ओर रहती हैं (३९), " सड़क के किनारे दुकान है " और " जलाशय के किनारे कुहरी थी " भी अपनी संरचना में प्रयोगवाद की पूर्वाशिन करती है किन्तु उन्हें समझने में " चूँकि यहाँ दाना है " की तरह तोड़-मरोड़ नहीं करनी पड़ती ।

" बेला " (१९४३) मूलतः भाषिक प्रयोग है, जिसमें कवि ने उर्दू ग़ज़लों की रवानी और लोकप्रियता से प्रभावित होकर उन्हें हिन्दी गीतों में ढालने की साहसिक कोशिश की है । लेकिन यह साहसिकता शब्द के स्तर पर महत्त्वपूर्ण नहीं-ख़ास तौर से कवि की विराट् रचना-प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में । हिन्दी ग़ज़लों की

---

१) कविता : नयी भाषा की तलाश - विपिन्द्र
(आलोचना) मास जुलाई-सितंबर, १९७० ई० ।

अपनी विशिष्ट प्रकृति है (और यह भाषा का भाषा के संबंध में कहा है) , जिससे वे ग़ज़लों की संवेदना को, उनके ख़ास ढंग से ठीक ही व्यक्त करने में फ़ारसी-उर्दू शब्दावली की सहज पहचान नहीं हो सकती। इतना ज़रूर है कि खड़ीबोली के संगीत को सँवारने में एक ख़ास ढंग से ये गीत कामयाब हुए हैं ; इनमें उच्चारण-संगीत की प्रक्रिया हुई है, जो इन गीतों के प्रणयन में कवि का एक विशिष्ट उद्देश्य रहा है (द्रष्टव्य " बेला " का आवेदन)। ग़ज़लों की परंपरा से हटकर हुए गीत अपनी प्रकृति में बहुत रचनात्मक बन पड़े हैं-"मैं" बाहर मैं कर दिया गया हूँ , " मिट्टी की माया छोड़ चुके, " या प्रसिद्ध कव्वाली " आँखें-आँखें बाँध [illegible] आये न आये और जाकर आते । " बाहर मैं कर दिया गया हूँ " गीत में भीतर-बाहर शब्दों के सहारे आत्मभावना ने बाहर और भीतर के तनाव को सटीक अभिव्यक्ति दी है। आत्मभावना के विकास-क्रम में " बेला " के कुछ शब्द-प्रयोगों का उल्लेख आवश्यक होगा - निराला ने उर्दू-हिन्दी शब्दों के समन्वय या समास से नई रचनात्मकता विकसित करनी चाही है, किन्तु ये प्रयोग सफल नहीं बन पड़े हैं, जैसे - पुरखों-ख़ास ऐसे कामनाओं के चयन देते' (गीत सं० २०) दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं / निराशा के डोरे दिये जा रहे हैं " (गीत सं० ५२), " मुक्ति के गुलाब न चटके " (गीत सं० ८०) , " सायास बादले हैं " (गीत सं० ८२) । इनमें 'दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं' और ' निराशा के डोरे दिये जा रहे हैं, " प्रयोग तो प्रसंग से जुड़कर चमत्कारिकता की सृष्टि करते भी हैं, किन्तु अन्य प्रयोग सफल नहीं लगते। यहाँ यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि कवि पहले भी फ़ारसी और संस्कृत शब्दों का समास निर्मित कर चुका है -" परिमल की " परलोक " कविता का यह प्रयोग द्रष्टव्य है -" शत सहस्र [illegible] प्याला [illegible] " गीतिका " के पाँचवें गीत में कारुण्य-जाम का समास " कारुण्य-जामप्रिये । " ये दोनों उदाहरण भी सफल नहीं बन पड़े हैं, सिर्फ़ एक कौतुक की सृष्टि करते हैं।

" नये पत्ते " (१९४६) भाषा और संवेदना दोनों दृष्टियों से कवि का विशिष्ट संकलन है, जिसमें " कुकुरमुत्ता " के पहले संस्करण की ६ कविताओं के साथ अन्य नवीन कविताएँ हैं। [illegible] को छोड़कर शेष सभी कविताएँ ' कुकुरमुत्ता " से जुड़ी हुई रचनात्मक यथार्थ-विधान की यात्रा को और आगे बढ़ाती हैं। प्रयोगशील भाषा का बहुत अच्छा उदाहरण " [illegible] " में है, जिसे पूर्वाग्रही दृष्टि से परखने पर

कमीनी साड़ी का बहुत सहज और सरल ढंग से चित्र-रूप में उपयोग निष्कामता से निहित स्वच्छता, पवित्रता और पारदर्शिता को गहरा देता है और कामना से कि उसकी निष्कामता की स्थिति संदेह हो जाती है, कविता का अनुभव बन जाती है। " साड़ी " में जो सौन्दर्य और कामना है, " कमीनी 'भीड़ देन' से जैसे वह घुलकर निखर जाती है।

संवेदी के अकेलेपन को कवि ने अपने अनेक गीतों में मुखरित किया है। " गहन है यह अन्धकार " (अणिमा)" बाहर मैं कर दिया गया हूँ " (" बेला ") जैसे गीत उल्लेखनीय हैं। इस दिशा में " बेला " का पन्द्रहवाँ गीत बहुत ठेठ ढंग से, रूप के ठेठपन में मानवीय विसंगति को - या यों कहें आधुनिक जीवन की विसंगति को - उभारता है :

गीत गाने दो मुझे तो,
वेदना को रोकने को।

चोट खाकर राह चलते
होश के भी होश छूटे,
हाथ जो पाथेय थे, ठग-
ठाकुरों ने रात लूटे
कण्ठ रुकता जा रहा है,
आ रहा है काल, देखो।

भर गया है ज़हर से
संसार जैसे हार खाकर
देखते हैं लोग लोगों को
सही परिचय न पाकर,
बुझ गई है लौ पृथा की,
जल उठो फिर सींचने को।

ऐसी टकसाली भाषा में संगीत का जो सौन्दर्य (और मज़े की बात यह है कि यह ठेठ हिन्दी का है) बनता है, वह विशिष्ट रूप से आत्मीय

है । दूसरे शब्दों की सामीप्य भंगिमा में जो " ट्रेजिक " गहराई है, वह आधुनिक हिन्दी भाषा के स्वतन्त्र ,समृद्ध व्यक्तित्व का साक्ष्य देती है । वेदना को रोकने की कोशिश ही वेदना को गहरा देती है । अन्तिम बंद की गहरी बेबसी को " देखते " क्रिया में किस सफ़ाई से कवि ने अनुस्यूत किया है -

देखते हैं लोग लोगों को
सही परिचय न पाकर ,

यहाँ देखना " सामान्य " देखने " से कितना भिन्न है , इसका एहसास पूरे प्रसंग को समझने पर ही होता है । अकेले तो ये दो पंक्तियाँ बहुत सादी हैं, बल्कि पूरी कविता में सब से सरल गद्यानुवाद की आवश्यकता नहीं ; किन्तु आधुनिक विसंगति से उपजे दमघोंट विषाद और तनाव की कलात्मक सामग्री के साथ जेहन में उभरती है - " सही परिचय न पाकर लोग लोगों को देखते हैं " - यहाँ सारे शब्द परिचित और गद्य-सम हैं, मगर कवि के आत्म-कथन, आत्म-अनुभूति, वैयक्तिक पीड़ा से उभर आने के कारण बिल्कुल साफ़ ! काव्य के शाप-रूप में कवि प्रसाद ने मानवीय जीवन की विडम्बना को इस तरह रखा है - " दूसरों का ही आवरण सदा अपने वक्षस्थल की जड़ता/पहचान सकेंगे नहीं परस्पर यों विश्व गिरता पड़ता । " ('कामायनी')

इस विडम्बना को निराला ने गीत के वैयक्तिक रूप में अधिक मार्मिक और सच से बढ़कर आतुरता मिश्रित आक्रोश के साथ मुखरित किया है । युग की विसंगति को, उसके पूरे तनाव में इन परवर्ती गीतों की अनौपचारिक-आत्मीय भाषा खोलती है ।

निराला की काव्यभाषा के विकास-क्रम में परवर्ती गीतों की भाषा का महत्त्व दो कारणों से है - एक तो इनकी रचना के दौरान अपनी रुग्ण मनःस्थिति के फलस्वरूप अथवा चमत्कारिकता से उत्प्रेरित होकर कवि तुकों, अनुप्रासों और लयों से खेलने लगता है, अन्तिम काव्य-संकलन 'सांध्यकाकली ' (मरणोत्तर प्रकाशन) के कुछ गीतों में यह प्रवृत्ति सब से ज्यादा प्रकट है । दूसरे, बहुतेरे गीतों की भाषिक संरचना कवि की वैयक्तिक रुग्णता के बावजूद भरपूर जीवनी-शक्ति से संपन्न है । इसी कारण कवि आधुनिक परिवेश के तीखेपन को ही

नहीं छूता चलता, अपितु भक्तिकालीन संवेदनाएँ- कातरता, आस्था, स्नेह, वैराग्य भी खड़ीबोली में वेदनाप्लुत गंभीर रूप में ढालता है। आधुनिक जीवन के साथ और मध्यकालीन आस्था का यह सामंजस्य निराला के समृद्ध, संश्लिष्ट व्यक्तित्व का प्रमाण है।" आराधना " के गीत - कामरूप हरो काम "," अशरण-शरण राम " में " विनय-पत्रिका " की संवेदना मुखरित हुई है।" अर्चना " के " मन चाहे घनश्याम न चाहे " और " गीतगुंज " के " जिधर देखिये श्याम विराजे " में कृष्णभक्त कवियों की अगाध विह्वलता और एकतानता है।" अर्चना " की " स्वगोक्ति " में कवि ने कहा है -" खड़ीबोली की गाड़ी के और चलते रहने की आवश्यकता है, ये गीत भी उसी की पूर्ति करते हैं।"[1] प्रस्तुत विविध भावभूमियों में कवि ने खड़ीबोली का उपयोग किया है, उसे माँजा है।" कुकुरमुत्ता " और विशेषतः " नये पत्ते " की जन-संवेदनापरक कविताओं की रचना-प्रक्रिया के उदाहरण भी परवर्ती गीतों में मिलते हैं। गीतों में यह संवेदना धीरे-धीरे और मार्मिक, तीखी तथा निर्मम हो गई है।" ऊँट-बैल का साथ हुआ है, " मानव जहाँ बैल घोड़ा है " जैसे " आराधना " के गीत अपनी सपाट बयानी में पूरे-के-पूरे युग की अमानवीयता, शोषण को उघाड़ देते हैं।

कवि की मृत्यु के बाद प्रकाशित " सांध्य-काकली " संकलन (१९६९ ई०) काव्यभाषा में विकास-क्रम के अन्तर्गत अवश्य ही सम्मिलित किया जाना चाहिए। यों तो " सांध्य-काकली के प्रारंभिक २२ गीत पूर्ववर्ती गीत-संकलन " गीतगुंज " से संगृहीत कर लिये गये हैं, और जो नये गीत हैं, उनमें से अधिकांश कवि की रुग्ण मानसिक अवस्था को द्योतित करते हैं - कहीं अर्थ के नाम पर पहेली है, जैसे - ३०वाँ गीत। एक अंश इस प्रकार है -

तेरा पानी भरम जानी है, मानी है।
बैठा बारी में लासानी है, बानी है।

गीत संख्या ३१ में अक्षर-भंग और अक्षर-विपर्यय के अलावा कोई विशिष्टता नहीं, और ये विशिष्टताएँ भी किसी खास सूचनात्मकता की ओर इंगित नहीं करतीं -

ताक कमसिन वारि,
ताक कम सिन वारि,

(हाँ, इनसे यह अवश्य समझा जा सकता है कि निराला के मन में आकांक्षा की लहर आरंभ से अंत तक एक रचनात्मक बेचैनी बनी रही । वे उसके किसी एक स्थिर रूप से संतुष्ट नहीं हो गए ।)

पूर्ववर्ती गीतों में कहीं-कहीं चमत्कार की भी प्रवृत्ति रही है (" आराधना " का " छलके छल के पैमाने क्या " द्रष्टव्य है) उसकी चरमता " सांध्य काकली " के गीतों में देखी जा सकती है। कुछेक गीत अपने सम्पूर्ण विधान में और शेष कुछ अपने फुटकल अंशों में इस बात का अच्छा संकेत देते हैं कि कवि अपनी स्वस्थ मनोदशा में, पूर्वक के दौरान , भाषा से भरपूर रचनात्मक कार्य लेता रहा, उसकी भंगिमाएँ बनाता रहा । कवि अब भी जटिल मनोवेगों को, आत्मिक पूर्णता के अनुभव को, जीवन के सूनेपन को गीत की नई भंगिमा में अनुस्यूत करता है यह नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता । ३४वें गीत में भोगे हुए जीवन की रचनात्मक अभिव्यक्ति और उसके साथ-साथ वृद्धावस्था एवं आसन्न मृत्यु का एहसास कवि नये ढंग से करता है-

पथ तुम्हारी देख भी ली,
रूप की गुण की, रसीली ।

वृद्ध हूँ मैं, वृद्धि की क्या
साधना की, सिद्धि की क्या,
खिल चुका है फूल मेरा
पंखड़ियाँ हो चली ढीलीं ।

जीवन का सारा आस्वादन कवि कर चुका है । अब वृद्धावस्था में उसके आकर्षण में क्या नवीनता हो सकती है ? यौवन ढलने की स्थिति के अंकन के लिए वह फिर से फूल का बिंब रचता है - फूल अपने विकास-काल में खिल चुका है, अब तो उसकी पंखड़ियाँ ढीली हो चली है । यौवन की अस्थिरता और जीवन की परिवर्तनशीलता के लिए यह बिंब बहुत संगत बन पड़ा है । यौवन और वार्धक्य - प्रतीकात्मक रूप में उल्लास और पतन - के परस्पर विरोधी रूपों को कवि भाषा में इस तरह उतारता है -

चढ़ी थी जो आँख मेरी
बज रही थी जहाँ भेरी

शब्दों के मेल से सिरजी भावनात्मक भाषा, अनुकरण धर्मिता से विमुक्त मुक्त जटिल रचना-विधान का परीक्षण नये सिरे से किया है, और इसी में यह सुखद अनुभव है कि यह परीक्षण बहुत सफल बन पड़ा है।" पत्रोत्कंठित जीवन का चित्र झुका हुआ है " के रूप में कवि राग-द्वेष से अपनी आपूर्ति का उल्लेख करता है, सारी लांछनाओं, अपमानों का चित्र झुक हुआ है-यानी आसन्न मृत्यु के निकट उसका तटस्थ मानस उनका अनुभव ही नहीं करता। संवरण-सामर्थ्य होने के बावजूद अपने भरे-पू व्यक्तित्व के ह्रास से वह पराजय का बोध नहीं करता -

आशा का प्रदीप जलता है हृदय-कुन्ज में,
अंधकार-पथ एक रश्मि से झुका हुआ है

' झुका ' क्रिया की ठेठ तद्भवता में रही-बची झुकनशीलता तत्सम संज्ञा ' रश्मि ' के आलोक का और उन्मुक्त प्रसार करती है। यहाँ कवि जीवन को लीला-भाव से देखने की प्रवृत्ति इस तरह के बंधन की ओर कवि को प्रेरित करती है -

लीला का संवरण-समय फूलों का जैसे
फलों फले या झरे अफल, पातों के ऊपर
सिद्ध योगियों जैसे या साधारण मानव
ताक रहा है भीष्म शरों की कठिन सेज पर।

भीष्म के रूप में परिकल्पित करके कवि इस सारे संवरण समय के प्रति उन्मुक्त और निर्द्वन्द्व दृष्टि प्रस्तुत करता है। यह संवरण-समय फलयुक्त फूलों की तरह झरेगी या अफल झर जाएगा, सिद्ध योगियों की भाँति अवसान होगा या साधारण मानव की तरह इसका पता कवि को नहीं। अपने समृद्ध काव्य-सृजन के बीच से उत्पन्न आनन्दानुभूति का अंकन कवि षड् ऋतुओं के सिंहावलोकन के माध्यम से करता है। अंत में, अपनी शक्ति-संपन्न देह (और किसी स्तर पर मन भी) की जीर्णता का ठेठ चित्र प्रस्तुत करने के बाद कवि जीवन के नये प्रभात की आशा करता है -

झूल चुकी है खाल ढाल की तरह तनी थी।
पुनः सवेरा, एक और फेरा हो जी का।

निराला की समूची काव्य-सृष्टि का अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुंचाता है कि उनका विराट् काव्य-व्यक्तित्व सदैव अन्वेषी, बेचैन और उत्साही रहा है। अगर कवि " जुही की कली " को उसकी पूरी सुकुमारता में चित्रित करता है, तो " रानी और कानी " में कानी रानी की कठोर दिनचर्या और उसके मानसिक द्वन्द्व को उभारता है। " राम की शक्ति पूजा ", " तुलसीदास ", में अभिजात धर्मी कलाकार की बेचैनी मुखरित हुई है, दूसरी ओर " कुकुरमुत्ता " और " नये पत्ते " के प्रणयन में परिवेश-सजग कवि व्यक्तित्व की पूरी सजगता दिखाई देती है। यहाँ तक कि " बेला " की ग़ज़ल परंपरा के अधिकांश गीत यद्यपि निराला-काव्य की उपलब्धि किसी भी मूल्य पर नहीं हैं, लेकिन उनकी रचना में भी कवि का आत्म विश्वास संचलित नहीं हुआ है। उनका कहना है - " प्राय: सभी दृष्टियों से उनको (पाठकों को) फ़ायदा पहुँचाने का विचार रखा गया है।" (द्र० " बेला " का आवेदन)। वह विश्वास कि वह कुछ दे रहा है, कभी क्षत नहीं होता और गत्यात्मक व्यक्तित्व में इसकी अवस्थिति उचित भी है - पर अनस्वर था सदा पल्लवित -फल "। डॉ० रामरतन भटनागर ने ठीक ही कहा है कि " निराला के काव्य में खड़ीबोली का काव्य संभावनाओं के कगार में विचरण करने लगता है। "[१]

दूसरी बात यह है कि निराला में एक ही काल में विविध रचना- प्रक्रियाएँ जागरूक रही हैं, " अनामिका " और " अणिमा " संकलन इस कथन का अच्छा प्रमाण देते हैं। अतः निराला की काव्यभाषा के विकास का अध्ययन काल-क्रम में करने से यह परिणाम नहीं निकाल लेना चाहिए कि अमुक भाषा-रूप उनके काव्य में अमुक काल में उभरा और फिर बाद में उसका भाषा-रूप विकसित हुआ। वास्तविकता तो यह है (और यह उनके निर्बन्ध काव्य व्यक्तित्व का प्रमाण है) कि वे किसी भी भाषा-रूप से बँधते नहीं हैं। मोटे तौर पर, समझने की, विश्लेषण की, सुविधा के लिए कहा जा सकता है कि उनके आरंभिक काव्य में वे तत्सम-धर्मी रहे हैं, परवर्ती काव्य में तद्भव-प्रिय। शब्दावली के रचनात्मक प्रयोग को रेखांकित करने की दृष्टि से उनकी विकास-यात्रा तत्सम, तद्भव से देशज की ओर रही है। लेकिन परवर्ती गीतों के तद्भव रचना-विधान के दौरान भी काफ़ी संख्या

में संस्कार-निष्ठ गीतों की निर्मिति हुई है । और अधिकतर तो एक ही विधान में उन्होंने तत्सम-तद्भव की टकराहट से भाषिक ऊर्जा उत्पन्न की है । कवि की यह प्रवृत्ति उसकी भाषिक उन्मुक्तता और रचना-शक्ति की परिचायिका है । एक ओर उनकी काव्य-भाषा में अतिशय भव्यता, गहन गीतात्मकता, सूक्ष्म परिष्करण है, दूसरी ओर उसमें अनगढ़पन, गद्यात्मकता और ठेठपन है । दोनों भाषा-स्तर निराला के काव्य-व्यक्तित्व के अभिन्नता को है ।

(ख) विविध रूप

निराला के मानस में काव्यभाषा को लेकर गहरी बेचैनी उनके विविधभाषा-रूपों में मुखरित हुई है । उनकी भाषा की विविधरूपता जहाँ उनकी संवेदना की व्यापकता की ओर संकेत करती है, वहीं निराला के उन्मुक्त काव्य-व्यक्तित्व को उजागर करती है, जिसके कारण वे अपने को किसी एक भाषा-रूप से बाँधते नहीं, वरन् काव्यभाषा के विविध प्रयोगों से रचनात्मक उन्मेष को गतिशील करते हैं ।

तत्सम शब्दावली पर आधारित निराला की काव्यभाषा का वैशिष्ट्य कई रूपों में देखा जा सकता है । समास-युक्त क्लिष्ट शब्द-योजना में उनका गहरा अध्यवसाय और शिल्पी रूप मुखरित हुआ है । काव्यभाषा के लिए अपेक्षित समाहार-गुण की अभिव्यक्ति निराला ने इस भाषा रूप में बहुत कुछ समास-योजना की सहायता से की है । " राम की शक्ति पूजा " के ओजस्वी छन्दों में समस्त पदों के कारण विशेष भास्वरता आ गई है । हनुमान का प्रचण्ड रूप ज्वालामुखी पर्वत के बिंब में अंकित हुआ है, लेकिन यहाँ देखने की चीज़ प्रभावपूर्ण समास-योजना है -
" उद्गीरित वह्नि-भीम पर्वत कपि चतुः प्रहर ," ऐसे कवि यह प्रमाणित करता है कि हिन्दी काव्यभाषा के व्यावहारिक रूप को आवश्यकतानुसार सामासिकता की ओर ले जाया जा सकता है ।

समासों के आग्रह से मुक्त तत्सम-प्रधान काव्यभाषा का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग कवि ने किया है। इस तरह की भाषा के अन्तर्गत कठोर और कोमल दोनों रूपों की रचना में वे सिद्धहस्त हैं। " बादल-राग ", " जागो फिर एक बार "। " राम की शक्ति-पूजा " कविताओं में एक साथ दोनों रूपों का नियोजन हुआ है। विशेषतः जागो फिर एक बार " में कठोर और कोमल दोनों स्तरों पर जागरण की परिकल्पना भाषा के इन दोनों रूपों में बहुत प्रभावी बन पड़ी है।

तद्भव शब्दावली में रचनात्मकता की नए संभावनाएँ विवृत कर निराला ने अपनी काव्यभाषा को नयी दिशा विकसित की है, जिसमें कोमलकान्त भाषा के सभी उपादानों -कलात्मकता, सुघर छंद, सुघरी शब्दावली को छोड़ दिया गया है। शब्द-प्रयोग की दृष्टि से उन्होंने तत्सम और तद्भव दोनों शब्दावली पर आधारित भाषिक संरचना में मौलिकता और विशिष्टता का परिचय दिया है, किन्तु तत्सम प्रधान काव्य में ये गुण निराला के गहन अध्यवसाय के बल पर समाविष्ट हो सके हैं, जबकि तद्भवधर्मी काव्य में उन्होंने स्वाभाविक शब्दों की सृजन-क्षमता का उपयोग किया है। " कुकुरमुत्ता " और " नये पत्ते " में काव्यभाषा को समस्त आभरणों से मुक्त कर अधिक स्वायत्त और आत्मनिर्भर बनाने की कोशिश है, ठीक उसी तरह, जैसे इन रचनाओं की संवेदना एकदम ठेठ है, अनगढ़ीय है। " कुकुरमुत्ता " के मुँह से दुनिया भर के ज्ञान-विज्ञान की बातें कहलाकर निराला उसे कोई ज्ञानी संस्कारशील नहीं घोषित करते, वरन् उनका उद्देश्य चौंकानेवाली, व्यंग्यात्मक आधुनिक शैली के माध्यम से सामान्य साधारण (" कुकुरमुत्ता ") की सार्वजनिक प्रतिष्ठा है। परवर्ती गीतों - ('अर्चना', 'आराधना'; 'गीतगुंज', 'सांध्य-काकली' में संकलित) में भी निराला ने शब्दावली के तद्भव रूप की ओर अधिक झुकाव रखा है।

" कुकुरमुत्ता " और " नये पत्ते " तथा परवर्ती गीतों की तद्भव-प्रियता से सूक्ष्म विवेचन किया जा सकता है। " कुकुरमुत्ता " में प्रदर्शन की इच्छा में ठेठ, ग्रामीण अतएव तथाकथित ' अश्लील ' शब्दों को ढूँढ-ढूँढकर रखने की प्रवृत्ति है और विशिष्टता यह है कि निराला जैसे कुशल रचनाकार के द्वारा एक अंतरंग आवश्यकता के रूप में प्रयुक्त किए जाने के कारण तद्भव की यह प्रदर्शन-प्रियता खटकती बिल्कुल नहीं, [illegible] " के गंभीर अध्ययन के बाद [illegible]

के रूप में निराला को स्थान देती है। यह दूसरी बात है कि इस प्रकार की योजित सहजता, आग्रहपूर्वक देशज, भदेस शब्दों की नियोजना पहली नज़र में पाठक या समीक्षक को असामान्य लग सकती है, ठीक उसी तरह, जैसे पूर्ववर्ती [illegible] काव्य - "राम की शक्ति पूजा", "तुलसीदास" - में क्लिष्ट शब्दावली और दुरूह समास-योजना की अधिकता एक दृष्टि में निराला की काव्यभाषा के आतंक और पाण्डित्य-प्रदर्शन का एहसास कराती है, किन्तु पूर्वाग्रहरहित होकर गंभीर रीति से विचार करने पर वह संस्कार-बहुल तत्सम शब्द-योजना और परवर्ती काव्य की सहजता दोनों ही कवि की योजनाबद्ध मानसिकता का प्रतिफलन लगती है। "कुकुरमुत्ता" की योजित सहजता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

नहीं मेरे हाड़ कांटे काठ या,
नहीं मेरा बदन आठोंगाँठ का।
रस-ही रस मैं हो रहा,
सफ़ेदी को जहन्नम रोकर रहा।

"नये पत्ते" की भाषिक संरचना सहजकामी है। पहली कविता "रानी और कानी" की क्रियाएँ देखने योग्य हैं :-

रानी अब हो गई सयानी,
बीनती है, काँड़ती है, कूटती है, पीसती है,
डलियों के सीले अपने रूखे हाथों मीसती है,
घर बुहारती है, करकट फेंकती है,
और घड़ों भरती है पानी,

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उपेक्षित इन देहाती क्रियाओं में कवि ने कितना रचाव भर दिया है, यह उल्लेखनीय है। इन रूखी-सूखी क्रियाओं में रानी की परिवर्तनशून्य और एकान्त कठोर दैनिक चर्या गैर-रोमान्टिक तटस्थता के साथ जोड़ी गई है। "अणिमा" की कुछ कविताओं - "यह है बाजार", "चूँकि यहाँ दाना है," में भी भाषा के ठेठ रूप का प्रयत्नपूर्वक उपयोग करने की प्रवृत्ति है।

किन्तु परवर्ती गीतों की सहजता अयोजित है, ठीक उसी

तरह जैसे इन गीतों की रचना में प्रायः आयासहीनता का अनुभव होता है । जो प्रयत्न है जो आग्रह है, वह भी सरलता की ओट में खो गया है । गीतों के अपेक्षाकृत सूक्ष्म और लघु विधान में अनायास रीति से रखे गए तद्भव शब्द पूरे गीत को एक अतिरिक्त निखार और शांत चमक दे देते हैं । निराला की काव्यभाषा की प्रक्रिया के सन्दर्भ में अनेक बार उद्धृत और विश्लेषित 'बासी' शब्द " (जग की हुई बासना बासी)" इसका एक अच्छा उदाहरण है । शब्दावली और गठन दोनों स्तरों पर तद्भवता को अपना कर युवक कवि लोक-मानस की सूक्ष्म-संवेदनशील अनुभूति को पूरी सुकुमारता से गीत में मुखरित कर सकता है, करता है ।" अर्चना" का 'बाँधो न नाव इस ठाँव , बंधु " गीत इस कथन का व्यावहारिक निदर्शन है, जिसे पूरे का पूरा उद्धृत किया जाता है -

बाँधो न नाव इस ठाँव ,बन्धु !
पूछेगा सारा गाँव ,बन्धु !

यह घाट वही जिस पर हँस कर
वह कभी नहाती थी धँस कर
आँखें रह जाती थीं फँसकर
कँपते थे दोनों पाँव, बंधु !

वह हँसी बहुत कुछ कहती थी
फिर भी अपने में रहती थी
सब की सुनती थी, सहती थी,
देती थी सब के दाँव, बंधु !

सामाजिक संकोच के बंधन में रहकर भी अपने प्रेम का निर्वाह करनेवाली ग्रामीण प्रेमिका का अंकन इस मर्मस्पर्शी गीत में हुआ है, और गीत की यह मर्मस्पर्शिता परिचित आत्मीय और साथ ही अनायास-प्रयुक्त तद्भवता के कारण संभव हो सकी है ।" गीतिका " के " संस्कृतनिष्ठ गीत और " अर्चना "" आराधना " " गीतगुंज " तथा " सांध्य-काकली " काव्य-संग्रहों के ठेठ भाषा-गीत परस्पर विरोध में अविरोध है, ठीक वैसे ही, जैसे " तुलसीदास " और " कुकुरमुत्ता " की क्रमशः परिणत तत्सम-तद्भव योजना ।

निराला की काव्यभाषा का एक अन्य रूप (भले-ही यह एक प्रयोग हो) "बेला" में देखा जा सकता है, जिसमें कवि ने हिन्दी काव्य को उर्दू-फ़ारसी काव्य की ख़ानगी देने की कोशिश की है, यद्यपि इस कोशिश में वह बहुत कम अंशों में ही सफल हुआ है । फ़ारसी छन्दों को हिन्दी काव्य में ढालने की प्रवृत्ति किसी रचनात्मक उन्मेष को नहीं जागृत करती । हिन्दी भाषा की पुरुष व्यंजनात्मक प्रकृति उर्दू ग़ज़लों जैसी साफ़गोई, नाज़ुकमिज़ाजी, चमत्कारिता का वहन नहीं कर पाती । इस रूप में देखने पर प्रयत्न की यह असफलता स्वयं कवि की अक्षमता को नहीं घोषित करती । इस प्रयोग की नियति यही हो सकती थी । एक उदाहरण इस प्रकार है :-

निगह तुम्हारी थी,
    दिल जिससे बेक़रार हुआ,
मगर मैं ग़ैर से मिल कर,
    निगह से पार हुआ ।

उर्दू-फ़ारसी काव्य के वातावरण में इस तरह की संवेदना और काम-भंगिमा चलती है, किन्तु हिन्दी काव्य के वातावरण में वह [illegible] नहीं हो पाती । यह उदाहरण कवि की उर्दू शब्दावली और उर्दू-छंद योजना की बानगी दिखलाने के लिए दिया गया । उर्दू छंद में संस्कृत शब्दावली का प्रयोग और भी असफल हुआ है :-

तुम्हें देखा, तुम्हारे स्नेह के नयन देखे,
देखी श्यामता, नलिनी के सलिल नयन देखे ।
प्रेम की आग बुझी, आग देह की जो लगी,
धूल के साथ जले, धूल के कफ़न देखे ।
सत्य की आँख कभी-आँख-मिचौनी के लिए
दुन्वी-आम ऐसी कामनाओं के चयन देखे ।

एक नयी शैली की कौतुकपूर्ण महत्वाकांक्षा के सिवाय इस गीत में विचार की प्रौढ़ता, संवेदना की कोमलता या तीव्रता जैसा कोई उल्लेखनीय तत्व नहीं दिखाई देता । अन्तिम पंक्ति में "दुन्वी-आम" और "कामनाओं" के

कथन " की विशुद्ध उर्दू-संस्कृत प्रयोगों का मेल रचनात्मकता की पुष्टि नहीं करता है । " बेला " के जो गीत अनुभव के नये आयाम विकसित करते हैं- जो, बाहर में कर दिया गया हूँ (गीत सं० ८८), वे उर्दू-कलाम प्रणाली से अलग हैं । अतः इस प्रयोग में उनका समावेश नहीं किया जा सकता । हाँ, उनकी सफलता कवि की शक्तियों के संबंध में उपर्युक्त मान्यता को प्रमाणित ही करती है ।

तत्सम तद्भव के एकान्त प्रयोग से अलग दोहरे भाषा-शिल्प की यह अवस्थिति के रूप में निराला ने काव्यभाषा को एक उद्घाटन किया है और इस दिशा में वे आरम्भ से प्रयत्नशील रहे हैं । भाषा-स्तरों का यह दोहरापन शब्द-संयोजन और संरचना दोनों स्तरों पर तत्सम-तद्भव शब्दावली के सम्मिश्रण से संभव हुआ है। " अनामिका " संकलन की तीन कविताएँ " दान ", " कविता " और " सरोज-स्मृति " शिल्प के दोहरे रचाव के उदाहरणस्वरूप रखी जा सकती हैं ।" दान " में दोहरे शिल्प - कलात्मक और यथार्थपरक - का प्रयोग कवि ने क्रमशः सुकुमार और तीखी मनःस्थितियों को उजागर करने के अभिप्राय से किया है । प्रातः-पर्यटन में प्रकृति के मनोरम दृश्यों से प्रभावित कवि-कल्पना इस तरह के अंकन की ओर प्रवृत्त होती है । पहला अंश द्रष्टव्य है -

वासंती की गोद में तरुण
सोहता स्वस्थ मुख बालारुण
चुम्बित सस्मित कुंचित कोमल ।
तरुणियों सदृश किरणें चंचल
किसलयों के अधर यौवन-मद
रक्तिम मञ्जु उड़ते षट्पद,
खुलती कलियों से कलियों पर
नव आशा नवल स्पंद भर-भर ।

सुखोन्माद में कवि मनुष्य को चिन्तन-क्रम में सर्वश्रेष्ठ स्थान देता है । कवि की इस कोमल परिकल्पना को आघात तब लगता है, जब वह पथ के एक ओर कृशकाय, कंकालशेष भिखारी को बैठे हुए देखता है । कल्पना-विलास में रची हुई भाषा अचानक तीखी हो जाती है :-

अति क्षीण कण्ठ, है तीव्र श्वास
जीता ज्यों जीवन से उदास
ढोता जो वह कौन-सा शाप ?
भोगता कठिन कौन सा पाप ?
यह प्रश्न सदा ही है पथ पर,
पर सदा मौन इसका उत्तर
जो बड़ी दया का उदाहरण
वह पैसा एक उपायकरण ।

मानव की श्रेष्ठता की परिकल्पना को चूर करनेवाले राम भक्त विप्रवर पर कवि की दृष्टि पड़ती है, जो शिव पर बिल्व, गंगाजल, तण्डुल और तिल चढ़ाकर बाहर आते हैं और कपियों को झोली से पुए निकालकर देते हैं। कंकाल शेष भिक्षुक की ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती । अंतिम बंध का व्यंग्य देखने योग्य है -

झोली से पुए निकाल लिए
बढ़ते कपियों के हाथ दिए
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर ।
चिल्लाया किया दूर दानव
बोला मैं - धन्य ,श्रेष्ठ मानव ।"

" दानव " और " मानव " की तुकों में निहित दर्शन और व्यंग्य की संश्लिष्ट ध्वनियाँ समाज की विषम स्थिति को सामने लाती हैं । यद्यपि " दान " कविता में यथार्थपरक शिल्प का आग्रह नहीं है, शब्दावली प्रायः तत्समाधारित है ; किन्तु अपनी प्रकृति में वह कठोर है, यथार्थ निष्ठ है । प्रारंभिक बंध के अभिधात्मक शब्द-संयोजन से वह बहुत रचनात्मक कुशलता के साथ बना है ।" वनबेला " में कवि के मानसिक द्वन्द्व-आदर्श-बोध में निराधार, रचनात्मक व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन न होने से उत्पन्न विषाद को उभारा गया है, जिसका परिशमन उपवन की बेला अपने कर्म-कठोर और निःस्पृह जीवन का उदाहरण देकर करती है । आरंभिक बंध का प्राकृतिक दृश्य

और उसकी कवि की मनोभूमि का सानुपातिक संबंध ग्रीष्मताप धरती और उपेक्षित कवि-मानस-विशुद्ध शब्दावली में अंकित हुआ है और उसके बाद कवि के आत्ममंथन (यथा' सोचा न कभी-अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी) की शुरुआत बोलचाल की भाषा में होती है ।' मेला ' का उद्बोधन भी शुद्ध किन्तु सज्जा से पृथक और प्रवाहपूर्ण भाषा में व्यक्त हुआ है । इस संदर्भ में एक अंश द्रष्टव्य है :

भाव में रहा मैं, देख मंद हँस दी मेला,
बोली अस्फुट स्वर से यह जीवन का मेला ।
चमकता सुघर बाहरी वस्तुओं को लेकर ।
त्यों-त्यों आत्मा की निधि पावन बनती पत्थर ।

' सरोज स्मृति ' की अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ और सुकुमार-मार्मिक कविता में शिल्प का दोहरा रचाव (और वह भी तत्सम के आभिजात्य से तद्भव के ठेठपन की नाजुक और साहसिक टकराहट प्रस्तुत करते हुए) और भी उल्लेखनीय है । अपनी युवा कन्या सरोज के संवरण-काल के दिव्य चित्रण के साथ सरोज-स्मृति ' कविता की शुरुआत करता है । एक ओर कवि कन्या के यौवन और विवाह की सुकुमार स्थितियों का बिना हिले-डुले अंकन करता है, जिसमें मालकोस का बिंब है, ऊषा का जागरण छंद है, भोगावती की उमड़न और पाँव का संस्तवन है, और है - कवि के वसंत की प्रथम गीति शृंगार-स्वरूप सरोज की मूर्ति -

तू खुली एक -उच्छ्वास-संग
विश्वास -स्तब्ध बँध अंग-अंग
नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर थर-थर-थर,
देखा मैंने, वह मूर्ति-धीति
मेरे वसंत की प्रथम गीति-
शृंगार ,रहा जो निराकार
रस कविता में उच्छ्वसित -धार
गाया स्वर्गीया-प्रिया-संग
भरता प्राणों में राग-रंग
रति-रूप प्राप्त कर रहा वही,
आकाश बदल कर बना मही ।

ऐसी अंकनों के माध्यम से कवि-जीवन की विडंबना, संपादक की अनीति और सब से बढ़कर काव्य-तुच्छ-समाज की सड़ी गली मनोवृत्ति पर तीव्र कशाघात कवि ने ठेठ, टकसाली भाषा में किया है :

ये जो यमुना के-से कछार
पद-फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यों पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते घोर-गंध,
उन चरणों को मैं यथा अंध,
कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूँ ऐसी नहीं शक्ति।
ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह
करने की मुझको नहीं चाह।

छायावादी काव्य और निराला की उदात्त-कोमल कल्पना का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करनेवाली "सरोज-स्मृति" कविता में इस तरह के प्रयोगवाद को पूर्वाभासित करने वाले उपमानों "यमुना के कछार", "उधार खाये के मुख", "चमरौधे जूते से निकली गंध" - की बेलाग नियोजना निराला के विराट् काव्य-व्यक्तित्व की ओर संकेत करती है, जिसमें शिल्प के प्रति शुद्धतावादी दृष्टिकोण न होकर भाषा और संवेदना का रचनात्मक रिश्ता क़ायम करने की तत्परता है।

इन विविध भाषा-रूपों के अध्ययन से एक प्रश्न यह उठता है कि निराला की अपनी ज़मीन कौन-सी है, किस भाषा-रूप की ओर उनका अधिक झुकाव है? वस्तुतः अपने जीवन की तरह निराला ने अपने काव्य को भी उन्मुक्त रखा है। इसी उन्मुक्तता के कारण वे किसी भी भाषा-रूप से अपने को बाँधते नहीं हैं, कोई भी भाषा रूप-कैसा भी रचनात्मक क्यों न हो - उन पर हावी नहीं होता, और सत्यात्मक कवि-व्यक्तित्व की यह प्रातिभिक विशिष्टता है। अपनी ही बनाई हुई लीक को तोड़ते चलना रचना के क्षेत्र में अपूर्व साहसिकता का

परिचायक है, और तोड़ते चलने का यह साहस पुराने को हटाने के अभिप्राय से नहीं है, वरन् भाषा और इसी वजह से संवेदना के सतत उन्मीलन, अन्वेषण और विकास के उद्देश्य से परिचालित है। तत्सम, प्रधान काव्य को हम एक दृष्टि से उनका प्रतिनिधि काव्य कह सकते हैं; किन्तु रचनात्मकता और कुछ मानों में अनुभव के बहुत आयाम तद्भवपरक काव्य में भी उपलब्ध होते हैं। कहना तो यह चाहिये कि उत्तरोत्तर कवि युग संपृक्ति के कारण तद्भव पर भी आ गया है। जहाँ उनका क्लैसिकल और रोमांटिक काव्य उनकी " जड़िया " रूप (यद्यपि यह " जड़िया " रूप कुछ मिलाकर चिंतन की गरिमा से संयुक्त है) को सामने लाता है, वहीं उनके वस्तुवादी काव्य में कविता को छन्द की सुकुमारता, लय के लोच, ध्वनि-लावण्य के उपादानों से मुक्त कर अधिक यथार्थग्राही, आत्मनिर्भर और स्वायत्त बनाने की चेष्टा है।

तत्सम और तद्भव संरचना के विश्लेषण-प्रसंग में एक कठोर और महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या निराला भाषा के परवर्ती ठेठ रूप में " राम की शक्ति-पूजा ", " तुलसीदास " या फिर " गीतिका " के गीतों जैसा सूक्ष्म - जटिल अर्थ-छवियाँ, अनुस्यूत कर सके हैं ? इस प्रश्न का सही उत्तर निराला की संवेदना के परिप्रेक्ष्य में ही दिया जा सकता है। परवर्ती गीतों में काफ़ी संख्या अस्पष्ट भावभूमि वाले गीतों की है। उनकी छीजती संवेदना में गहरे-गंभीर कुछेक गीत अपनी सूक्ष्मता और सरलता में बहुत सुन्दर बन पड़े हैं, और उनकी साधनापरक गहराई में " गीतिका " के कलात्मक सौष्ठव से सम्पन्न गीत भी झलक पड़ते हैं, किन्तु इस कोटि के गीतों से इतर जो अधिकतर गीत हैं, उनमें संवेदना बहुत सीधी है। कहीं प्रकृति का इतिवृत्तात्मक अंकन है, कहीं उत्सवों में उल्लसित जन-मानसिकता को वर्णन के स्तर पर स्वर दिया गया है। इन परवर्ती गीतों से पूर्व की रचनायें- " कुकुरमुत्ता ", " नये पत्ते " में तो खास तौर से सामान्य-साधारण की उनकी बोली-बानी के साथ काव्य में प्रतिष्ठा है। अतः संवेदना के विश्वसनीय अंकन के लिहाज से सामान्य-साधारण के जीवन से निकली हुई भाषा में जटिल और सूक्ष्म अर्थ-छवियों की निरोगी परिपक्व-प्रवण कवि के लिए संभव न होता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि इनकी या जटिल जीवन तत्सम प्रकृति का आश्रित होता है। तद्भव शब्दावली पर आधारित मानसिक संरचना भी गहरी जीवन-स्थितियों से जुड़ सकती है, जुड़ती है। यह अलग बात है कि निराला ने तद्भव शब्दावली पर आधारित भाषा की सर्जनात्मक क्षमता का उपयोग अधिकांशतः सामान्य-जन के सीधे अनुभव-चित्रण में किया है

(ग) प्रक्रिया

निराला की कविता में तत्सम शब्दावली की दूरगामी संभावनाएँ-बल्कि लगभग हर संभावना - विवृत हुई है। संस्कृत का यह शाब्दिक आभिजात्य जहाँ हिन्दी शब्द-भण्डार को समृद्ध करता चलता है, वहीं उसे गंभीर चिन्तन-मनन के लिए सूक्ष्म बनाता है। हिन्दी की व्यास-प्रकृति से भिन्न होने के बावजूद अपनी तत्सम-धर्मी काव्य-भाषा में संस्कृत और बँगला पदावली के प्रभाव के कारण सात्विक आत्मविश्वास के साथ-समास-योजना की प्रचुर अवतारणा करके कवि ने यही इंगित किया है कि रचनात्मक काव्यभाषा व्याकरण के भाषा-विज्ञान के स्थिरीकृत नियमों की अनुगामिनी नहीं होती। कहना न होगा कि निराला की काव्य-भाषा में अन्तर्निहित ओज और प्रवाह साथ ही गीतों के अपेक्षाकृत संश्लिष्ट रूप-निर्माण में सामासिकता का प्रचुर योगदान है। "गीतिका" के अनेक गीत और "राम की शक्ति-पूजा" इस कथन के व्यावहारिक निदर्शन हैं। निराला की निर्माण-क्षमता पर उनके जीवनी-लेखक और निराला साहित्य के अधिकारी विद्वान् डा० रामविलास शर्मा ने यह टिप्पणी की है: "धातु-प्रत्यय के अनोखे संबंध जोड़कर वह (निराला) नये शब्द ही न निकालते थे, वह ऐसे अद्भुत ढंग से समास-रचना करते थे कि उनके संस्कृतज्ञ मित्र उमाशंकर वाजपेयी सिहर उठते थे।[1] विवेचन के इस बिन्दु पर यह भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि निराला की कतिपय काव्य-रचना में पाई जानेवाली दुरूहता जिसे बहुत जगह सघनता कहना उपयुक्त होगा, किसी सीमा तक लम्बे-लम्बे, जटिल समास-पदों के कारण है। 'गीतिका' के गीत इस प्रसंग में दर्शनीय हैं।

तत्सम शब्दावली का कुशल प्रयोगकर्ता जिस आत्मविश्वास और खुलेपन के साथ, युग-अनुभूति का संकेत देता हुआ, तद्भव शब्दों को प्रश्रय देता है, वह उसकी काव्यभाषा के उन्मीलन का परिचायक है। इसी मोड़ पर आकर निराला

---

१) निराला की साहित्य-साधना, खण्ड १, पृ० २०३।

छायावादी काव्यभाषा की सीमा बनाकर स्वयं उसे लाँघ जाते हैं । यों तो "कुकुरमुत्ता" से ही तद्भव-प्रियता की व्यवस्थित शुरुआत होती है, पर तद्भवों के प्रति कवि का झुकाव और उनका फुटकल रूप में रचनात्मक उपयोग करने की प्रवृत्ति पूर्ववर्ती कविताओं -"मित्र के प्रति", "सरोज-स्मृति" आदि में देखी जा सकती है । आगे चलकर "अर्चना", "आराधना", "गीतगुंज" के गीतों में कवि ने तद्भव शब्दावली पर आधारित काव्यभाषा का बहुत प्रांजल, सुकुमार और जीवंत रूप प्रस्तुत किया है ।

निराला की एक खास विशेषता, जो उन्हें अन्य छायावादी कवियों से अलग करती है, यह है कि उन्होंने शब्द के बजाय शब्द-प्रयोग-विधि को अधिक महत्व दिया है, जिसका सब से अच्छा प्रमाण उन अंशों में देखा जा सकता है, जहाँ वे तत्सम शब्दों के बीच में निस्संकोच भाव से तद्भव शब्दों की विन्यस्ति कर देते हैं । तत्समों के बीच में पड़ा हुआ तद्भव शब्द अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता रखता है । "राम की शक्ति पूजा" के आरंभिक अंश में "हूह" प्रयोग देखा जा सकता है - -
राक्षस विरुद्ध प्रत्यूह - क्रुद्ध कपि विषम- हूह,

परवर्ती गीतों में कवि ने तत्सम तद्भव का और भी व्यापक और सर्जनात्मक ढंग से सहज संबंध स्थापित किया है । यह प्रवृत्ति दो रूपों में है - एक है तत्सम संज्ञाओं, विशेषणों के बीच में तद्भव क्रियाओं की सार्थक विन्यस्ति: "आराधना" के प्रथम गीत "पद्मा के पद को पाकर हो" के तत्सम रचना-विधान की अंतिम चार पंक्तियों में क्रियाएँ देखने योग्य हैं :-

मेरी अलक भंगिमा पोंछें,
श्रम शरीर का पलक आँछे
उठे ऊर्ध्व मन से औछे
मिले विश्व में एक प्रखर दो ।

एक अन्य गीत "भावों से, रूपताल की दूसरी पंक्ति "आँधी जग झुकु-वात" में भी तत्सम विशेषणों और तद्भव क्रिया "आँधी" की टकराहट हुई है और इस टकराहट से निखर कर "आँधी" प्रयोग सचमुच आँधने लगता है । "अर्चना" के जागरण-गीत 'तिमिर-दारण मिहिर दरसो' के भव्य संस्कार-निष्ठ विधान में

"दरसो", "परसो", "बरसो", "सरसो" जैसी ठेठ क्रियाओं की सहज प्रतिष्ठापना दृष्टव्य है। क्रिया पदों का रचनात्मक प्रभाव संज्ञा-पदों की अपेक्षा दूरगामी होता है, उसमें एक सूक्ष्म सुठापन अधिक रहता है। क्रियापदों में तद्भव शब्दावली का प्रयोग भी तत्सम नामवाची शब्दों की तुलना में तद्भव क्रिया की श्रेष्ठता की ओर संकेत करता है। "आराधना" के प्रसिद्ध गीत "किस के आसन के तल कुलसो" में जागरण का संदेश तत्सम संज्ञा, विशेषणों और तद्भव क्रियाओं के साहचर्य से बड़ा प्रभविष्णु हो गया है। कुछ पंक्तियाँ उदाहरण-स्वरूप दृष्टव्य हैं :-

भीगे कठिन धरा निष्पावन,
भरे चतुर्दिक रस अभिभावन,
बाँधे बीच सीमकर उतरो।

"गीतगुंज" के आवृत्ति-परक गीत "निखर दरसे श्याम निराके" में और भी घरेलू क्रियाओं "गाके", "छाके", "माँके", "आँके", "निराके", "सजाके" का प्रयोग किया गया है। तत्सम संज्ञा और तद्भव क्रिया का यह आमना-सामना निराला की काव्यभाषा में शक्ति के एक मौलिक उत्स की ओर संकेत करता है। तत्सम-तद्भव के मेल का दूसरा रूप "राम की शक्ति-पूजा" के 'कूद' की तरह है। तत्सम पदों की आलंकारिकता से युक्त गीत में एक मामूली से जानेवाले, एकदम घरेलू पर वस्तुतः बड़े अभिराम तद्भव शब्द का प्रयोग देखने योग्य है। "बेला" के छठें गीत का प्रारंभिक अंश इस तरह है :-

मिट्टी की माया छोड़ चुके
जो, वे अपना घर फोड़ चुके।
जग की सुन्दरता से ऊँचे
जीवन के साधन सब हैं छूँछे
आकर्षण के अभिमानी के
गतिक्रम की कल से तोड़ चुके।

आत्मिक मुक्ति की स्थिति के अंकन में पारिभाषिक शब्दावली

के बीच " कुँए " की सामान्य प्रवृत्ति वस्तुतः जीवन के दायरों का छोटापन, ऊबापन उजागर कर देती है । " कुँए " की ग्रामीण और अश्लील काव्यशास्त्रीय दृष्टि से वर्जित तथा उपेक्षित शब्द की काव्यात्मक क्षमता यहाँ इतनी अधिक है कि उसकी टक्कर में सारे परिनिष्ठित शब्द फीके पड़ जाते हैं । " कुकुरमुत्ता " और " नये पत्ते " के ठेठ देहाती वातावरण में देशज, भदेस शब्दों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति अपनी सारी सक्षमता के बावजूद बहुत साहसिक नहीं लगती (यद्यपि दूधनाथ सिंह ने " कुकुरमुत्ता " की भूमिका में इन उपेक्षित शब्दों के कुशल उपयोग के लिए निराला की बहुत सराहना की है), क्योंकि वहाँ तो संवेदना ही एकदम घरेलू है, जनपदीय है; किन्तु परवर्ती गीतों के इन उद्धरणों में संस्कारशील वातावरण के बीच बड़े बेलाग भाव से सृजन के स्तर पर ठेठ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग उपलब्धि की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

" आराधना " के एक प्रौढ़ गीत " तुम से लाग लगी जो मन की " का उल्लेख किये बिना तत्सम-तद्भव के मेल से रचित काव्यभाषा का अध्ययन अधूरा ही रहेगा -

तुम से लाग लगी जो मन की
जग की हुई वासना बासी ।
गंगा की निर्मल धारा की
मिली मुक्ति, मानस की काशी ।

अधोन्मित तद्भवता की ओर कवि का सहज झुकाव यहाँ द्रष्टव्य है, जिसके फलस्वरूप वह " स्नेह ", " प्रेम ", " लगन " के बजाय एकदम घरेलू शब्द " लाग " का प्रयोग करता है और उसके माध्यम से गीत के अनुभव को अधिक आत्मीय बनाता है । " वासना " के साथ " बासी " का प्रयोग बिलकुल नया है । कवि इस ढंग से नहीं कहता कि वासना नष्ट हो गई, मन उपराम हो गया; वह कहता है वासना बासी हो गई । कहने का यह खास ढंग भाषा की काव्य शक्ति को संभव बनाता है । " वासना " में उद्दाम आकर्षण है और " बासी " में है धीरे उपराम । " बासी " की निपट घरेलू अर्थ-छायाएँ - अनुपयोगिता, शोभाहीनता, गंदगी तत्सम " वासना " के सारे आकर्षण को एक खास किस्म की " ऊब " में बदल

देती है और काम-वासना से मन के उपराम होने की स्थिति में इस ऊब के सन्निवेश के कारण सामान्य निवृत्तिपरक गीतों की तथ्यात्मक रूपता से अलग, इस गीत की अनुभव समृद्धि विकसित होती है। इस तरह " नारि " और " नारी " के तुक के लिए नहीं प्रयुक्त हुआ है, वरन इन्हीं अर्थों में रचनाशील " कवि " नारि " की ठेठ गद्यात्मक अर्थ-छायाओं से गहरी काव्यात्मक संभावनाएँ उद्भूत करता है। कविता में शब्दों के गद्य-तत्व चयन को डी०जी० जेम्स ने एक रचनात्मक आवश्यकता के रूप में देखा है -

" इसके विपरीत, महान कवि सब से गहरे काव्यात्मक प्रभाव के लिए सर्वाधिक गद्यात्मक शब्दों का अक्सर उपयोग करता है। मैं समझता हूँ, एक महान् कवि इतनी दूरी तक शब्दों के कभी भी अधीन नहीं होता, जिससे कि वह किसी शब्द को अपने कल्पनात्मक संप्रेषण के लिए साधन बनाने में असमर्थ पाए।[1]

संज्ञा के अतिरिक्त क्रियाओं की बारीक पहचान के निराला की कविताओं से अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। पहला उदाहरण " राम की शक्ति-पूजा " का है -

है अमा निशा ; उगलता गगन घन अंधकार ;

यहाँ दैत्य के रूप में परिकल्पित गगन का चित्र है। " उगलता " में वमन क्रिया की व्यंजना है, जैसे गगन अपने अंदर घन अंधकार को आत्मसात न कर पाने की असमर्थता -स्वरूप उसे पृथ्वी पर उगल दे रहा है। ऐसा लाक्षणिक क्रिया प्रयोग एक अमूर्त- भयावह बिंब की सृष्टि करता है। एक दूसरा और सुकुमार उदाहरण इसी कविता के निम्न अंश में देखा जा सकता है -

उस शङ्काकुल हो गये अतुल बल शेष-शयन
खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन ।

" अतुल-बल-शेष-शयन " राम देवी की भीमामूर्ति से

---

1. On the contrary, the great poet frequently uses the most prosaic words for the most powerful poetic effects. The great poet, is never, I think, controlled by words to such an extent as to find any words incapable of becoming vechicles for his imaginative communications.
(Scheptcism And Poetry) - D.G.James, page 94.

आलोकित हो जाते हैं, उसी समय उनके नेत्रों में प्रिया सीता के " राममय नयन " खिंच जाते हैं। यहाँ " खिंच गये " क्रिया में जो एक बंकिम काव्यात्मकता है, चित्रांकन का भाव है, वह भयावहता की पीठ पर एक सुकुमार परिवेश की सृष्टि करता है। " सुमन भर न लिये " गीत (" परिमल ") में कवि ने क्रिया प्रयोग में बहुत विशिष्ट जीवन रस भर दिया है -

सुमन भर न लिये
सखि, वसंत गया

सुमन चुने जाते हैं, भरे नहीं। किन्तु यहाँ " भरना " प्रयोग से सुमन की अधिकता, उसकी अनेक अर्थ-स्तरीय शक्ति व्यंजित होती है। कवि का क्रिया प्रयोग द्वारा मनुष्य की मूल और मानवीय जीवन की विवशता की ओर संकेत करता है, सुमन चुने नहीं थे भरने थे, उनसे अपना जीवन सार्थक करना था, पर समय रहते ऐसा न किया गया। सुमन इस रूप में फूल मात्र न रहकर संपूर्ण जीवन की सार्थकता का प्रतीक हो जाता है। जुही की कली में " झकझोरना " क्रिया उद्दाम संवेदना निर्मित करती है -

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों की झड़ियों से
सुंदर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली।

" झकझोर " जैसा ठेठ, ध्वन्यात्मक क्रिया-प्रयोग झंझानिल के रूप में पुरुष की तीव्र प्रहार-वासना, दुर्निवार उत्तेजना की सटीक अभिव्यक्ति करता है। कोमल संदर्भों में ऐसे ठेठ क्रिया-प्रयोगों की नियोजना निराला के साहसिक काव्य व्यक्तित्व की सूचक है। त्वरा और घबराहट की स्थिति के अंकन में कई क्रियाओं का पूर्वापर प्रयोग निराला की भाषा-संबंधी विशेषताओं में परिगणित हो सकता है, जैसे " शक्ति-पूजा " में राम की यह उद्विग्नता और कम्पन -

पश्चात् देखने लगीं मुंदे बँध गये हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं हुआ त्रस्त।

यहाँ की पंक्तियों में पाँच क्रियाओं - "देखने लगे", "बँध गये", "सिंचा", "बँधा", "हुआ सकल" - की नियोजना राम की विचलित अस्त-व्यस्त मनःस्थिति से अभिन्न रूप में संबद्ध है। काव्यभाषा के प्रमुख विधायक तत्त्व बिंब का बहुत कुशल और भरपूर प्रयोग निराला के आरंभकालीन कतिपय काव्य में हुआ है। इस दृष्टि से उनकी स्थिति अपने सहयोगी और हिंदी के नये प्रयोगकर्ता जयशंकर प्रसाद से थोड़ी भिन्न है। जटिल-संकुल मानवीय वृत्तियों के संश्लिष्ट अंकन में प्रसाद की बिंब-रचना बहुत सूक्ष्म और सुकुमार है, और यहीं पर बाह्य प्रसाधनों और सज्जा से उदासीन प्रसाद की काव्यभाषा समीक्षक के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाती है। निराला में प्रसाद की तरह बिंबों के बहुवर्णी प्रयोग तो नहीं हैं, पर अपनी विराट् बिंब-योजना में शक्ति-उपासक कवि समूचे हिन्दी-काव्य में अतुलनीय है। इस प्रसंग में निराला के "बादल-राग" की विराटता दर्शनीय है, खास तौर से यह अंश बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिसमें कवि बादलों को रणतरी का रूपक देकर एक साथ विराटता, भयानकता और गतिमत्ता की अवस्थिति करता है -

तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर दुःख की छाया
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया -
यह तेरी रणतरी
भरी आकांक्षाओं से
घन - - - - -

यहाँ बादल के रूप में रणतरी की परिकल्पना क्रान्ति के लिए विकल कवि-मानस को उभारती है। विराट् बिंब का दूसरा और निराला काव्य में बेजोड़ उदाहरण "राम की शक्ति-पूजा" का यह अंश है -

हैं लुटे जटा-जूट, हो विपर्यस्त, प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार।

राम के दृढ़ जटा-मुकुट विपर्यस्त होकर, प्रतिलट से खुल पृष्ठ, बाहुओं और वक्ष पर फैल गये हैं, जो प्रकारान्तर से राम की मानसिक पराजय और अस्त-व्यस्तता के परिचायक हैं। ऐसी चिन्ता-ग्रस्त राम की घोर निराशा और उसमें निहित हल्की आशा को कवि ने क्रमशः दुर्गम पर्वत पर उतरते हुए विपुल नैशान्धकार और दूर कहीं पार चमकती ताराओं के बिंब में अंकित किया है। दुर्गम पर्वत, विपुल नैशान्धकार और दूर चमकती ताराएँ महत्त्वाकांक्षी मानस की बेचैनी और क्षीण आशा को पूरी भावात्मक गरिमा के साथ अभिव्यक्ति देती हैं।

सुकुमार प्रसंग में नियोजित विराट् बिंब की दृष्टि से 'सरोज-स्मृति' कविता का यह अंश उद्धृत किया जा सकता है -

क्या दृष्टि! अतल की सिक्त-धार
ज्यों भोगावती उठी अपार।
उमड़ता ऊर्ध्व को कल सलील
जल टलमल करता नील-नील
पर बँधा देह के दिव्य बाँध
छलकता दृगों से साथ-साथ।

अपने यौवन की अनुभूति से उत्पन्न उल्लास और लज्जा की विरोधी तथा साथ ही स्वाभाविक स्थिति को पुत्री सरोज की दृष्टि-अंकन में कवि ने संस्पर्श किया है। अपारभोगावती (पाताल गंगा) की ऊर्ध्व की ओर तीव्र उमड़न, किन्तु पृथ्वी की एक निश्चित सीमा-रूपी बाँध का बंधन - यह है विराट् प्राकृतिक तथ्य, जिसे कवि ने कपाने हर्ष और लज्जा से परिपूर्ण तारुण्य की मनःस्थिति से जोड़ दिया है।

यों पर्वत में पार्वती-रूप की कल्पना ('राम की शक्ति-पूजा' - 'देखो बन्धुवर, सामने स्थित जो यह भूधर') पत्नी रत्नावली के रूप में शारदा की काल्पनिक अवतारणा ('तुलसीदास' - 'देखा शारदा नील वसना') जैसे अंश विराट् बिंबों की कोटि में बड़ी आसानी से परिगणित किये जा सकते हैं, किन्तु उनमें एक उदात्त-भूत भाव के अलावा कोई द्वन्द्वात्मक मनःस्थिति, जटिल मानसिकता नहीं उभारी गई है। क्योंकि इन बिंबों में विराटता है, पर जटिलता नहीं।

वस्तु और बिंब का पारस्परिक संघटन निराला के अनेक बिंब-प्रयोगों में देखा जा सकता है। काव्यभाषा की प्रयोगशीलता ऐसे प्रयोगों में खासतौर से उभरती है। " राम की शक्ति-पूजा " और " सरोज-स्मृति " का सद्यः विश्लेषित अंश इस प्रसंग में भी उल्लेखनीय है। दुर्गम पर्वत पर उतरता हुआ मेघान्धकार राम की शारीरिक और मानसिक स्थिति से बहुत स्वाभाविक रूप में जुड़ जाता है और वर्णन की भाषा में संक्रमित होकर वस्तु और बिंब की समरसता प्रस्तुत करता है। ऐसे संघटित बिंब-प्रयोगों में प्रस्तुत-अप्रस्तुत के द्वैत का निरसन अनिवार्य परिणति के रूप में समझना चाहिए। यौवन के परिधान से सरोज के दृगों में छलकी उल्लास और भीतर छिपी लज्जा की दुहरी अवस्थिति को अपार भोगावली के बिंब में कवि ने संगुंफित कर दिया है और वर्णन में बहुत दूरी तक जाकर यह बिंब सरोज की सूक्ष्म-स्थिति से एकरूप हो जाता है। वर्ण्य और उसके बिंब की संपृक्ति के प्रसंग में कला-प्रयास और सफलता का बहुत दीप्तिमान उदाहरण " तुलसीदास " की इस पंक्ति में द्रष्टव्य है -

बोली भाभी, लाना कुंकुम शोभा को।

बिल्कुल बोलचाल के स्तर पर प्रयुक्त हुआ रत्नावली के लिए कुंकुम शोभा का यह बिंब उसके सौभाग्य सौंदर्य और गौरव को सलीके से उभारता है।

बिंब-विधान के परंपरित उपकरणों को लेने के बावजूद संदर्भ का नयापन उन्हें अभूतपूर्व ताजगी से भर देता है। निराला काव्य में इसके प्रचुर उदाहरण हैं। हिंदी काव्य परंपरा में " शतदल " एक बहुप्रयुक्त अप्रस्तुत है, किन्तु अपनी युवा-कन्या की मृत्यु से संतप्त कवि की विचलित मनःस्थिति के अंकन में वह भावना को नई दीप्ति देता है :

हो इसी कर्म पर वज्रपात्
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हों भ्रष्ट शीत के से शतदल।

कवि अपनी क्षुब्ध मनःस्थिति में व्यर्थ प्रतीत होनेवाले कार्यों के भ्रष्ट होने की कामना करता है - वे ठीक उसी तरह भ्रष्ट हो जाएँ, जैसे शीत के शतदल नष्टप्राय हो जाते हैं। निस्सार लगनेवाले कार्यों के प्रति विलोम और आत्म-विश्वासहीनता की संवेद

बनाने के लिए अतिरिक्त शीत से सम्बद्ध का चित्र नया और सटीक है। "प्रेयसी" कविता में प्रिय की निश्छल दृष्टि का अंकन बिंब योजना के परंपरित उपकरणों- पुष्प, पूर्व-किरण को लेने के बावजूद ताज़गी से भरपूर है :

फेरी निश्छल दृष्टि !
सजल शिशिर-धौत पुष्प ज्यों प्रात में
देखता है एकटक किरण-कुमारी को

इस ताज़गी का एक कारण तो पुष्प के साथ एक भरे-पूरे वातावरण की विन्यस्ति है। पुष्प शिशिर-धौत है, प्रातःकाल का समय है। ये दोनों तत्त्व आलस्य-शून्य दृष्टि को संवेद्य बनाते हैं। फिर शिशिर-धौत पुष्प के किरणकुमारी को एकटक देखने की प्रक्रिया में कवि प्रिय की निश्छल दृष्टि में निहित ताज़गी, तल्लीनता, मुग्धता को संश्लिष्ट रूप में छूता है।

विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से भी काव्य-रूढ़ि तोड़ने की कोशिश निराला की काव्यभाषा को ऊर्जा प्रदान करती है। "गीतिका" का आमुख गीत द्रष्टव्य है -

हूँ दूर -- सदा मैं दूर।
कल्लोलिनी-कला-कल-कलरव,
सुमन-सुरभि समीर सुख अनुभव
कुसुम-किरण-अभिसार- केलि नव
देख रहा हूँ भूल उर।
हूँ दूर- सदा मैं दूर।

यहाँ "कल्लोलिनी-कला-कल-कलरव" "सुमन-सुरभि" "कुसुम-किरण-अभिसार" केलि का प्रयोग छायावाद की शब्द-स्टॉक से है। आत्मपरक दृष्टि के संदर्भ में ऐसे रूढ़ प्रतीकों और शब्दों को कवि नये अनुषंगों से संपृक्त कर देता है। छायावादी काव्य में ये शब्द उल्लास, उन्माद, स्वच्छंदता, उन्मुक्तता के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु निराला इस कविता में इन शब्दों को तुच्छता, क्षणिकता के अर्थ में ध्यान देते हैं। बाकी की पंक्तियाँ इस संदर्भ में देखी जानी चाहिए-

"देख रहा हूं भूल - सर ।" कवि ठेठ व्यंग्यात्मक लहजे में (जो गैर-रोमाण्टिक कविता का गुण है) उन्मुक्त उल्लास के अंकन के लिए छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त "सुमन - सुरभि , कुमुद-किरण-अभिसार केलि" जैसे शब्दों को जीवन की व्यर्थता के रूप में परिकल्पित करता हुआ हल्का तिरस्कार करता है । काव्य-रूढ़ शब्दों को ऐसे नये संदर्भों से निखारने की प्रक्रिया सही अर्थों में सर्जनात्मक काव्य-भाषा की प्रतिनिधि विशेषता है ।

काव्य-रूढ़ि तोड़ने का दूसरा ढंग वह है, जिसमें कवि एक रूढ़ शब्द को लेकर उसके निकट एक ताज़ा शब्द रख देता है, जिसके सान्निध्य से वह रूढ़ शब्द नवीभूत हो उठता है ।" गीतिका " में स्पर्श से लाज लगी " गीत की यह पंक्ति द्रष्टव्य है -

प्रेम-चयन से उठा नयन नव,

शरीरोल्लास के अंकन में नेत्रों की सुकुमार क्रिया का कवि संकेत देता है । प्रिया के नयनों के लिए वह छायावादी काव्य में बार-बार आनेवाले "नव" जैसे प्रचलित शब्द को विशेषण रूप में प्रयुक्त करता है और यह "नव" विशेषण आश्चर्यजनक रूप से नयनों को "नवीनता" प्रदान करता है, जबकि एक काव्य-रूढ़ शब्द होने की हैसियत से उसको एक भाव-रूढ़ि मात्र जाग्रत करनी चाहिए थी । इस नवीनता के मूल में है - "प्रेम-चयन" का शब्द-विन्यास और उसमें अनुस्यूत ताज़गी । प्रिया के नयन प्रेम-चयन करने वाले हैं, प्रेम को चुनने के लिए तत्पर हैं अतः शरीर-सुख की इस स्थिति में वे "नव" प्रतीत हो रहे हैं । यहाँ यह संकेत देना संगत होगा कि निराला की तरह प्रसाद की कविता में भी छायावाद की शब्द-रूढ़ि-क्रम के प्रयोग (जैसे "मधु", "मलयज", "शिशिर", "शिरीष", "लहर") आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मधु-चर्या वाले आरोप के बावजूद एक नई संवेदना से परिपूर्ण हो जाते हैं, प्रसाद की विशिष्ट वैयक्तिकता ,उनका आत्म-चेतन उनसे एकरूप हो जाता है ।

अपनी काव्यभाषा की प्रक्रिया में कई बार कवि रूढ़ि को विपरीत प्रयोग या "कन्ट्रास्ट" से तोड़ता है, जैसे "आराधना" के प्रस्तुत गीत में -

तुम से लाग लगी जो मन की
जग की हुई वासना बासी,

" वासना चाली " के इस प्रयोग में तत्सम-तद्भव का रचनात्मक भेद कवि की दो विपरीत दिशाओं की ओर एक साथ उन्मुख होता है । " वासना " के आभिजात्य में जहाँ आकर्षण है, वहीं " चाली " के ठेठ रूप में उपराम की अवस्थिति है । " वासना " के साथ ' चाली ' जैसा यह नया और साहसिक प्रयोग कवि की पूरी मानसिकता को (जो इस गीत में उभरी है), " वासना " शब्द के परंपरित संस्कार को एक नयी दिशा में मोड़ देता है, जहाँ कोरी निवृत्ति के बजाय एक विशिष्ट ढंग की उदासीनता की अवस्थिति है ।

इसी तरह कभी कवि एक परंपरित तत्त्व की संवेदना और अभिव्यक्ति के स्तर पर लेने के बावजूद उसमें नवोन्मेष भर देता है । " बेला " का उन्हीं गीत द्रष्टव्य है :-

मिट्टी की माया छोड़ चुके
जो, वे अपना घट फोड़ चुके ।
नभ की सुदूरता से ऊँचे
जीवन के क्षण अब हैं छूँछे,
आकर्षण के अभिमानी के
गतिक्रम को अब वे तोड़ चुके ।

सांसारिक माया से निरासक्त मानस के अंकन में नवीनता का एक कारण प्रथम दो पंक्तियों का वाक्य-विन्यास है । कवि ने पहले तो मिट्टी की माया छोड़ चुकने का उल्लेख किया है, फिर अपना घट फोड़ने की बात कही है । जिसे मिट्टी में कोई आकर्षण नहीं महसूस होगा, वह स्वभावतः अपना घट फोड़ देगा । घट फोड़ने में शारीरिक मोह-माया से उपराम होने का कलात्मक संकेत है । मध्यवर्ती दो पंक्तियाँ पारस्परिक अंकित " कंट्रास्ट " से आत्मिक मुक्ति के अंकन में जीवन्तता की सृष्टि करती हैं । मुक्त मानस जहाँ ऊँचाई में नभ की दूरी का भी अतिक्रमण कर गया है (" नभ की सुदूरता से ऊँचे ") वहीं जीवन के क्षण जो अब छूँछे लगने लगे हैं (" जीवन के क्षण अब हैं छूँछे)" । एक ओर आत्मिक मुक्ति की नभ से अधिक ऊँचाई है, दूसरी ओर जीवन के क्षणों का मामूलीपन है । मुक्त मानस जब नभ की सुदूरता से ऊँचा होता है और जीवन के क्षणों का छोटापन

महसूस करता है, इसका ठीक आगे की पंक्तियों में है -

आकर्षण के अभिमानी के
गतिक्रम को जब वे तोड़ चुके।

कवि मन की यह शिथिल मन की मधुरता से ऊँची स्थिति के लक्षण में नया और साथ ही समीचीन है। आकर्षण के अभिमानी के गतिक्रम को तोड़ने पर यानी आकर्षण पाठ को छिन्न-भिन्न करने पर जीवन के क्षणों का "धुआँ" रूप आभासित होने लगता है। निराला का अपनी कविताओं में लय और विराम पर सधा हुआ अनुशासन है। हिन्दी भाषा की सांगीतिक संभावनाओं के दूरगामी विस्तार में, मँजी हुई गीत-रचना में लय और विराम का सूक्ष्म और सुकुमार कौशल कवि ने प्रस्तुत किया है। लय के विविध उपयोग की दृष्टि से उनकी अनेक कविताएँ और गीत लिये जा सकते हैं। "परिमल" का "रेखा" गीत दो लय-गतियों की टकराहट से भाषा को लचीली बनाता है और जीवनानुभूति को गहरे रंग देता है -

सुमन भर न लिये
सखि, वसंत गया।
हर्ष-हरण-हृदय
नहीं निर्दय क्या ?

मानवीय जीवन की विडम्बना, नश्वरता और अस्थिरता पर वसंत के आ कर लौट जाने के रूप में गहरा पश्चात्ताप किया गया है। इस जटिल मनःस्थिति को संवेद्य बनाने के लिए कवि लय का मौलिक रीति से निर्माण करता है। छोटी-छोटी पंक्तियाँ और उनमें निहित ठहराव से निर्मित लय बेचैनी और करुणा की संवेदना से एकरूप हो जाती है। गीत के अन्त में लय का परिवर्तित रूप मिलता है-

याद जी आई
एक दिन जब प्रात
वायु था, आकाश
जो रहा था शांत,

ढल रहे थे मलिन मुख रवि, दुःख किरण
पथ-श्रम पर थी रहा अशान्त पवन,
देखती यह छवि खड़ी मैं साथ थे
कब रहे थे साथ मैं यह साथ ले
एक दिन होगा
जब न मैं हूँगा,
स्वर्ण-चरण हृदय
नहीं निश्चय क्या ?

बाद की पंक्तियों की लयात्मक दीर्घता में एक प्रकार की करुणा ढीलापन और ग्रामीण उदासी आ गई है । कवि ने सूर्यास्त के चित्र में प्रेयसी के जीवन के सूनेपन और संसार की अनित्यता की सूक्ष्मता और मार्मिकता के साथ नियोजना की है ।

" विधवा " कविता में विधवा की मूक-असहाय मूर्ति के अंकन में काफ़ी दूर तक एक-सी वर्णनात्मकता चलती है, जैसे -

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी
वह दीपशिखा -सी शांत भाव में लीन,

लेकिन कविता के अंत तक आते-आते कवि के मानस में विधवा के एकान्त दुःखमय जीवन के प्रति इतनी निकट सहानुभूति उद्भूत हो जाती है कि कविता की लय भी बदल उठती है, अब नमित, उदास, मार्मिक :

कौन उसको धीरज दे सके ?
दुःख का भार कौन ले सके ?
यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छोर है
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है !
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रु-जल ?
या किया करते रहे सब को विकल ?
ओस-कण-सा पल्लवों से झर गया
जो अश्रु भारत का उसी से सर गया ।

छायावादी युग के प्रारंभ में लिखी गई ये कविताएँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि इन कवियों ने खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा में लय और संवेदना का निकटतम संबंध स्थापित करने की कोशिश की । स्पष्ट ही खड़ीबोली के परिष्कार में यह पहला महत्त्वपूर्ण क्रम था । मुक्त छंद की रचना में लय पर सधा हुआ अधिकार निराला की खास विशेषता है, जिसका बढ़िया उदाहरण उनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'जुही की कली " है ।" स्नेह-स्वप्न -मग्न " ," अमल कोमल तनु तरुणी " जुही की कली का अंकन प्रारंभ में लहराती लय के माध्यम से हुआ है -

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी - स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल तनु तरुणी-जुही की कली,
दृग बंद किए, शिथिल -पत्रांक में

ऐसी सुकुमारी प्रिया की मधुर मादक स्मृति दूर देश गए पवन के मानस में उभरती है । यह मादक स्मृति मचलती हुई तेज लय में साकार हो उठी है -

आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
आई याद कांता की कंपित कमनीय गात,

" मैं अकेला "," स्नेह-निर्झर बह गया है ", जैसी रचनाओं में कवि ने अन्तर्मन की थकावट और विषाद को लय की एक अलग विशिष्ट बनावट में अभिव्यक्त किया है। इस भावभूमि की कविता " मग्न तन तृष्णा मन "(आराधना) लय की एकात्मता और खामोशी की दृष्टि से कवि के 'मग्न तन तृष्णा मन' का मार्मिक साक्षात्कार संभव करती है । इस संदर्भ में लय के जटिल रचाव का बहुचर्चित सब से अच्छा उदाहरण " अनामिका " का " मरण-दृश्य " गीत है, जिसमें कवि अपेक्षया मौलिक लयात्मक उद्भावना के माध्यम से भाषा की मतानुशासिकता से मुक्त करता है । एक अंश प्रस्तुत किया जा रहा है -

विश्व सीमाहीन
बाँधती जाती मुझे कर कर
व्यथा से दीन ।

कह रही हो —" दुःख की निधि
यह तुम्हें ला दी नयी निधि
विहग के वे पंख बदले —
किया जल का मीन,
मुक्त अम्बर गया, अब हो
जलधि जीवन को ।

विराम की सुकुमार और सधी विन्यस्ति निराला की काव्यभाषा की एक सूक्ष्म विशेषता है, जिसका स्वधर्मी कवि को पूरा ध्यान रहा है । " स्नेह-निर्झर बह गया है " गीत का यह अंश उल्लेखनीय है —

आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है —" अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ —
जीवन दह गया है । "

यहाँ ' नहीं आते " और " पंक्ति मैं वह हूँ लिखी " के बीच का अंतराल कितनी काव्यात्मक सार्थकता से परिपूर्ण है, यह देखने योग्य है । आम की डाल के मन में अपनी अनुपयोगिता, शोभाहीनता, निरर्थकता के एहसास से उत्पन्न मार्मिक पीड़ा को बीच का यह विराम रचनात्मक अभिव्यक्ति देता है । ऐसे सुकुमार और सूक्ष्म कलात्मक संकेतों को उनकी पूरी अर्थवत्ता में परखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पाठक भी अपनी मानसिक प्रक्रिया में किसी सीमा तक कवि जैसा संवेदनशील हो, अन्यथा जल्दी पकड़ में न आनेवाली ऐसी सूक्ष्म कला-चेष्टाओं में निहित कविता की रचना-क्षमता का पूरा उद्घाटन नहीं हो पाता ।

अपने निर्वासन से उपजी वेदना और रचनात्मक व्यक्तित्व के एहसास से प्राप्त क्षोभ की दुहरी मनःस्थिति को " बेला " के अपने गीत में अर्द्ध-विराम ने विशिष्ट रूप से संवेद्य बना दिया है —

बाहर मैं कर दिया गया हूँ, भीतर पर भर दिया गया हूँ ।

खास तौर से यहाँ ' भीतर " और " पर " के बाद के अर्द्ध-विराम भीतर की शक्ति की

सुखानुभूति को अतिशय सुकुमार रीति से रूपायित करते हैं ।

बिंब और वस्तु के संघटन की तरह ही निराला ने अलंकार को भाषा में पर्यवसित करने की कोशिश की है, जिसके फलस्वरूप वह कविता में ऊपरी सजावट के रूप में न रहकर भाषा के साथ घुल-मिल जाता है । इस प्रक्रिया को भाषिक वर्णन में बिंब के पर्यवसान की प्रवृत्ति के समानान्तर रखने से यह तात्पर्य नहीं है कि यह बिंब की गुणशील स्थिति की तरह ही कविता को अर्थ-समृद्धि प्रदान करती है। वस्तुतः जीवन-स्थितियों को उनके संश्लिष्ट रूप में साक्षात्कृत करने की महत्त्वाकांक्षी कोशिश में बिंब प्रक्रिया की विशिष्टता बिल्कुल अनूठी और अलग है । शाब्दिक अलंकरण का प्रयोग आधुनिक कवि कला-प्रयास और सजगता का मेल-दिखाने के लिए करता है । खासतौर से परवर्ती गीतों में निराला ने इस तरह के अनेक यमक प्रयोग किये हैं, जिसका बढ़िया उदाहरण " भग्न तन रुग्ण मन " (" आराधना ") गीत के निम्न अंश में देखा जा सकता है -

चलता नहीं हाथ
कोई नहीं साथ
उन्नत, विनत माथ
दो शरण, दोषारण ।

कुशल कवि दीनता और अनुनय की सीधी-सादी भावभूमि में भी कितनी अनौपचारिक कला-चेष्टा के साथ यमक से प्रभावपूर्ण सामग्री ला सकता है, यह " दो शरण ", दोषारण " प्रयोग में द्रष्टव्य है । यमक जैसे द्व्यर्थक चामत्कारिक शब्दालंकार की मार्मिक और कातर प्रार्थना जैसी संवेदना को सीधे संस्पर्श करने की यह शक्ति कवि के सावधान काव्यानुशासन से उपजकर आई है । इसी तरह " मानव के तन केतन फहरे " (" आराधना ") आशावान गीत में " के तन " और " केतन " का यमक मानव के विजय-पर्व को अलंकरण और सजगता की संपृक्ति के माध्यम से दीप्त करता है । ऐसे प्रयोग भाषा-प्रवाह को गतिशील बनाते हैं, और गीत के विधान में समरस हो जाते हैं । " आराधना " के एक अन्य गीत " फिर बेसर से डर के हैं " में " बेसर " " से डर " के यमक में यही वैशिष्ट्य देखा जा सकता है ।[१] भगवान बुद्ध के प्रति " (" अणिमा " से संकलित) कविता की इन पंक्तियों में भी यमक की कुशलता देखने योग्य है -

रसना रस-नाम-रहित
किन्तु रस-ग्राहिका

शारीरिक संपर्क के लिए आकुल, किन्तु वास्तविक प्रणय भाव के संस्पर्श से अछूते युवा-हृदय की सुकुमार संवेदना रस शब्द के विविध प्रयोगों में संश्लिष्ट अभिव्यक्ति पा सकी है। युवक की रसना (जिह्वा) रसनाम रहित (प्रेम के संस्पर्श से अछूती) है, किन्तु रसग्राहिका (भोग की आकांक्षिणी) है। यहाँ उल्लेखनीय है - " रसनाम-रहित " और " रस-ग्राहिका " में आये हुए शब्द के दुहरे अर्थ-स्तर, जिनमें " प्रेम " और " भोग " का सूक्ष्म विवेक अनुस्यूत है।

गीतों के विधान में यमक-योजना स्वच्छ संगीतात्मकता की सृष्टि करती है। इसके बहुतेरे उदाहरण 'गीतिका', 'बेला' और परवर्ती गीत - संकलनों में देखे जा सकते हैं, जैसे -

बेधार के बेध (" गीतिका ", गीत सं० ३)
वासना वारी (" आराधना", गीत सं० ५०)
दे सकल कल दल
दिशावधि सरोज शेष (" आराधना" , गीत सं० ६२)

निराला की काव्यभाषा शब्दावली, वाक्य-विन्यास, लय, अलंकरण, छंद प्रायः हर स्तर पर यांत्रिकता से बचने की सफल कोशिश करती है। उनके मुक्त छंद इसका बढ़िया उदाहरण हैं, जिनके निर्माण में कवि का यह विचार है- "मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति है कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।"[1] यह तो मुक्त छंद की बात हुई, निराला ने बँधे-बँधाये छंदों में वाक्य भंग पद्धति के प्रयोग से अतिरिक्त रवानगी ला दी है। एक पंक्ति को तोड़कर दूसरी पंक्ति में बढ़ सहज भाव से पहुँचने की प्रवृत्ति उन छंदों में अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, जहाँ संवेदना बहुत तीव्र प्रखर हो, बंधन तोड़ने के लिए आकुल हो। वाक्य-राग का यह छंद-सीमित पंक्तियों को तोड़ने की प्रक्रिया में भी वाक्य के विराट्-

---

१) परिमल, भूमिका, पृ० १२

क्रांतिकारी व्यक्तित्व को स्वर देता है -

> घन भेरी गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
> उर में पृथ्वी के आशाओं से
> नव जीवन की ऊँचा कर सिर
> ताक रहे हैं ऐ विप्लव के बादल !

" राम की शक्ति-पूजा " में हनुमान के आकाश-गमन के क्रम में पंक्ति की तोड़-फोड़ साभिप्राय है -

> वज्रांग तेज घन बना पवन को महाकाश
> पहुँचा, एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास ।

पंक्ति को तोड़ देने से क्षुब्ध और शक्तिशाली पवन-पुत्र हनुमान के त्वरा युक्त आकाश गमन का चित्र सजीव और नाटकीयता से युक्त हो उठता है ।

वाक्य-भंग का प्रयोग करते हुए निराला ने गीत को संगीत-रूढ़ि से मुक्त करने की कोशिश की है। 'स्नेह-निर्झर बह गया है' से एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है -

> आम की यह डाल जो सूखी दिखी
> कह रही है -' अब यहाँ पिक या शिखी
> नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
> नहीं जिसका अर्थ -
> जीवन दह गया है ।

यहाँ पंक्तियों के कहीं बीच में टूट जाने या छूटे रहने से अवसाद और सूनेपन की व्यंजना है। विशेषतः उसकी पंक्ति के टूटने में जैसे सचमुच आम की सूखी डाल के रूप में रिक्त जीवन की मनोव्यथा उजागर हो गई है । पिक या शिखी के न आने का अवसाद पंक्ति के टूटे रूप में केन्द्रीभूत होने से कविता का जो रूप यहाँ निर्मित होता है, उसकी परख ही सच्ची आस्वादन -प्रक्रिया है ।

विपरीत भाव के शब्दों की निकट विन्यस्तता भी कवि की भाषा प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है।" बादल-राग " (4) का एक अंश है -

घन, भेरी-गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल !
फिर फिर !

यहाँ 'सजग' और 'सुप्त' (जो अर्थ की दृष्टि से परस्पर विरोधी हैं) शब्दों की साथ-साथ नियोजना साभिप्राय है। बादलों के भेरी-गर्जन से सुप्त अंकुर सजग हो गये हैं। अभी तक तो वे सुप्त थे, किन्तु एकाएक सजग हुए हैं, 'सजग' के ठीक बाद 'सुप्त' के प्रयोग से यह सूक्ष्म ध्वनि निकलती है, और प्रकारान्तर से बादलों के भेरी गर्जन की प्रभावोत्पादकता और बढ़ जाती है।

इसी कविता में फिर कुछ पंक्तियों के बाद विपरीत भाव की नियोजना से उत्पन्न अर्थ-चमत्कार का उदाहरण इस रूप में मिलता है -

अशनि-पात से शापित उन्नत शत शत वीर
क्षत-विक्षत हत अचल शरीर
गगन स्पर्शी स्पर्द्धा धीर।

यहाँ भी विपरीत अर्थवाले शब्दों की सह-उपस्थिति के मूल में बादल की दुर्निवार शक्ति की सशक्त-व्यंजना है। उन्नत शत-शत वीर शापित हो गए हैं, अचल शरीर क्षत-विक्षत हो गये हैं। बादल का अशनि-पात इतना प्रभावकारी है। 'शापित' की अर्थवत्ता 'उन्नत' के बिल्कुल पास में रखने से बढ़ गई है, और यही स्थिति 'अचल शरीर' के समीप रखे गये 'क्षत-विक्षत' -अर्थ पद की है।

समग्र रूप में शब्द की नाद और अर्थ-शक्ति के प्रति निराला बहुत गंभीर निष्ठा के साथ सजग रहे हैं। 'गीतिका' के एक गीत में उन्होंने वर्ण-चमत्कार की सशक्त व्याख्या की है -

वर्ण-चमत्कार,
एक एक शब्द बँधा ध्वनिमय साकार।
पद-पद पर बही भाव धारा,
निमिष पल-पल में बँध गया विश्व सारा,
छुटी मुक्ति बंधन से बँधी फिर अपार-
वर्ण-चमत्कार।

यहाँ वर्णों से ऊपर अर्थित ध्वनि रूप की प्रक्रिया का सूक्ष्म अंकन हुआ है । निराला की लगभग सभी लम्बी और प्रसिद्ध कविताओं में, सांस्कृतिक गीतों में इस वर्ण-चमत्कार का भव्य प्रसार हुआ है । " राम की शक्ति-पूजा " का आरंभिक समासपरक बंध अपनी कठोर नाद योजना के कारण युद्ध-दृश्य का बहुत प्रभावपूर्ण और वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है । शब्दों का आपस में भिड़ना भाषा में सीधे ही युद्ध को रच देता है । इन पंक्तियों में आंतरिक साम्य की दृष्टि से नियोजित ध्वनि आवृत्तियों को भी देखा जाना चाहिए । " जागो फिर एक बार " का पद अंश प्रस्तुत है -

प्यार जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण पंख तरुण किरण
खड़ी खोलती है द्वार-
जागो फिर एक बार ।

" हारे " और " तारे ", " अरुण " और " तरुण " की ध्वनि आवृत्ति से मुक्त छंद में प्रवाह तथा आंतरिक संबद्धता की अवस्थिति हुई है । निराला के काव्य में संगीत का सा आनन्द मिलने के मूल में उनका विशिष्ट नाद-तत्व और ध्वनि आवृत्ति है । " कुकुरमुत्ता " और " नये पत्ते " की सीधी-सादी प्रवृत्ति की तुलना में प्रारंभिक क्लासिकल काव्य की यह आभरण-परकता उल्लेखनीय है ।

छायावादी कवियों में निराला और प्रसाद की वाक्य विन्यास संबंधी सफलता और सृजनशीलता ध्यान आकृष्ट करती है । लम्बे और छोटे दोनों तरह के वाक्य निराला काव्य की रचनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । इन पर एकान्त अधिकार होने के कारण वाक्य का विस्तार केन्द्र-च्युत नहीं होता । पहले संध्या-सुन्दरी कविता का दीर्घ वाक्य लिया जाता है -

सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा " चुप-चुप-चुप "
है गूँज रहा सब कहीं -
व्योम मण्डल में - जगती तल में -
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल कमलिनी दल में -
सौन्दर्य-गर्विता सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में -

धीर-वीर-गंभीर शिखर पर हिमगिरि अटल अचल में -
उत्ताल तरंगाघात प्रलय घन गर्जन जलधि प्रबल में -
क्षिति में - जल में - नभ में - अनिल - अनल में -
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा " चुप-चुप-चुप "
है गूँज रहा सब कहीं , -

वाक्य के इतने लम्बे विस्तार में, लय की रसात्मकता, अनुभव की एकतानता और समासों का गतिशील रूप चमत्कार काव्यभाषा को नियोजित कर सकती है। नीरवता - और वह भी सन्ध्याकालीन नीरवता - के प्रकृति व्यापी अंकन में इतने लम्बे वाक्य और उनमें रहनी उक्त शब्दावली की विन्यस्त भाषा प्रयोग विधि की मौलिक दिशा की ओर संकेत करती है। " बादल राग " का तीसरा भाव-बंध सव्यसाची अर्जुन के रूप में परिकल्पित बादल की लम्बी यात्रा को भी बड़े लम्बे -लम्बे वाक्यों में चित्रित करता है। " बादल-राग " के अन्तिम भाव-बन्ध में छोटे हलके जानवाले मनुष्यों में क्रान्ति के लिए ललक को छोटे-छोटे पौधों के बिंब में अभिव्यक्ति दी गई है। यहाँ छोटी-छोटी पंक्तियों से बने वाक्य की संरचना देखते बनती है -

हँसते हैं छोटे पौधे लघु भार
शस्य अपार
हिल हिल
खिल खिल
हाथ हिलाते
तुझे बुलाते
विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।

वाक्य की लघु-स्वच्छ प्रकृति से छोटे पौधों का सात्विक उल्लास उभर उठा है।

निराला की वाक्य संरचना में बँगला भाषा की सामासिक और विविध क्रमिक संरचना का यदि कुछ प्रभाव पड़ा हो, तो वह स्वाभाविक है। " जुही की कली " उनकी पहली प्रकाशित कविता है, जिसमें इस प्रभाव का संक्रमण

देखा जा सकता है । भाषा वैज्ञानिकों ने परिलक्षित किया है कि हिन्दी की तुलना में बँगला भाषा में संस्कृत का संश्लेषणात्मक स्थिति से अपेक्षाकृत अधिक है । संस्कृत की समास-योजना को आधार बनाकर कवि ने 'राम की शक्ति-पूजा' के आरंभिक समास-बंध की रचना की है, जिसमें पूरी अठारह पंक्तियों के बाद एक वाक्य समाप्त होता है । बहुत कुछ बँगला की तरह ऐसा शब्दों की गति में ही बिना क्रिया-पदों के यह वाक्य चलता है । युद्ध-क्षेत्र की भीषणता, राम और उनकी वानर सेना की संकुल मनःस्थिति, रावण और उसकी राक्षस सेना का दमन-चक्र आदि विधान में जटिल, संश्लिष्ट और सामासिक वाक्य में महाकाव्योचित गरिमा के साथ रूपायित हुआ है । अतएव संस्कृत शब्दों और समास-पदों के प्रति कवि का आग्रह होने के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसे वाक्यों की रचना कवि ने केवल पाण्डित्य प्रदर्शित करने के लिए की है । 'शक्ति-पूजा' के इस आरंभिक बंध का भाषिक संरचना की दृष्टि से वर्णनात्मक स्तर पर विशिष्ट प्रयोजन है ।

'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' की ठेठ कविताओं की भाषिक प्रक्रिया बिल्कुल अलग है। वहाँ भाषिक आभिजात्य के सभी उपादानों की एकांतिक वर्जना है, जिसे इन रचनाओं के विश्लेषण-क्रम में देखा गया है । इस अध्ययन से यह कहना शेष रह जाता है कि इनकी रचना में कवि ने बोलचाल के स्तर पर प्रयुक्त हिन्दुस्तानी भाषा को आश्चर्यजनक रूप से काव्यभाषा की गरिमा प्रदान की है । खुरदुरे शब्दों, ठेठ मुहावरों, एकदम गद्यात्मक लय, अचूक व्यंग्य प्रणाली के प्रयोग से कवि ने इन कविताओं में हिन्दी काव्यभाषा के एक नये और अपेक्षाकृत आधुनिक आयाम का संस्पर्श किया है ।

भाषा-प्रक्रिया के संबंध में कवि की यह सतर्क संवेदनशीलता खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा को एक अपूर्व रचना-क्षमता देती है । उसमें जहाँ आरंभिक चरण के परिष्कार प्रयत्नों की पूर्णता है, वहीं आगामी रचना-युग की विद्रोही वृत्ति के बीज भी निहित हैं । इस प्रसंग में निराला की यह उक्ति अच्छी तरह समझ में आती है -

'अभी न होगा मेरा अंत ।'

नामवाची शब्दावली के विविध प्रयोग

(क) " राम की शक्ति-पूजा "

(१) तत्सम	(२) तद्भव-देशज	(३) विदेशी	
६०५ / ९७.९	१० / १.६	३ / .५	= ६१८

(ख) " कुकुरमुत्ता "

(१) तत्सम	(२) तद्भव-देशज	(३) विदेशी	
३९ / १४.४	१३२ / ४८.७	१०० / ३६.९	= २७१

(ग) परवर्ती गीत

" अर्चना " - १) बाँधो न नाव इस ठाँव, बंधु ! (गीत सं० ३०)

२) गीत गाने दो मुझे तो,
वेदना को रोकने को । (गीत सं० ५६)

"आराधना" - १) खड़ा हुआ विश्व का पसारे (गीत सं० १६)

२) छोटा है तो भी छोटा कर (गीत सं० १८)

३) दुखता रहता है अब जीवन (गीत सं० २२)

"गीत-गुंज" - १) बादल छाये (गीत सं०)

(१) तत्सम	(२) तद्भव-देशज	(३) विदेशी	
३३ / ४१.२	४२ / ५२.५	५ / ६.२	= ८०

अध्याय - ५

सुमित्रानन्दन पन्त की काव्यभाषा

छायावादी काव्यभाषा के वैशिष्ट्य के प्रति समीक्षकों और पाठकों का एक बँधा-बँधाया दृष्टिकोण बन गया है । इस वैशिष्ट्य के अन्तर्गत चित्रात्मकता, लाक्षणिकता और कल्पना-समृद्धि को केन्द्रीय स्थान मिला है, जिसका सब से खरा आस्वादन सुमित्रानन्दन पन्त की काव्यभाषा के माध्यम से किया जा सकता है । इस रूप में छायावादी काव्यभाषा का प्रतिनिधित्व एक स्तर पर पन्त की काव्यभाषा करती रही है । छायावाद के साथ अतिरिक्त कल्पना-मोह और शब्द-क्रीड़ा के अनुदात्त अनुभवों को जोड़ने में अपना योगदान देने के बावजूद पन्त ने अपनी पैनी भावपूर्ण संवेदना का परिचय दिया है, और छायावाद के बाद की काव्यभाषा को अपने काव्य-व्यक्तित्व में समाविष्ट करने की कोशिश की है, इससे पन्त की काव्यभाषा- या कि पन्त की रचना-प्रक्रिया-को लेकर दो तरह की प्रतिक्रियाएँ उद्भूत होती हैं ।

यह अपने में एक विरोधाभास है (और इसका अनुभव एक-बारगी अटपटा लग सकता है) कि जिस कवि ने ब्रजभाषा की रूढ़ शृंगारिक कविता के प्रति विरोध-भाव अपने समानधर्माओं की तुलना में सब से अधिक जोश के साथ प्रकट किया था (द्रष्टव्य " पल्लव " का " प्रवेश " तथा " छायावाद : पुनर्मूल्यांकन ") उसकी खड़ीबोली की छायावादी कविता में रूढ़ियाँ सब से जल्दी विकसित हो गईं । यह भी एक रोचक विडम्बना है - भले ही इसका उल्लेख अप्रासंगिक हो - कि अलंकरण और चमत्कार को महत्व देनेवाले परवर्ती ब्रजभाषा-काव्य पर अपना सबल आक्रोश कवि ने स्वयं बिल्कुल वैसी ही संवरी खड़ीबोली में प्रकट किया । एक दृष्टान्त रखा जा रहा है - " ब्रजभाषा के उन्मत्त-नाद में इन कवियों की लालसा के साँप, इनकी उपमाओं के शाप-भ्रष्ट मधुप, अपनी कोमलता में इनके अत्याचार के भार-भाव, अपने सुकुमार अंगों में इनकी वासना की विरहाग्नि का

अपहृत ताप सदा के लिए बना ही रहेगा । उसकी उदार छाती पर उन्होंने पहाड़ रख दिया ।[1]

कविता की श्रेष्ठता की पहचान सब से अच्छे ढंग से इसी तरह हो सकती है कि उसे बनानेवाले काव्यभाषा अभिव्यक्तिमात्र हो, उसके अन्तर्गत निर्मित होता हुआ, अनुभव-संवेदन या कल्पना-रूप उन्हीं अर्थों में उसके हों, कटु प्रतिक्रियाएँ न उद्भूत करें । कवि पंत निराला और प्रसाद की तुलना में अपने सारे शब्द-वैभव और कल्पनात्मक समृद्धि के बावजूद भाषा के साथ गहरी संगति नहीं रख सके हैं, जिससे अनुभव-संवेदन में सार्थक उन्मेष रच-पच सके ।

" पल्लव " से पूर्व की रचनाओं में " वीणा " और " ग्रंथि " अपने में कोई महत्वपूर्ण कोशिश नहीं है । उनके द्वारा यह पता चलता है कि कवि अपने प्रारंभिक काव्य-सृजन से पाठक-वर्ग को आन्दोलित करनेवाला नहीं । अलंकरण-चेष्टा यहाँ अधिक है - विशेषतः " ग्रन्थि " में । कहीं-कहीं कवि ने जिन नवीन अप्रस्तुतों की नियोजना की है, वे कवि की कल्पना-क्षमता का परिचय देते हैं :

(इन गढ़ों में - रूप के आवर्त-से -
घूम-फिर कर, नाव से किसके नयन
हैं नहीं डूबे, भटककर , अटककर,
भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के ?)

यहाँ प्रिया के गाल पर पड़नेवाले गढ़ों के प्रति आकर्षण को भँवर में पड़ी नाव के अप्रस्तुत में स्थापित कर कवि ने अपने सौन्दर्य-बोध में निहित नवीनता का परिचय दिया है । इसी तरह " वीणा " की " प्रथम रश्मि " कविता अपने विधान में सफल बन पड़ी है । प्रभातकालीन प्रकृति, जागृति और नवोन्मेष - तीनों अनुभव स्तरों का समान आस्वादन यहाँ किया जा सकता है । छायावादी कविता पूर्व इस तरह का संश्लिष्ट अनुभव (यद्यपि वह अपनी आरंभिक अवस्था में है) विकसित करने की कोशिश नहीं की गई थी । कवि पनिहारिन को उसके सामान्य रूप में न देखकर जागरण के प्रतीक रूप में देखता है :-

---

१) " पल्लव " प्रवेश, पृ० ६

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि ?
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि !
पाया तूने यह गाना ?

"पल्लव" (१९२८ ई०) एक रूप में छायावादी काव्यधारा के एक बड़ा चित्रात्मकता, नयी कल्पनात्मक छवियों, शब्द-अपव्यय का बढ़िया उदाहरण है।" पल्लव" के कवि पन्त की सीमा और संभावना - दोनों के विकास में कुछ सूत्र पाये जाते हैं। प्रणयानुभवों के चित्रण में वे यहाँ जो प्रतीकों में उतनी सूक्ष्मता उदात्तता समाविष्ट कर देते हैं (शायद नारी के प्रति रीतिकालीन कवियों की स्थूल दृष्टि की प्रतिक्रिया-स्वरूप) कि मांसलता टिकने नहीं पाती -

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा-स्नान ;
तुम्हारी वाणी में कल्याणि।
त्रिवेणी की लहरों का गान।
अपरिचित चितवन में था प्रात,
सुधामय-साँसों में उपचार।
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार।

यहाँ एक पंक्ति अवश्य संवेदनशील शृंगारिकता को निर्मित करती है- सुधामय साँसों में उपचार।" उपचार की अवस्थिति प्रेयसी की सुधामय साँसों में कर कवि ने प्रणय-भाव को सूक्ष्म स्तर पर आत्मीय बनाया है।

कहीं प्रतीकों की नियोजना अतिरिक्त भावावेग का संकेत देती है, जिसे कुछ-कुछ बच्चन की "मधुशाला" के उन्माद का पूर्वाभास कहा जा सकता है :

कभी तो अब तक पावन प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार,
हुई मुझको ही मदिरा आज
हाय, क्या गंगाजल की धार !!

हृदय ! रो, अपने दुःख का भार !
हृदय ! रो, उनको है अधिकार !
हृदय ! रो, यह जड़-स्वेच्छाचार,
शिशिर का-सा समीर-संचार !

छायावाद की नयी लहर में अपने ढंग से विकसित होनेवाली लाक्षणिकता का प्रतिनिधित्व इस तरह के प्रयोग करते हैं, जिनकी ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संकेत अपने इतिहास में किया है -

उषा का था उर में आवास,
मुकुल मुख मे मृदुल-विकास ;
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों की साँस ।

प्रेमास्पद की रूप-छवि और भाव-छवि के वैशिष्ट्य- ताज़गी, मृदुलता, दीप्ति, निर्दोषता और भोलेपन - को इन सूक्ष्म लाक्षणिक प्रयोगों से नये ढंग से चित्रित किया है । अन्तिम दो पंक्तियाँ विशेषतः मार्मिक बन पड़ी है ।

" पल्लव " की " वीचि - विलास " संबोधनात्मक कविता है । पंत की मूर्त-अमूर्त अप्रस्तुत विधायिनी कल्पना-सामर्थ्य का अच्छा परिचय इस कविता से मिल सकता है ।" लहर " को कवि तरह-तरह से विविध रूपों में चित्रित करता है । दो-एक अंश उद्धृत किये जा रहे है :

मूढ़-बाँह सी यति-गति हीन
कामिनी सी कौतुक मे लीन,
सफल कल्पना-सी साकार,
पुनः पुनः प्रिय ,पुनः नवीन ;

तुम शैशव-स्मिति सी सुकुमार,
मर्म-रहित, पर मधुर अपार,
खिल पड़ती हो बिना विचार ।

कवि एक के बाद एक नवीन अप्रस्तुतों की रचना करता चलता है। उनका प्रस्तुत लहर के जीवन से क्या संबंध है, कहाँ तक वे उसे सार्थकता प्रदान कर रहे हैं, कवि इसकी चिन्ता करता नहीं प्रतीत होता। इतने नये-नये अप्रस्तुतों की इतने उत्साह के साथ आयोजना इस बात का प्रमाण है कि कवि कल्पना-चित्रों की निर्मिति को अपने में महत्वपूर्ण समझता है। इस तरह के खण्ड-चित्र कोई समग्र प्रभाव स्थायी पाठक पर नहीं छोड़ते। "लहर" प्रसाद की भी एक कविता है, जिसमें लहर उनके अनुभव-संवेदन में रच-बस जाता है, लहर और मानवीय अनुभूति का संश्लेषण हो जाता है। पंत के 'वीचि-विलास' में ऐसा कुछ नहीं पाया जाता, इसीलिए पंत के संबंध में यह मानना होगा कि वे कल्पना के-उसमें भी चित्रात्मक कल्पना के — कवि हैं, उनकी काव्यभाषा को अनुभव की जटिलताओं से जूझना प्रीतिकर नहीं लगता। एक समय था, जबकि समग्र प्रभाव-छवि को आँके बिना पाठक पंत के इन कल्पना-चित्रों पर रीझता था। प्रसाद और निराला के जटिल-सूक्ष्म काव्य से पहचान होने पर यह बात एक रोचक विडंबना लगती है कि किसी समय छायावादी काव्य के केन्द्र में इन कल्पनात्मक चित्रों को ही रखा जाता था।

"पल्लव" की "मधुकरी" और "मोह" शीर्षक कविताओं में कवि ने मध्यकालीन काव्य में स्वतंत्र अस्तित्व न रखमाने वाली प्रकृति के प्रति अपने सहज आकर्षण की अभिव्यक्ति करते हुए एक प्रकारांतर से रीतिकालीन एकान्तिक नारी-शृंगार संबंधी दृष्टिकोण की उपेक्षा की है। यह प्रवृत्ति "मोह" कविता में अधिक उजागर हुई है :

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को।

रीतिकालीन शृंगार-अतिरेक के विरुद्ध प्रकृति के प्रति उसके एक निश्छल आकर्षण का सहज आस्वादन इस ढंग से किया जा सकता है।

कर सकता था, उसी रूप में 'छाया' पर रची कविता सार्थक और भव्य बन सकती थी। उपमानों का इस तरह से अंबार लगा देना काव्य में कुछ बहुत स्पृहणीय नहीं है। यों छाया से उनके संबंधगत औचित्य का ध्यान अगर न रखा जाए (यद्यपि रचना-प्रक्रिया के समीचीन विश्लेषण की दृष्टि से यह अवधान ठीक नहीं) और इन कल्पना-छवियों को उनके स्वतन्त्र रूप में देखा परखा जाए तो पंत की - छायावादी कवि की - नयी विकासशील खड़ीबोली में अभूतपूर्व अभिव्यंजना-शक्ति का परिचय मिलता है। यहाँ लोभ और तृप्ति जैसी अमूर्त वृत्तियों को भरपूर क्रियात्मक बनाकर कवि ने प्रस्तुत किया है :

कभी लोभ-सी लंबी होकर,
कभी तृप्ति सी होकर फिर पीन,
क्या संसृति की अचिर भूति तुम
अयि ! भावती की स्थिति दीन ?

विश्व के सारे कार्य व्यापारों के मूल में किसी शक्ति की अनिवार्यता के प्रति जिज्ञासा-भावना हर छायावादी कवि में रही है। " मौन निमन्त्रण " कविता में कवि ने क्रमानुसार सुकुमार परम्परा चित्रों की अवतारणा कर इस जिज्ञासा-भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। एक सुकुमार चित्र प्रस्तुत है :

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर-उर के - से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन !

यहाँ पर पंत प्रकृति के यौवन को नये संदर्भ में रखते हैं। ध्वनि और गंध के संश्लेषण से वसंत ऋतु की मादकता का अनुभव कवि के स्तर पर गतिशील बना रहता है। इस तरह का अंकन सिर्फ छायावादी शैली में ही हो सकता था। चौथी पंक्ति का भी सूक्ष्म-अमूर्त एवं सुकुमार अप्रस्तुत है, यह कली से फूल बनने की क्रिया में सूक्ष्म और कोमल प्रक्रिया का एकदम अनायास अंकन करता है

और इसी बिन्दु पर आकर चित्र बन जाता है -

विधुर उर के से मृदु-उद्‌गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास ;

इतने सुकुमार दृश्य के मूल में किसी विराट शक्ति की अवस्थिति की संभावना उसको विराटता की ओर भव्य बना देती है :

न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन !

इसी का पूरक एक भयानक चित्र (वस्तुतः सुकुमार और भयानक को विरोधी जीवन - दृश्य के रूप में न देखकर एक दूसरे के पूरक समझे जाने चाहिए ।) द्रष्टव्य है -

क्षुब्ध जल-शिखरों को जब वात
सिन्धु में मथ कर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल-संसार
बना बिथुरा देती अज्ञात ;
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता मौन !

कोमल और परुष दोनों प्रकृति दृश्यों के मूल में किसी सत्ता की अवस्थिति का विश्वास ही उस सत्ता की विराटता को संतुलित और संपूर्ण बनाता है ।

" बादल" कविता में एक बार फिर पंत की चित्र-विचित्र कल्पनाओं का परिचय मिलता है ।" वीचि-विलास " और" छाया " की तरह यहाँ भी एक समग्र प्रभाव निर्मित नहीं हो पाता । निराला के" बादल-राग " के अन्तर्गत विभिन्न चित्रों में बादल का एक विराट् व्यापक स्वरूप अंकित होता है - लेकिन यहाँ तो बादल कवि पंत की कल्पना के अनुसार रूप ग्रहण करते चलते हैं , चित्रों में अन्विति का योग नहीं है । इस तरह पंत के बादल में वायवीयता अधिक है, उसका व्यक्तित्व नहीं बन पाया है । समन्वित प्रभाव और व्यक्तित्व-निर्माण की अपेक्षाओं (जो- एक बार फिर कहना होगा - श्रेष्ठ रचना के आवश्यक गुण हैं) को ध्यान कर लिये

सिर्फ़ एक मनोवैज्ञानिक वाग्जाल-मात्र बनकर रह जाती है।"[1]

कहीं-कहीं कवि की कल्पना त्रुटिपूर्ण लगती है, जैसे निम्न छंद में कवि के ध्वनिगत विभ्रम के कारण :-

कभी अचानक भूतों का-सा
प्रकटा विकट महा आकार,
कड़क, कड़क, जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार,

बादल की गड़गड़ाहट के लिए 'कड़क, कड़क' ध्वनि का प्रयोग त्रुटिपूर्ण है। 'कड़क' ध्वनि बिजली के साथ जितनी जुड़ती है, उतनी बादल के साथ नहीं। दूधनाथ जी ने ठीक ही कहा है - "ध्वनि-लाघव का इतना उल्लंघन अशोभन लगता है।"[2] यहाँ पर इतना जोड़ देना होगा कि पंत की सूक्ष्म-सुरुचि ध्वनि-बोध-संवेदना के परिप्रेक्ष्य में यह त्रुटि आश्चर्यपूर्ण लगती है।

पन्त की कल्पना-क्रीड़ा का एक दूसरा उत्कृष्ट रूप "स्याही की बूँद" शीर्षक कविता में देखा जा सकता है। "स्याही की बूँद" के लिए कवि तरह-तरह की कल्पनाएँ करता है, जिनमें से एक अंश को उद्धृत करना उचित रहेगा :

अर्ध-निद्रित-सा, विस्मृत-सा
न जागृत-सा, न विमूर्छित-सा,
अर्ध-जीवित-सा, औ मृत-सा,
न हर्षित-सा, न विमर्षित-सा,
गिरा का है क्या यह परिहास ?

"पल्लव" की "परिवर्तन" कविता अपने रचना-संगठन में अपेक्षाकृत प्रौढ़ है। पंत की रुचि कल्पना-चित्रों में अधिक रमती है, किसी दृश्य या संवेदना का चित्रण, उपमानों में ढलना उनकी मुख्य-रचना-भूमि है। इस दृष्टि से "परिवर्तन" जैसी कविता उनके कृतित्व के परिप्रेक्ष्य में एक सुखद आश्चर्य है, जिसमें

---

१) निराला : आत्महंता आस्था, पृ० ३८७
२) वही, पृ० ३८७

कवि ने मानवीय नियति की क्रूरता और फलस्वरूप मानवीय जीवन की विडम्बना को विविध प्राकृतिक दृश्यों तथा मानवीय स्थितियों की सापेक्षता में अभिव्यक्ति दी है । सामान्यतः कोमल वस्तुओं के चयन में पटु छायावादी कवि पंत किस कुशलता से दुर्धर्ष परुष बिंबों की संयोजना इस कविता में करते हैं, यह द्रष्टव्य है । पंत के छंद-विधान की मौलिकता और कलात्मकता वास्तविक रूप में " परिवर्तन " में उभरी है । इसी कविता में पंत ने कुछ विराट् बिंबों की भी नियोजना की है जो " वासुकि सहस्र फन ", " नृशंस नृप " की बिंबों में देखे जा सकते हैं । सांगरूपक किस तरह कवि के अनुभव-संवेदन में रूप बदलकर (इस तरह ब्योरेवार वर्णन से अलग होकर) बिंब में संक्रमित हो जाता है, यह इन अंशों में देखा जाना चाहिए :

अहे वासुकि सहस्र फन ।
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर ।
शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुण्डल
दिङ्मंडल ।

भयानकता का ताण्डव-नृत्य इस विशिष्ट वर्ण-विन्यास में रचे गए " वासुकि सहस्र फन " के सांगरूपक पर आधारित बिंब में भव्य बन पड़ा है । यह अनुभव स्पृहणीय है (विशेषतः कल्पना प्रेमी कवि पंत के संदर्भ में) कि सहस्र फनवाले वासुकि के बिंब में निहित विराटता जीवन के संघर्ष और विकरालता को पूरी-पूरी अभिव्यक्ति देती है । इस तरह एक ही बिंब में विराटता और जटिलता की सामान्यतः दुर्लभ अवस्थिति का अनुभव रचना के स्तर पर तोषजनक है । परिवर्तन के विकराल रूप से उत्पन्न कवि-मानस का क्षोभ के अंत तक इतना परिव्याप्त हो जाता है कि छंद की अन्तिम दो पंक्तियाँ सिर्फ एक-एक शब्द से निर्मित करता है -

वक्र कुण्डल
दिङ् मंडल ।

यह साभिप्राय है। पूरे छंद का समग्र प्रभाव इस तरह की योजना के बिना अक्षत रह पाता, यह कहना कठिन है।

मानवीय जीवन की बेबसी और अधूरेपन तथा उससे उत्पन्न विषाद का अंकन सामान्यतः पंत की मुख्य रचना-भूमि नहीं है, किन्तु परिवर्तन में उन्होंने इसका संस्पर्श किया है :

जगत की शत कातर चीत्कार
बेधतीं बधिर, तुम्हारे कान।
अश्रु-स्रोतों की अगणित धार
सींचतीं उर पाषाण।

यहाँ " बधिर " के प्रयोग में सिर्फ परिवर्तन की निष्ठुरता नहीं व्यंजित हुई है, बल्कि मानवीय जीवन की असहाय स्थिति, विडम्बना और अधूरेपन को भी अभिव्यक्ति देता है। अन्त तक कवि तत्व-बोधपरक परिवर्तन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण अपना लेता है। संघर्ष को काफी दूरी तक ले जाकर अन्त में संतुलन प्राप्त करने की कोशिश अनेक छायावादी कविताओं में देखी जा सकती है। अन्तिम छंद में कवि परिवर्तन की " महाम्बुधि " के रूप में विराट् परिकल्पना करता है, जिसकी लहरों के रूप में सारे लोकों का अस्तित्व है। दो पंक्तियाँ देखी जा रही है

अहे महाम्बुधि। लहरों से शत लोक, चराचर
क्रीड़ा करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर,

संतुलित और उदात्त संवेदना के अनुरूप इस चित्र में विराटता है, जटिलता नहीं। यों " परिवर्तन " कविता भावना-गरिमा के कारण भव्य बन पड़ी है, लेकिन अतिचित्रण का दोष उसमें भी है। एक ही भाव-परिवर्तन का आतंककारी स्वरूप - तरह-तरह की कल्पना-छवियों में उभरता है। इसीलिए कभी-कभी अनुभव संवेदन न्यून लगने लगता है।

अपने अगले काव्य-संकलन " गुंजन " (१९३२ ई०) में पंत ने " पल्लव " के-से अप्रस्तुत-विधान का बाहुल्य नहीं प्रदर्शित किया है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने काव्यभाषा में कोई महत्वपूर्ण गुणात्मक

उन्मेष भरा है। प्रणय-स्थितियों के अंकन में उनकी काव्यभाषा प्रसाद तथा निराला की तरह मांसल और प्रखर नहीं हो सकी है, जिससे एक संभ्रम या सम्मोहन की अनुभूति के अलावा कोई विशिष्ट, भरी-पूरी सार्थकता नहीं निखरने पाती, "भावी पत्नी के प्रति" कविता में भाव और अभिव्यक्ति की सुकुमारता और तरलता की एक समय बहुत सराहना हुई थी, लेकिन गहराई में टटोलने पर उसमें प्रगाढ़ता नहीं नज़र आएगी। पंत ने प्रणय-दृश्य के अंकन में भाषा का जिस तरह से उपयोग किया है, उससे लगता है, जैसे कवि में भाषा को प्रयासपूर्वक काव्यात्मक बनाने का आग्रह है, प्रणयानुभव की उष्णता, मादकता, ताज़गी को भाषा में रमाने-कराने की ललक उतनी नहीं है। इसीलिए इन चित्रों में वायवीयता अधिक है - पंत की ही कल्पना-अनुसार उन्हें इस तरह समझा जा सकता है :

न जिसका स्वाद-स्पर्श कुछ ज्ञात ;
कल्पना हो, जाने, परिमाण ?
प्रिये, प्राणों की प्राण !

इस वायवीयता के फलस्वरूप उनके शब्द रूढ़ और नवोन्मेष से शून्य लगते हैं। छायावाद की शब्द-रूढ़ि बनाने में महादेवी के साथ पंत के प्रयोगों का विशिष्ट योग है।

इस दृष्टि से 'गुंजन' की 'आज रहने दो यह गृह काज' कविता अपवाद है। यहाँ शरीर सान्निध्य के लिए आकुलता (और वह भी घरेलू वातावरण के परिप्रेक्ष्य में) का बहुत निश्छल-आत्मीय रचाव भाषा में हुआ है -

आज रहने दो यह गृह-काज,
प्राण! रहने दो यह गृह-काज।
आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास,
प्रिये, लालस-सालस वातास,
जगा रोओं में सौ अभिलाष!

यहाँ 'जाने कैसी वातास' ही सारे परिवेश को मादक, प्रीतिकर इतना ताज़ा बना देती है। प्रिया से की मनोहारी यह मनुहार कवि द्वारा मँजी-सँवरी खड़ीबोली

में रच-बस गई है ।

पंत के नारी-सौन्दर्य के चित्र संश्लिष्ट नहीं कहे जा सकते । नियोजित प्रतीकों में अतिरिक्त आवश्यकता से सौन्दर्य के प्रति (प्रणय की भाँति ही) एक विस्मय-भाव या अधिक-से-अधिक आदर-भाव उपजता है । रीतिकालीन एकान्तिक स्थूल शृंगार-दृष्टि के मुकाबले यह भले ही शुरू-शुरू में आकर्षक लगता रहा हो, लेकिन कविता में अनुभव का भावना से तादात्म्य नहीं हो पाता ।" रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम " की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं :

तारिका सी तुम दिव्याकार
    चन्द्रिका सी फैलार ।
प्रेम-पंखों में उड़ अनिवार
    अप्सरी सी लघु भार,
स्वर्ग से उतरी क्या सोद्गार
    प्रणय-हंसिनि सुकुमार ?
हृदय-सर में करने अभिसार,
    रजत-रति, स्वर्ण-विहार ।

यहाँ सिवाय एक उदात्त-मूल भाव के (जिसका कविता में [illegible] कवि की तन्मयी प्रकृति से कोई संबंध नहीं) किसी भी तरह संश्लिष्ट नारी मूर्ति नहीं बन पाती । जिस तरह से प्रेयसी के आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व का बखान करने के बाद कवि जिस तरह से कविता का समापन करता है, वह उसकी जटिलता शून्य रचना-प्रक्रिया का परिचायक है :

कल्पना तुममें एकाकार,
कल्पना में तुम आठों याम ;
तुम्हारी छवि में प्रेम-अपार,
    प्रेम में छवि अभिराम,
अखिल इच्छाओं का संसार
स्वर्ण-छवि में चिर मधु अविराम,
बन गई मानसि ! तुम साकार
    देह की रक्त-प्राण !

ऐसा लगता है , कवि प्रेयसी का स्मरण कर रहा है। सारी विडम्बनाओं की परिणति " देह दो एक प्राण " की तान में होती है, जो संवेदना को परंपरित बनाती है ।

" बादल " की तरह " चाँदनी " पर भी पंत ने कविताएँ लिखी हैं । " गुंजन " में " चाँदनी " शीर्षक से दो कविताएँ हैं । एक में " चाँदनी " कवि की कल्पना में ढलकर रुग्णा जीवन-बाला बन जाती है । चाँदनी के लिए यह कल्पना बिल्कुल नयी और अनोखी ज़रूर है -

जग के दुख-दैन्य शयन पर
यह रुग्णा जीवन-बाला
रे कब से जाग रही ,वह
आँसू की नीरव माला ।

पीली पड़, निर्बल ,कोमल
कृश-देह-लता कुम्हलाई ;
विवसना, लाज में लिपटी,
साँसों में शून्य समाई ।

अपनी सारी नवीनता के बावजूद चाँदनी का यह चित्र अपने अटपटेपन से न मूल्य-संवेदना में कोई गुणात्मक उन्मेष करता है, न ही अनुभावन-क्षमता बढ़ाता है ।

" चाँदनी " पर लिखी गई दूसरी कविता खण्ड-खण्ड कल्पनाओं का समुच्चय है, एक कल्पना -चित्र का दूसरे कल्पना-चित्र से कोई संबंध नहीं है । कवि अपनी कल्पनात्मक उड़ान के बहुविध रूप इस कविता में दिखाता है, लेकिन कोई तारतम्य न होने से चाँदनी की सुस्पष्ट रूप-छवि या भावछवि निर्मित नहीं होने पाती । कहीं तो वह मनुष्य रूप में परिकल्पित है :

दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छवि की छुईमुई-सी
मृदु मधुर-लाज से मर-मर ।

और कहीं लघु परिमल का घन या सुख का उमड़ा सागर बन जाती है :

वह लघु परिमल के घन-सी
जो लीन अनिल में अविकल
सुख के उमड़े सागर-सी
जिसमें निमग्न उर तट-स्थल ।

" गुंजन " की " एक तारा " और " नौका - विहार " कविताओं के प्रकृति पर्यवेक्षण अपने भाषिक विधान में पंत की तीव्र प्रखर दृश्य संवेदना का बढ़िया उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।" एक तारा " में आरंभिक सांध्यकालीन वातावरण का अंकन बिल्कुल नए ढंग से हुआ है । सांध्यकालीन निस्तब्धता की व्यंजना ध्वनियों के कोमल संदर्भ में यों उभरती है :

पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर ।

सांध्यकालीन नीरव वातावरण में वायु की मर्मर ध्वनि के थम जाने की अपने में सूक्ष्म-सुकुमार स्थिति को कवि ने एक उत्कृष्ट ध्वनि-बिंब में ही विकसित किया है -" ज्यों वीणा के तारों में स्वर । " पहली पंक्ति का लाक्षणिक ,कोमल प्रयोग विशेष रूप से द्रष्टव्य है, जो कवि की सूक्ष्म कल्पना का प्रतिफलन है ।

आगे कवि ने वर्ण-परिवर्तन की प्रक्रिया को संवेद्य बनाने के लिए एक सर्वथा मौलिक बिंब रचा है :

लहरों पर स्वर्ण-रेख सुन्दर पड़ गई नील,ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर-शिशिर से डर ।

संध्या समय सूर्य की स्वर्णिम किरणों का नील पड़ जाना स्वाभाविक प्रक्रिया है, इसी के स्तर पर उसके उन्मुक्त अंकन के लिए कवि ने वर्ण-परिवर्तन संबंधी मानवीय जीवन से जुड़ा एक बिंब प्रस्तुत किया है - ज्यों अधरों पर / अरुणाई प्रखर-शिशिर से डर ।"

शिशिर में अधरों की अरुणाई में नीलापन आ जाता है, यही

स्थिति संध्याकाल में प्रारंभ होते अंधकार को गृहण करती पृथ्वी की स्वर्ण-रेख की है। वर्ण-रूपान्तरण का यह संवेद्य चित्र बेजोड़ है।

पंत की आकांक्षा दृश्य-संवेदना का सही ढंग से पोषण करती है, लेकिन जब अस्तित्व की जटिलता या व्यक्तिगत द्वन्द्व जैसी किसी भावभूमि में वह प्रविष्ट होती है, तो व्यक्तित्व नहीं रच पाती। "एक तारा" इसका अच्छा उदाहरण है। संध्याकालीन आवश्यक शांत पृष्ठभूमि के चित्रण के बाद कवि जब तारे का अंकन शुरू करता है, तो उसे एकाकी व्यक्ति का प्रतीक मान लेता है :

क्या उसकी आत्मा का चिर-धन स्थिर, अपलक नयनों का चिन्तन ?
क्या खोज रहा वह अपनापन ?
दुर्लभ रे दुर्लभ अपनापन, लगता यह निखिल विश्व निर्जन
वह निष्फल इच्छा से निर्धन।

एकाकीपन का अंकन आगे होता चलता है। यह ठीक है कि यह अंकन अपने में असंगत नहीं है, लेकिन साथ ही दृश्य-संवेदना वाले अंकनों की तरह इसमें कोई गुणात्मक रचाव नहीं पाया जाता। कविता की परिणति तो कवि दार्शनिक रीति से करता है, तारा उसे अंततः ब्रह्म-स्वरूप लगता है। दार्शनिक परिणति से उद्भूत गरिमा का विभ्रममय मोह कविता के समूचे प्रभाव को क्षति पहुँचाता है।

पंत की चित्रात्मक कल्पना का दूरगामी निर्वाह "नौका विहार" की कविता में हुआ है। प्रारंभ में गंगा का तापस-बाला के रूप में मानवीकरण हुआ है। नौका-विहारकाल में दृष्टि केन्द्र में टिके एक-एक प्राकृतिक दृश्य को कवि चित्रात्मक रीति से अंकित करता है, लेकिन 'एक तारा' की ही तरह इस कविता की भी नियति है। अंत तक पहुँचते - पहुँचते कवि दार्शनिक निष्कर्ष निकालने लगता है -

ज्यों ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार।
इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम।

इस तरह का विशुद्ध प्राकृतिक कविता से निर्मित होनेवाला प्रभाव विखण्डित हो जाता है। प्रकृति-चित्रण और दर्शन के भावना-स्तर एक दूसरे में घुल-मिल नहीं पाते, फलतः कविता समग्र रूप में नहीं बन पाती।

" गुंजन " के बाद पंत का काव्य-स्वर बदल जाता है, उनकी चेतना क्रमशः वस्तुवादी हो जाती है। " युगांत " (१९३६ ई०) " युगवाणी " (१९३९ ई०), " ग्राम्या " (१९४० ई०) की रचनाएँ इसका प्रतिनिधित्व करती हैं। " युगांत " में स्वयं पंत जी के अनुसार " पल्लव " की कोमल कला का अभाव है।[१] 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र' कविता में प्रखर-ओजस्वी चेतना कवि की ओजपूर्ण भाषा में व्यक्त होती है। जागरण की कामना सूक्ष्म-उदात्त होकर मुखरित हुई है :

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
हे त्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण।
हिमताप पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीतराग, जड़, पुराचीन ।।

कुछ समीक्षकों ने बहुत स्थूल ढंग से इस तरह की कविताओं को छायावादी काव्य से अलग प्रगतिवादी काव्य की कोटि में स्थान दिया है। इस तरह का वर्गीकरण छायावाद को केवल प्रेम और सौन्दर्य की कविता मानने वाली दृष्टि का प्रतिफलन है। कोमलकांत पदावली के अलावा छायावाद के अन्तर्गत भावना के अन्य स्रोत भी उन्मुक्त हुए हैं, जो वे नज़रअंदाज़ कर देते हैं। यहाँ जीर्ण पत्र का प्रतीकात्मक प्रयोग और उसका दूरगामी निहित छायावादी सूक्ष्म काव्य-बोध का परिचायक है। " जीर्ण पत्र " पुरातन विचारधारा और सांस्कृतिक रूढ़ियों का सटीक प्रतिनिधित्व करता है। आगे कवि ने इन बूढ़े पत्तों को " मृत विहंग " संबोधन देकर उनके जीवन की व्यर्थता, रचना-शून्यता का बहुत मार्मिक भाव-चित्र प्रस्तुत किया है :

निष्प्राण विगत युग! मृत विहंग!
जग-नीड़ शब्द औ' श्वास हीन,

---

१) युगांत - दो शब्द

च्युत, अस्त-व्यस्त पत्रों से तुम
झर-झर अनंत में हो विलीन ।

इस तरह का प्रखर क्रान्ति-भाव पंत की सामान्यतः सुकुमार-भावनीय कल्पना के परिप्रेक्ष्य में विशिष्ट स्थान रखता है । क्रान्ति के कठोर आवाहन के पश्चात् नये सृजन की चाह ताजे, मांसल शब्दों में विवृत हुई है :

कंकाल-जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर, पल्लव लाली ।
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली ।

" युगवाणी " में संकलित " दो लड़के " शीर्षक कविता की भाषा में निहित बोलचाल का प्रवाह छायावादी काव्यभाषा के एक विशिष्ट मोड़ की ओर संकेत करता है । बोलचाल में भी कविता का सम्प्रेषण हो सकता है, इसका अच्छा प्रमाण " दो लड़के " से मिलता है । पासी के बच्चों का अंकन करने के लिए कवि में जो आत्मविश्वास और आत्मीयता होनी चाहिए, वह इस कविता में देखी जा सकती है :

मानव के बालक हैं ये पासी के बच्चे,
रोम रोम मानव, सांचे में ढाले सच्चे ।

सामान्यतः कोमल- सुकुमार चित्रण के लिए प्रसिद्ध पंत इन दो लड़कों के अंकन में एकदम बोलचाल की भाषा पर उतर आते हैं :

मेरे आँगन में (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे-से लड़के आ जाते हैं अक्सर,
नंगे तन, गदबदे, साँवले, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले पर फुर्तीले ।

" ग्राम्या " अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वाकांक्षी प्रयत्न है । यद्यपि " निवेदन " में कवि ने कहा है -" इनमें पाठकों को ग्रामीणों के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है । ग्राम-जीवन में मिलकर, उसके भीतर से ये अवश्य नहीं

लिखी गई है।" -- लेकिन कविताओं को पढ़ने के बाद इस बात से सहमत नहीं हुआ जा सकता। ग्रामीण जीवन की करुणा और विडम्बना कविताओं में मुखरित हुई है। विशेषतः "वे आँखें" जैसी कविता का शब्द-चित्र बहुत मार्मिक बन पड़ा है। किसान की अगाध विवशता, भयावह ध्वनिमाला उसमें से विवृत होती है :

अंधकार की गुहा-सरीखी
उन आँखों से डरता है मन,
भरा दूर तक उनमें दारुण
दैन्य दुःख का नीरव रोदन।

अधिकतर या कहें निरंतर दुःखों के थपेड़े सहते-सहते एक स्थिति ऐसी आती है, जिसमें भयानकता का समावेश होता है ; जीवन अपने नग्न-कठोर रूप में एकदम भयावह लगने लगता है। यहाँ "अंधकार की गुहा" जैसी विशिष्ट मानचित्र कठोर-जीवन का निर्मम साक्षात्कार कराता है।" विज्ञापन " जैसे सामान्यतः व्यावसायिक सन्दर्भ वाले, गद्य शब्द को पंत विशिष्ट संदर्भ में प्रयुक्त कर अभिराम बना दिया है, जो इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है :

मानव के पाशव पीड़न का
देतीं वे निर्मम विज्ञापन !

मानव की शोषण-वृत्ति पर इतना तीखा- और वह भी संयम की मुद्रा बाँधते हुए - व्यंग्य "विज्ञापन" प्रयोग के माध्यम से कवि कर पाया है। इस तरह पूरी कविता स्वाधीन किसान के आहत स्वाभिमान, पूँजीभूत असहायता का संवेदनशील अंकन करती है।

"ग्राम्या" की "ग्रामयुवती" शीर्षक कविता में गाँव की युवती का जो चित्र पंत उतारते हैं, वह विशिष्ट है। रूप का चपल-मनोहर रूप यहाँ देखा जा सकता है। ग्राम युवती की कुंठितता शून्य जीवन- स्थिति उल्लसित शब्दों और थिरकती छंद गति से रूपाय हो जाती है :

उन्मद यौवन से उभर
घटा सी नव आषाढ़ की सुन्दर,

अति श्याम वरण

श्लथ मंद चरण,

इठलाती आती ग्रामयुवति

वह गजगति

सर्प डगर पर ।

ग्राम्य यौवन का कुंठा-उन्मुक्त अंकन विशिष्ट भंगिमा से संपन्न भाषा में हुआ है । शब्दों की संयोजना से संपृक्ति इस रूप में देखी जा सकती है कि उनमें से उल्लास का उत्स फूटा पड़ रहा है। पंत के वायवीयता-प्रधान पूर्ववर्ती सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रों के बीच यह तरल-स्वच्छ सौन्दर्यांकन उल्लेखनीय है :

सरकाती पट

खिसकाती लट

शरमाती झट

वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट ।

हँसती खलखल

अबला चंचल

ज्यों फूट पड़ा हो स्रोत सरल

भर फेनोज्ज्वल दशनों से अधरों के तार

पंत ने धोबियों और चमारों के नाच चित्र भी कविता में उतारने की कोशिश की है । काव्य-विषय बनाने के ये बढ़िया और साहसिक प्रयास है ।" चमारों का नाच " यों प्रस्तुत किया गया है :

अ र र र

मचा खूब हुल्लड़ हुड़दंग

धमक धमाधम रहा मृदंग

उछल कूद, बकवाद, झड़प में

खेल रही खुल [illegible] उमंग

यह चमार चौपाल का ढंग ।

व्यक्तित्व में उनको आत्मसात् करने में नहीं रमती ।

लेकिन इसकी क्षति-पूर्ति प्रस्तुत कलात्मक रूप में उनकी सूक्ष्म-सुघड़ चाक्षुष कल्पनाएँ करती हैं । यह ठीक है कि पठित सूक्ष्म अनुभव संश्लेषण युक्त कवि के भाषा-प्रयोग द्वारा अर्थ के स्तर पर गतिशील और उन्मुक्त बनकर कविता को समृद्ध बनाए रखता है । चाक्षुष कल्पना-प्रधान छवियाँ भले अर्थ के स्तर पर इतनी उन्मुक्तता और संचरणशीलता नहीं रखतीं, फिर भी वे कविता का एक विशिष्ट पक्ष हैं और कवि की कल्पना-सामर्थ्य की पहचान हैं । पंत की चित्रात्मक कल्पना में निहित पैनापन और सजीवता के उदाहरण-स्वरूप " एक तारा " में सांध्य प्रकृति का चित्र देखने योग्य है । जहाँ उन्होंने जन-संवेदना को स्वर दिया है, वहाँ भी शब्द-चित्रों की अवस्थिति है । ग्रामयुवती का चंचल तरल अंकन, धोबियों और चमारों के नृत्य का आत्म विस्मयपरक चित्रण, ग्रामश्री के धरती वैभव की अभिव्यक्ति, बूढ़े भिखारी का अपूर्व रेखांकन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है । नगण्य सामान्य का उन्मुक्त निश्छल जीवन इन शब्द-चित्रों में ही मुखरित हो उठा है ।

अध्याय - ६

महादेवी की काव्यभाषा

महादेवी की काव्यभाषा आरम्भ से अन्त तक एकरूप और एकरस रही है, लेकिन यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रसाद की एकरूप और एकरस भाषा से उद्भूत होनेवाली जटिल-सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं की संभावनाएँ नहीं विवृत करती महादेवी की काव्यभाषा में कुल मिलाकर समूचा अनुभव रचने का आग्रह कम है, समग्र प्रभाव निर्मित करने की आकुलता थोड़ी है ; रूपकात्मक और चित्रात्मक छवियों को उकेरने तथा कलात्मक मृदुता (निराला की तरह कलात्मक उद्भावना के स्तर पर नहीं) को बार-बार आँकते रहने की प्रवृत्ति अधिक है ।

छायावाद के कवि-चतुष्टय में निराला और पंत भाषा के अनेक स्रोतों को उन्मुक्त करते चलते हैं । यह दूसरी बात है कि निराला हर स्रोत को उन्मुक्त करने में समान और सहज रूप से बढ़ा रहे हैं । दोनों कवियों की काव्यभाषा कविता के विविधरूपा विधान का निर्वाह करती है । एक ओर " जुही की कली ", " बादल-राग ", " संध्या सुन्दरी ", " स्नेह -निर्झर बह गया है "(निराला), " प्रथम रश्मि ", " बादल, " मौन निमंत्रण " (पंत) जैसी कविताएँ हैं, दूसरी ओर " तुलसीदास ", " राम की शक्ति-पूजा ", " सरोज-स्मृति "(निराला) , " परिवर्तन " (पंत) की तरह लम्बी, सुगठित कविताएँ हैं। प्रसाद की स्थिति भिन्न और अपेक्षाकृत अधिक वास्तविक है, क्योंकि उनमें भाषा के एकरूप को भी तरह-तरह के विधानों के अनुरूप ढालने की अद्भुत क्षमता है, यद्यपि मूलतः उनके विधानों में वही गीतात्मक सूक्ष्मता है । इसी कारण 'आह रे, वह अधीर यौवन " जैसी तीव्र-प्रखर, मांसलगीत सृष्टि के साथ वे " कामायनी " जैसा लम्बा, जीवित उन्मेष से युक्त प्रबन्धात्मक काव्य रचने में सफल हुए । महादेवी की भाषा का समरस रूप विधान के क्षेत्र में वैविध्य अथवा किसी तरह के परिवर्तन की गुंजाइश नहीं रख पाया है । वही गीतात्मक विधान पहले संकलन

"नीहार" (१९३० ई०) में मिलता है, उसी का पोषण अन्तिम संकलन "दीपशिखा" (१९४२ ई०) तक होता गया है। यह दूसरी बात है कि रचना-प्रक्रिया उत्तरोत्तर प्रौढ़ और सशक्त होती गई है।

"नीहार" से ही यह बात स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी में अलंकरण की प्रवृत्ति अधिक है, वेदना की कविता के स्तर पर विश्वसनीय बनाने की ओर रुझान नहीं है। इसीलिए महादेवी की कविता में मार्मिकता के बजाय भावकीयता अधिक है। छायावादी काव्यभाषा को लाक्षणिक बनाते चलने की प्रवृत्ति पंत और महादेवी में सर्वाधिक है। "नीहार" से अनेक उद्धरण इस स्थापना की पुष्टि स्वरूप रखे जा सकते हैं -

निशा को धो देता राकेश / चाँदनी में जब अलकें खोल ('विसर्जन')
नीरव नभ के नयनों पर / हिलती है रजनी की अलकें ('अतिथि से')
रजनी ओढ़े जाती थी / झिलमिल तारों की जाली।
उसके बिखरे वैभव पर / जब रोती थी उजियाली ('मेरा राज्य')

यह लाक्षणिकता किसी सार्थक भाव-छवि या कि रूप-छवि की - की रचना करने पर महत्वाकांक्षी कोशिश बन जाती है, जैसे उषा की स्वरूप-छवि आँकते हुए प्रसाद इस तरह की लाक्षणिकता का निर्माण करते हैं-

वेसी की माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए

अंतिम दो चरणों में निकट लाक्षणिकता है, लेकिन वह चमत्कार के स्तर पर नहीं है। मधु-ऋतु (वसंत) की मादकता, सरसता और ताज़गी का अनुभव उषा के अनुभव से एकरूप हो जाता है, आँखों में पानी भरे हुए प्रयोग की लाक्षणिक भंगिमा शालीन और मृदु मादन-भाव का संपादन करती है। महादेवी की लाक्षणिकता कथन-भंगिमा से आगे नहीं बढ़ पाती है। "नीहार" के इन उद्धरणों में कहने का नया ढंग भर है, उक्ति वैचित्र्य का निर्वाह है, भिन्न प्रभाव उत्पन्न करनेवाली नवीन कल्पनात्मकता है (उसके बिखरे वैभव पर / जब रोती थी उजियाली,)। संवेदना को नवीनीकरण से भरने की कोशिश नहीं है।

कुछ-कुछ इसी भावभूमि पर प्रसाद की " विषाद " कविता का यह पंक्ति देखें, जिसमें छंद की टूटी-उखड़ी गति के कारण अपेक्षाकृत अधिक प्रभावोत्पादकता है :

किसी हृदय का यह विषाद है
छेड़ो मत यह सुख का कण है
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ
करुणा का विश्रान्त चरण है ।

" नीहार " में महादेवी की प्रक्रिया विकसन की नहीं है, पुनरावृत्ति की है। यह प्रवृत्ति गीत की सूक्ष्म प्रकृति से मेल नहीं खाती । आगामी संकलनों में भी यही प्रवृत्ति है, भले ही उनमें उत्तरोत्तर रचना के स्तर पर कसावट लायी गयी हो ।" नीहार " की " नीरव भाषण " कविता इस संदर्भ में उल्लेख्य है। कवयित्री मौन की अभिव्यक्ति के संबंध में कहना चाहती है, लेकिन वह निराला की " मौन " कविता (परिमल) की तरह कोई वैशिष्ट्य अनुभूति नहीं उपलब्ध कर पाती, सिर्फ एक बात को कहने के लिए नये ढंग अपनाती है । यहाँ दो अंश दिये जा रहे हैं :

जहाँ बनती पतझार वसन्त
जहाँ जागृति बनती उन्माद
जहाँ मदिरा देती चैतन्य
भूलना बनता मीठी याद
जहाँ मानस का मुग्ध मिलन
वहीं मिलता नीरव भाषण ।

जहाँ विष देता है अमरत्व
जहाँ पीड़ा है प्यारी मीत
अश्रु हैं नयनों का शृंगार
जहाँ ज्वाला बनती नवनीत,
मृत्यु बन जाती नवजीवन
वहीं रहता नीरव भाषण ।

अनुभव से सार्थक सर्जनात्मक रिश्ता जुड़ने पर अपनी सपाटता में, अतीव तीव्रता में, इस तरह की कविता उपजती है, पूरे-का-पूरा उद्धृत किया जा रहा है :

जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग,
आँसू लेते वे पद पखार ।
हँस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसंत
लुट जाता चिर संचित विराग,
आँखें देतीं सर्वस्व वार ।

यहाँ सचमुच उपलब्ध उल्लास नहीं है, बल्कि मन की साध के पूरा होने की संभावना से उद्भूत उल्लास है और यही इसकी विशिष्टता है। इस संभावना-जन्य उल्लास का निर्माण केवल अनावश्यक स्फीति-मुक्त शब्दावली करती है, जो लय के घुले-मिले रूप में से अधिक भास्वर बन पड़ा है।

" नीहार " के बाद " रश्मि " (१९३२ ई०) महादेवी का दूसरा काव्य-संकलन है। यहाँ भाषा और संवेदना का कोई ऐसा रचाव नहीं मिलता, जिससे कहा जा सके कि " नीहार " की तुलना में " रश्मि " महत्त्वपूर्ण गुणात्मक विकास की सूचना देती है। उनकी भाषा में अभी वह ऊर्जा नहीं आ सकी है, जो रहस्यात्मकता और वेदना के प्रति निष्ठा को किसी सार्थक रचनात्मकता से संयुक्त कर सके। " स्मृति " कविता का उपक्रम तो ऐसा लगता है, जैसे कवयित्री कोई जटिल गंभीर बात कहने की कोशिश कर रही है, अन्तर्मन को समझने का साहस कर रही हो। लेकिन पूरी कविता का अनुभव सरलीकृत होकर रह जाता है, उसका सम्पूर्ण

प्रभाव बहुत फीका पड़ता है। शुरू में कुछ उम्मीद बँधती है -

कहाँ से आई हूँ कुछ भूल
कसक-कसक उठती सुधि किसकी ?
रुकती-सी गति क्यों जीवन की ?
क्यों अभाव छाये जाता,
विस्मृति सरिता के कूल ?

लेकिन बाद में परंपरित कथन-प्रणाली और चिर-परिचित प्रतीकात्मकता अभिज्ञान के अनुभव को बिल्कुल जड़ कर देती है। एक जैसा रहा था रहा है -

किसी अनुपम धन का हूँ कण,
टूटी स्वर-लहरी की कम्पन,
या ठुकराया गया धूलि में
हूँ मैं मन का फूल ।

रूपकात्मकता के पूर्ण निर्वाह की चिन्ता छायावादी कवियों में महादेवी को रहती है। रश्मि की " सुधि " कविता इसका अच्छा उदाहरण है। प्रिय की स्मृति से उद्भूत प्रतिक्रियाओं को वसंत के रूपक में अभिव्यक्ति मिली है। सुधि और वसंत के पक्षों का ब्यौरेवार उल्लेख करने में इस बात का सूचक है कि महादेवी स्मृति के अनुभव को कविता के स्तर पर अधिकाधिक हरा-भरा, गतिशील बनाने की कोशिश न करके भाषा के रूप-रंग की सजावट में क्रियाशील रहती है।

" रश्मि " में महादेवी की प्रतीक-योजना, शब्द-चयन सब इस कोटि का है, जो वैविध्यमयी कल्पना का संवहन कर सके। इसी कारण (और यह बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य है) मनःस्थिति की जटिलता को रूपायित करने का उपक्रम करने के बावजूद महादेवी कवि-मानस की कल्पनात्मक-छवियाँ पर निर्मित करती है, जैसे " उलझन " कविता में। प्रिय को न प्राप्त कर सकने के मूल में जो विवशताएँ हैं, वे वास्तविक जीवन-स्थितियों से नहीं सिरजी हुई हैं, वे तो निश्छल, कारुणिक कल्पनाओं का प्रतिफलन हैं, जैसे इस अंश में -

फिर कैसे उनको पाऊँ ?
मैं आँसू बनकर मेरे,
इस कारण ढुल ढुल जाते,
इन पलकों के बंधन में,
मैं बाँध बाँध पछताऊँ ।

यहाँ प्रिय का व्यक्तित्व संपूर्ण प्रकृति में समाहित होकर व्यापक हो जाता है । पर यह प्रक्रिया किसी तरह की सघनता से संपृक्त होती, तो बड़ी उपलब्धि संभव होती । प्रकृति-संबंधी बिंब माला का एक अंश इस प्रकार है -

मेघों में विद्युत -सी छवि
उनकी बनकर मिट जाती,
आँखों की चित्रपटी में,
जिसमें मैं आँक न पाऊँ ।

" नीरजा" (१९३४ ई०) में पिछले दो संकलनों की तुलना में कहीं महत्त्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन परिलक्षित किया जा सकता है । भावनाओं में कुल मिलाकर संयम का समावेश है । भाषा में अभिजात गरिमा का विकास देखा जा सकता है ।" नीरजा" से यह बात खुलकर सामने आ जाती है कि महादेवी की कविता रूपकात्मक अधिक है, बिंबात्मक कम । इसे यों कहना चाहिए कि रूपकात्मकता उनकी काव्यभाषा की विशेषता है । नीरजा में बड़ी संख्या इस तरह के सांगरूपकपरक गीतों की है (गीत सं० १२, ३६, ५३, ६८, ९९, १०१, १०४)। " मैं बनी मधुमास आली" गीत में महादेवी अपने जीवन पर मधुमास का आरोप करती है । प्रारंभ से ही प्रस्तुत और अप्रस्तुत की परंपरा से चले आए हुए दो तत्त्व आगे बढ़ते जाते हैं, जिसके अन्तर्गत विषाद की करुण यामिनी है, सुधि के ऋतु का वर्णन है, पुलक की चाँदनी की छिटकन है, दृगों के आँसुओं की कालिन्दी की उमड़न है, इत्यादि । इस तरह दोनों पक्षों के व्यौरेवार अंकन की कोशिश में मधुर विषाद से उसकी सार्थकता का आह्वान कविता के कुल में संश्लिष्ट होकर रस-मग्न नहीं पाता । यह तो है मधुमास का रूपक,प्रसाद के एक प्रणय-गीत में वर्षा का चित्र है, लेकिन उनकी प्रक्रिया महादेवी से भिन्न है । महादेवी की

उत्कृष्ट कविताओं से आ रहा है कि नहीं समझा जा सकता, अपेक्षाकृत इससे स्तर की कविताएँ का तथ्य ही पहचान और वस्तुनिष्ठ ढंग से कराती है। महादेवी का यह गीत अपनी प्रकृति में मध्यकालीन भाषा-प्रयोग के कारण ब्रजभाषा काव्य की वासकसज्जा नायिका जैसी रूप-छवि ही निर्मित कर पाता है, विभावरी का रूप कवियत्री के अनुभव-बोध से किसी नवीन स्तर का संस्पर्श कर सका हो, ऐसा कुछ नहीं है। पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -

जो विभावरी
चाँदनी का अंगराग,
माँग में सजा पराग,
रश्मि-तार बाँध मृदुल
चिकुर-भार री !
ओ विभावरी !

कहीं-कहीं शिल्पकारिता से मुक्त होने पर महादेवी ने अत्यन्त सुकुमार ढंग से तीव्र प्रखर भावना को अभिव्यक्त किया है -

तुम्हें बाँध पाती सपने में !
तो चिर जीवन-प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में !

एक क्षण की भले ही वह सपने का क्षण क्यों न हो और यही तो उसकी विशिष्टता - सार्थकता सारे जीवन को किस तरह कहीं गहरे जाकर रसात्मक बना देती है, यह इस सुन्दर गीत में देखा जा सकता है। इसी कारण यह प्रतीकात्मकता अतिरंजना की सूचक नहीं प्रतीत होती, अपितु " उस छोटे क्षण " की अद्भुत रचनात्मक ऊर्जा का बोध कराती है -

पावस-घन सी उमड़ बिखरती,
शरद-निशा सी नीरव घिरती,
धो लेती जग का विषाद
ढुलते लघु आँसू-कण अपने में !

* " नीरजा " का एक अन्य गीत " तुम हो वाणी में गाऊँ ", भी ढंग की आत्मीय

अनुभव का पोषण करता है। इस गीत की संगीतात्मकता संवेदना को अधिक आत्मीय और सुकुमार बनाती है -

तुम सो जाओ मैं गाऊँ।
मुझको सोते युग बीते
तुमको यों लोरी गाते,
अब आओ मैं पलकों में
स्वप्नों से सेज बिछाऊँ।

गीत के अन्तिम अंश में 'अंजन' प्रयोग प्रेमास्पद के प्रति निष्ठा को घरेलू ढंग की रागात्मकता प्रदान करता है -

पथ की रज में है अंकित
तेरे पदचिन्ह अपरिचित,
मैं क्यों न इसे अंजन कर
आँखों में आज बसाऊँ।

आँखें शरीर का सब से मूल्यवान् तथा सुकुमार अवयव है। उनमें प्रिय के पद-चिन्ह का अंजन लगाने की लालसा न केवल इस अंतिम अंश को, अपितु सम्पूर्ण गीत को भावपूर्ण गरिमा से संपृक्त कर देती है। ऐसे गीतों की संगीतात्मक लय संवेदना को प्रभावित करती चलती है।

'सांध्यगीत' (१९३६ ई०) महादेवी का चौथा काव्य-संकलन है रचना-प्रक्रिया का चौथा याम। चूँकि वे शुरू से ही अपनी संवेदना में एकरूप रही हैं, इसीलिए 'सांध्यगीत' में भी एक से प्रतीक और चित्रों की नियोजना है, एक ही बात को विविध संदर्भों में रखकर कहने की प्रवृत्ति है। एक महत्वपूर्ण गुणात्मक विकास इस रूप में परिलक्षित किया जा सकता है कि महादेवी की चित्रात्मक क्षमता 'सांध्यगीत' में अधिक सूक्ष्म, कलात्मक और प्रौढ़ हो गई है, चित्र-निर्माण में वे अधिक सचेष्ट तथा उत्साही बन गई हैं।" शशि से छू अमर सुहाग भरी" का यह अंश द्रष्टव्य है -

अरुणा ने यह सीमन्त-भरी
संध्या ने दी पद में लाली,

मेरे अंगों का आतपन
करती राका रच दीवाली ।
जग के दागों को धो धोकर
होती मेरी छाया गहरी ।

लेकिन अधिकांश गीतों की प्रभाव-छवि एक सी ही रही है-वही सरलता से परिकल्पित साधकता के अनुभव को अधिकाधिक प्रतीकों, चित्रों के माध्यम से ग्राह्य बनाने की कोशिश यहाँ भी है । कहना न होगा कि काव्यभाषा के इस रूप में अर्थों की गूँज-अनुगूँज व्युत्पन्न करने की क्षमता विकसित नहीं हो पाई है । कभी-कभी कवयित्री के मानस में कोई जटिल रचनात्मक उन्मेष होता है, लेकिन द्विपदीय अंकन का मोह उसको पूर्णतः प्रस्फुटित नहीं होने देता । "सांध्य-गीत " का पहला गीत " प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन " इस कथन का अच्छा उदाहरण है । कवयित्री के मानस में एक युग्मात्मक अनुभव जन्म लेता है, तभी तो वह संध्याकालीन चित्र में से अपने जीवन के किसी सत्य को उरेहना चाहती है -

प्रिय । सांध्य गगन
मेरा जीवन ।
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया-सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन ।

लेकिन इस तरह के द्विपदीय अंकन की जो पद्धति कवयित्री प्रारंभ करती है, उसका अंत तक निर्वाह करने की चिन्ता उसे इतना ग्रस्त कर लेती है कि वह संध्या के अनुभव से अपने जीवन के रहस्य को संपृक्त कर अर्थ के स्तर पर उसे घुलनशील बनाने की कोशिश नहीं कर पाती । इसीलिए यह कहना पड़ता है कि महादेवी में अलंकरण है, रंगों की सजावट है; पर उदासी का अनुभव रचाने-पचाने की पूरी क्षमता ऐसी प्रक्रियाओं से नहीं होती ।

" दीपशिखा "(१९४२ ई०) महादेवी का अब तक प्रकाशित अन्तिम काव्य-संकलन है । अन्त तक उनकी काव्यभाषा की भंगिमाएँ बदली नहीं हैं —

एक से प्रतीक, विशिष्ट ढंग के शब्द, लयात्मकता की वही चिर-परिचित प्रणाली। नाम के अनुरूप "दीपशिखा" में दीपक का प्रतीक अधिकांशतः नियोजित हुआ है। लेकिन उल्लेखनीय यह है कि जिस साधना का महादेवी बार-बार कथन करती हैं, जिस दृढ़ता-मनस्विता को स्वर देती हैं, वह कहीं भी स्तर पर कोई वास्तविक दबाव नहीं पैदा करती। उनकी भाषा उनकी आत्म-स्थितियों में रची-बसी नहीं प्रतीत होती, वेदना के माध्यम से सार्थकता उपलब्ध करने का उनका दृढ़ निश्चय अनुभव की श्रेणी में नहीं आ पाता, क्योंकि वह शब्दों की अतिशय कलात्मकता में एक विभ्रम उपजाता है। इस विश्लेषण के आलोक में महादेवी के वेदना-भाव पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा की गई कड़ी टिप्पणी की सच्चाई खुलकर सामने आती है: " इस वेदना को लेकर उन्होंने (महादेवी ने) हृदय की ऐसी-ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं, जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं, और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता।[१] शब्दों की सतर्क, सुरुचि-सम्मत नियोजना कवयित्री के व्यक्तित्व में रची-बसी कलात्मक सुघरता की द्योतक है, जिसमें जीवन-स्थितियों की व्यापक विषमताओं, जटिलताओं से उपजी प्रतिक्रियाओं को झेलने की सामर्थ्य नहीं है।" पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला " का एक अंश द्रष्टव्य है -

घेर ले छाया अमावस,

आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा घन

और होंगे नयन सूखे

तिल बुझे औ' पलक रूखे,

आर्द्र चितवन में यहाँ

शत विद्युतों में दीप खेला।

महादेवी ने मृत्यु की परिकल्पना अपनी रूप में की है, जो " सू फूल भरा ही आया " गीत में देखी जा सकती है। इस विशिष्ट-सहिष्णु संवेदना

---

१) हिन्दी साहित्य का इतिहास,पृ० ६२८

की अनुभव के स्तर पर गुणात्मक नवोन्मेष देने के लिए महादेवी जननी और बालक के बिंब को अधिक रागीय ऊष्मात्मकता से युक्त रख सकती थी, किन्तु अनावश्यक प्रतीक-मोह उनको ऐसा नहीं करने देता । फलतः मृत्यु के साथ जीव के नये, रचनात्मक संबंध का अनुभव संश्लिष्ट न बनकर कवयित्री का एक स्थूलीकृत दृष्टिकोण मात्र रह जाता है । प्रतीकों में अपनी बात कहने की प्रवृत्ति महादेवी को इस तरह के प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है -

पापों ने पथ के कण मदिरा से सींचे
कंपन आँधी ने फिर-फिर था दृग-मींचे
आलोक-तिमिर ने क्षण का बिछाया

इस तरह एक के बाद एक प्रतीकों का क्रम चलता रहता है, फलस्वरूप जननी और बालक का बिंब (" ओ चंचल जीवन-बाल ! मृत्यु-जननी ने अंक लगाया") कवयित्री के दृष्टि-केन्द्र में जम नहीं पाता ।

घटा के मिट चलने में महादेवी साधना की गरिमा को एक बार फिर नये सिरे से स्वर देना चाहती है, लेकिन यहाँ फिर सांगरूपक का अतिरिक्त निर्वाह - और वह भी स्थूल चित्र के स्तर पर - मिट चलने में निहित त्याग, वेदना, समर्पण-भाव की मिली-जुली अनुभूतियों को पीछे कर देता है, वे उभरने ही नहीं पातीं । एक अंश प्रस्तुत है -

मिट चली घटा अधीर
चितवन तम-श्याम रंग
इन्द्रधनुष भृकुटि-भंग
विद्युत का अंगराग
दीपित मृदु अंग-अंग,
उड़ता नभ में अधीर मेरा नव नील चीर ।

महादेवी की काव्यभाषा के अध्ययन से एक रोचक निष्कर्ष यह निकलता है कि उनकी वेदना में तन्मयता और विह्वलता कम है । भाषा के रूप-रंग के प्रति अतिरिक्त रूप से सजगता की प्रवृत्ति अपने में इस तथ्य का प्रमाण

है कि उनकी वेदना साक्षात् उपलब्ध की गई अनुभूति है, स्वयं का जीवन चूँकि जटिलता से छनकर नहीं सामने आया है, अतः उनकी वेदना-साधना में प्रायः वैसी गहराई नहीं नज़र आती। भावना में वह योजना नहीं है, जिससे वेदना से प्राप्त आनन्द का लक्ष्य हुए वेदना का सातत्य हुआ, तीव्र अनुभव हो सके।

महादेवी का काव्य प्रायः संगीतमय रहा है, अतः खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा में अधिकाधिक माधुर्य लाने के लिए उन्होंने ब्रजभाषा के शब्दों का भी यत्र-तत्र पुट दिया है। "पाती", "बाती", "आली", "मनुहार", "आँसू", "पखारि", "दुलराने", "रीति ("नीरजा"), "निठुर", (दीपशिखा") जैसे न जाने कितने प्रयोग उनकी कविताओं में देखे जा सकते हैं।

महादेवी के प्रतीकों में अस्पष्टता बहुत पाई है। प्रतीक बहुधा वास्तविक जीवन-संवेदन से संपृक्त नहीं लगते, इसीलिए उनकी कविता में रहस्यवादिता की झलक जगह-जगह दिखलाई देती है। प्रतीकों और रूपकों की अधिकता में सार्थक-संश्लिष्ट बिंब-सृष्टि संभव नहीं हो पाती, जो अनुभव को उत्तरोत्तर सघन बनाये। वस्तुतः महादेवी की काव्यभाषा चित्रात्मकता और संगीतात्मकता का पोषण करती है और इस स्तर पर छायावादी काव्यभाषा की एक प्रमुख प्रवृत्ति को उभारती है।

अ ध्या य - ७

छायावादी काव्यभाषा का स्वरूप

आधुनिक युग में खड़ीबोली हिन्दी में रचनात्मक व्यक्तित्व उद्भूत होता है छायावादी काव्यभाषा के साथ। इसके पूर्व द्विवेदीयुगीन-छाया शून्य, इतिवृत्तात्मक खड़ीबोली रचना के स्तर पर ब्रजभाषा की तुलना में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं कर सकी थी। अतएव छायावादी कवियों के लिए यह ज़रूरी हो गया कि वे सर्जनात्मकता को नये ढंग से अभिव्यक्त करने की दिशा में प्रयत्नशील काव्यभाषा की खोज करें। रीतिकालीन स्थूलता के स्तर पर उतर आये हुए एकांतिक शृंगार-काव्य और द्विवेदीयुगीन अनुभव से असंपृक्त अतएव अविश्वसनीय प्रतीत होनेवाले सुधारात्मक काव्य की भावभूमियों से अलग नयी रचनात्मक भावभूमि पर छायावादी काव्य का विकास हुआ, जिसे बहुत बार समीक्षकों ने प्रतिक्रिया-शृंखला के रूप में देखा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि यही रही - "यह पहले कहा जा चुका है कि छायावाद का चलन द्विवेदी-काल की रूखी इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था।"[1]

यह ठीक है कि कोई साहित्यिक धारा निरपेक्ष रूप से नहीं विकसित होती, अपने पूर्ववर्ती और समकालीन वातावरण से किसी-न-किसी स्तर पर प्रभावित अवश्य होती है। छायावाद के संबंध में स्वयं महादेवी वर्मा ने कहा है : "उस युग (द्विवेदी युग) की कविता की इतिवृत्तात्मकता इतनी स्पष्ट हो चली कि मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म भावनाएँ विद्रोह कर उठीं।"[2] इसके बावजूद यह ध्यान रखना चाहिये कि केवल प्रतिक्रिया या विद्रोह स्वरूप कोई साहित्यिक धारा रचनात्मक नहीं होती। छायावाद के संदर्भ में प्रतिक्रिया या विद्रोह-भाव का उल्लेख करते समय यह नहीं भूलना चाहिये कि यह छायावादी कविता की सर्जनात्मकता की

---

१) हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६८४

२) आधुनिक कवि, पृ० ६

उत्तेजना भर देनेवाला था, बाकी इसी तरह यह भी मानना कि छायावादी काव्यभाषा पूर्ववर्ती, बँधे-बँधाये रूढ़िग्रस्त नियमों के विरुद्ध प्रतिक्रिया मात्र थी, उसके माध्यम से विकसित हो रही हिन्दी काव्यभाषा की नयी और महत्त्वाकांक्षी जीवनी-शक्ति को उचित महत्त्व न देना है।

छायावादी काव्यभाषा की सामान्य व्याख्या अब तक - चाहे सोच-समझ कर या अनायास भाव से - पंत और महादेवी की काव्यभाषा के आधार पर की जाती रही है। इस रूप में इन दोनों कवियों की काव्यभाषा छायावादी काव्यभाषा का प्रतिनिधित्व मानी जाती जाती है। परिणामत: छायावादी काव्यभाषा के केन्द्र में चित्रात्मकता, लाक्षणिकता और खण्ड चित्रों को रखा जाता रहा है। यह व्याख्या आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास से ही आरंभ हो जाती है, "चित्रभाषा या अभिव्यंजन-पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया, तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया। इस बँधे हुए क्षेत्र के भीतर चलनेवाले काव्य ने "छायावाद" का नाम ग्रहण किया।"[1]

चित्रात्मकता छायावादी काव्यभाषा की एक प्रमुख विशिष्टता है-इसमें दो राय नहीं हो सकती, लेकिन उसे केन्द्र में रखकर की जानेवाली छायावादी काव्यभाषा की व्याख्या किसी तरह के ठोस निष्कर्ष नहीं प्रस्तुत कर सकती। छायावादी काव्यभाषा का मुखर स्वरूप उसके माध्यम से देखा-समझा नहीं जा सकता। काव्यभाषा अपने श्रेष्ठ अंशों में अर्थ-संश्लेषण है और छायावादी काव्यभाषा के लिए भी, उसके सर्जनात्मक अंशों में, यह बात सही है। इस तथ्य का अनुभव आश्चर्य की सृष्टि करता है कि अर्थ-संश्लेषण की प्रक्रिया का साक्षात्कार छायावादी कविता से पूर्व हिन्दी कविता में, खास तौर से द्विवेदी-युगीन काव्य में प्रायः नहीं संभव होता।

पहली बार हिंदी कविता में छायावाद के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार, आत्म-दान, आत्म-प्रवंचना के अनुभवों को खुलकर स्थान मिला है। इसी तरह, उदासी के अनुभव में एक विशिष्ट तरह का सुख हो सकता है, जो बहुत

---

१) हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६८२

रखता है, विरोध के स्तर से अलग हट कर, रचाया-पचाया जा सकता है, इसका आस्वादन प्रसाद और निराला की कविताएँ कराती हैं। इस दृष्टि से ये दोनों कवि हिन्दी पाठक और समीक्षक की अनुभावन-क्षमता को प्रशस्त करते हैं। इस स्थापना की व्यावहारिक पुष्टि " विषाद ", " के कब कहाँ भुलाया देकर ", " मधुर माधवी संध्या " में जब रागारुण रवि होता अस्त (प्रसाद)", " ठूँठ ", " स्नेह -निर्झर बह गया है " (निराला) जैसी अनेक कविताएँ करती हैं। इस तरह के अभूतपूर्व और जटिल-सूक्ष्म अनुभवों को अर्थ के स्तर पर संचरणशील बनाने की कोशिश में संलग्न हिन्दी काव्यभाषा एक अछूते आयाम का संस्पर्श करती है, क्योंकि किसी नये और साहसिक अनुभव-खण्ड को साक्षात्कृत कर सकने का अर्थ ही है - भाषा के किसी अछूते और रचनात्मक स्तर का संस्पर्श।

हिन्दी कविता की इस नई धारा को " छायावाद " नाम से अभिहित कर भले ही आलोचकों ने उसका परिहास किया हो, उसके केन्द्र में अस्पष्टता-दोष भी रहा हो ; लेकिन छायावादी काव्यभाषा की अर्थ-प्रक्रिया का विश्लेषण करते समय यह " छायावादी " नाम एक आश्चर्यपूर्ण सार्थकता का एहसास कराता है - अर्थात् वह काव्यभाषा, जिसके अन्तर्गत अर्थ की अनेक छायाओं का पोषण हुआ हो। अपने 'यथार्थवाद और छायावाद " शीर्षक निबन्ध में " छायावाद " शब्द की व्याख्या करते हुए प्रसाद ने " छाया " को मोती के भीतर निहित रहनेवाली कांति की तरलता से संयुक्त किया है, जो उनकी सूक्ष्म और साथ-ही सटीक कला-दृष्टि का सूचक है : " अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आंतरस्पर्श करके भाव-समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति-छाया कान्तिमयी होती है।"[१]

छायावादी काव्यभाषा के गठन में आधुनिकता की ओर झुकाव की प्रवृत्ति है, यह उसके सूक्ष्म-जटिल बिंब-प्रयोगों के माध्यम से देखा जा सकता है। मध्यकालीन काव्य अपनी वर्णनात्मकता किसी-न-किसी स्तर पर अलंकरण की अर्थ-छवियों में व्युत्पन्न करता था। अलंकार के रूप में सांगरूपक का निर्वाह करने की प्रवृत्ति वहाँ अधिक थी, वस्तुसत्य को संप्रेषण के स्तर पर बिंब में पर्यवसित करने की रचनाधर्मिता कम थी। तुलसीदास जैसे श्रेष्ठ रचनाकार "रामचरितमानस

---

१) काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० १२६

के अयोध्याकाण्ड में (जो वस्तुत: 'रामचरितमानस' का हृदय है) बहुत दूर तक सांगरूपकों से काम लेते रहे हैं । इसे मध्यकालीन काव्यभावना की एक सीमा और विशिष्टता भी - माना जा सकता है । छायावादी कवियों में महादेवी को भी सांगरूपक का विधान बहुत प्रिय रहा है । इसी कारण वे अपने गीतों में सांगरूपक की आयोजना, पूरे विस्तार में, सुरुचि-बोधक तल्लीनता के साथ करती हैं । " मैं बनी मधुमास आली ", " जो विभावरी " , जैसे अनेक गीत इस संदर्भ में रखे जा सकते हैं । महादेवी के समानधर्मा कवि प्रसाद , पंत और निराला सांगरूपक के लम्बे और ब्यौरेमूलक विधान को तोड़कर बिंब-रचना की ओर उन्मुख होते हैं ।" इस उन्मुखता से छायावादी कवियों की, संप्रेषण के प्रति, विशेष चिन्तना का बोध होता है । प्रसाद का प्रसिद्ध गीत " आह रे, वह अधीर यौवन " सांगरूपक के बिंब में पर्यवसान का बढ़िया उदाहरण है । पर्यवसान की इस प्रक्रिया के कारण ही यौवन की उद्दाम वासनाओं का अनुभव अर्थ के स्तर पर सुकुमार और कलात्मक रह सका है । कवि ने अनावश्यक सज्जा नहीं की है । पंत ने 'परिवर्तन' के भयावह विराट् रूप के ओजस्वी अंकन के लिए मूर्छित धूम, वासुकि सहस्र फन, के रूपकों की आयोजना की है, लेकिन अपने संप्रेषण को उन्मुक्त करने के लिए वे प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सांगोपांग अंकन न कर इन रूपकों के बिंब में संक्रमित करने का प्रयत्न करते हैं ।

छायावादी काव्य के बिंब प्रायः प्रस्तुत और अप्रस्तुत के मेल को लेकर निर्मित हुए हैं, लेकिन विशिष्टता यह है कि यहाँ से आरंभ करके उनमें अर्थ-संश्लेषण की प्रक्रिया क्रमशः संभव होती है । कवि अप्रस्तुतों का इस तरह से संयोजन करता है, जिससे उनके विभिन्न तत्वों में द्वन्द्वात्मकता उभरी रहे, अलंकार के अप्रस्तुत-विधान की तरह वे एक और निर्दिष्ट अर्थ न उद्घाटित करें, वरन् बिंब में अनुस्यूत विभिन्न तत्वों के रचाव को स्थान दें ।" कामायनी " से एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

और उस मुख पर वह मुस्कान
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम ।

यहाँ श्रद्धा की मुस्कान प्रस्तुत है और अरुण की अम्लान किरण अप्रस्तुत है, लेकिन पाठक की दृष्टि इस भेद पर नहीं टिकने पाती (वस्तुतः कवि इसकी गुंजाइश ही कहाँ रख रहा है ?)। इसके कारण की खोज करना समीचीन होगा। अरुण की एक अम्लान किरण का अप्रस्तुत कई तत्वों से बना है - किरण अम्लान है, रक्त-किसलय पर विश्राम कर रही है और थका गई है। यहाँ भावतुल्य संवेदन उतना नहीं है, जितना श्रद्धा की मुस्कान में निहित ताज़गी, मोहकता, सौन्दर्यजन्य अकातरता को अर्थ के स्तर पर विकासशील बना रहने देने की रचनाधर्मिता। इसी मोड़ पर आकर यह अप्रस्तुत रचनात्मक काव्यभाषा में पर्यवसित हो जाता है, लक्षण के अप्रस्तुत-विधान की औपचारिक शिल्पकारिता से एकदम अछूता।

प्रस्तुत-अप्रस्तुत के भेद को छोड़कर सामान्य वर्णन में से ही बिंब रचने की प्रक्रिया साधारणतः छायावादी काव्यभाषा की नहीं है। बाद के नये कवियों ने - विशेषतः समसामयिक कवियों ने - काव्यभाषा के इस अपेक्षाकृत अधिक सृजनशील रूप से अपनी ऐतिहासिक दिखलाई है, पर उसके बावजूद प्रसाद और निराला के काव्य में इस तरह की बिंब-प्रक्रिया की शुरुआत देखी जा सकती है। प्रसाद की "प्रलय की छाया" में कृष्णा गुर्जरिका का बिंब इसी कोटि का है जिसके माध्यम से अपमानिता कमला की पश्चातापपूर्ण मनःस्थिति को कवि रूपायित करता है। "स्नेह-निर्झर बह गया है" में निराला वर्णन के स्तर पर एकदम आत्मीय भाव से टिके आम की सूखी डाल के बिंब में से अपने जीवन की रचनात्मक पूर्णता और अवसाद को एक साथ विवृत करते हैं।

इस प्रसंग में छायावादी काव्यभाषा के एक अन्य वैशिष्ट्य का उल्लेख करना संगत होगा। वह है - उसकी अप्रस्तुत योजना की सूक्ष्म प्रकृति। पंत के काव्य से तो एक लंबी सूची इसके उदाहरण-स्वरूप रखी जा सकती है। बहुत बार ऐसा लगता है कि कवि पंत केवल कल्पना-वैचित्र्य का प्रदर्शन कर रहे हैं, जैसे "छाया" कविता के ये अप्रस्तुत -

१) पतझर की परछाईं-सी

२) दुर्बलता-सी, अँगड़ाई-सी

रही । कल्पना -भीरु, चित्रभीरु, शब्दभीरु - जिन्हें पंत की कविताओं के विश्लेषण क्रम में देखा गया है - उसे रूढ़ बनाने में बहुत हद तक जिम्मेदार है । इसी तरह महादेवी की रचना के स्तर पर अपार अविश्वसनीय लगनेवाली प्रतीक-योजना से पाठक का तादात्म्य नहीं हो पाता । निराला भाषा की काव्यमुक्ति के लिए बराबर प्रयत्नशील रहे हैं । "कुकुरमुत्ता" की रचना के माध्यम से उन्होंने हिन्दी भाषा की एक अपेक्षा नयी क्षमता का उद्घाटन किया है । उन तक की छायावादी कविता में विशेषतः "गीतिका" के गीतों में - दुरूह और अस्पष्ट प्रयोग मिलते हैं । इस दृष्टि से प्रसाद की स्थिति विशिष्ट है । उनका शायद ही कोई प्रयोग छायावाद की शब्द-रूढ़ि बनाने में सहायक हुआ हो । उनमें भी कुछ कठिनता और दुरूहता है, वह उनके सम्मिश्रित और शीघ्र पकड़ में न आ सकनेवाले जटिल सूक्ष्म अनुभवों के साक्षात्कार की प्रक्रिया में इतनी रच-बस जाती है कि पाठक न समझ में आनेवाली कोई शिकायत नहीं कर पाता ।

भाषा यथार्थ से अलग होकर सार्थक चेष्टाएँ नहीं कर पाती । वह स्वायत्त तथा व्यक्तित्ववान तभी हो पाती है, जब उसमें यथार्थ के प्रति कुछ प्रतिक्रिया का योग हो । छायावादी काव्यभाषा युग के बदलते यथार्थ के साथ जूझने में असमर्थ हो गई, इसीलिए बाद के कवियों को नये सिरे से यथार्थ की व्याख्या करने के लिए भाषा में नई भंगिमाएँ गढ़नी पड़ीं । या यों भी कह सकते हैं कि भाषा रूढ़ हो जाने के कारण इन कवियों को भी युग का यथार्थ ही अग्राह्य हो गया । और तब नयी भाषा-संस्कार की खोज आरंभ हुई ।

छायावादी कवियों ने शब्दावली की दृष्टि से तत्सम को केन्द्रीय महत्त्व दिया है। तद्भव और देशी शब्दावली उनके शब्द-कोश में प्राय: महत्त्वहीन रही है । इसके मूल में बहुत कुछ पुनर्जागरणकालीन सांस्कृतिक चेतना हो सकती है । एक कारण यह भी हो सकता है कि छायावादी कवियों ने तद्भवों की सर्जनात्मक संभावनाओं पर गौर नहीं किया था, बोलचाल की भाषा में भी संप्रेषण हो सकता है इसकी दूरी तक वे नहीं सोच सके । बाद में निराला के उन्मुक्त-विद्रोही कवि व्यक्तित्व ने इस मूल प्रश्न पर अपने ढंग से सोचा-समझा, फलस्वरूप "कुकुरमुत्ता", "नये पत्ते" की रचना हुई । दूसरे छायावादी कवि पंत ने भी - न सही निराला जैसी मार्मिक क्षमता के साथ - बोलचाल से संप्रेषण विकसित करने की बात सोची।

" कुकुरमुत्ता " के भी पहले प्रकाशित 'ग्राम्या' इसका अच्छा उदाहरण है ।

छायावादी कवियों द्वारा संस्कृत शब्दों के प्रचुर प्रयोगों को लेकर श्री विजयदेव नारायण साही ने एक महत्वपूर्ण स्थापना रखी है : " छायावाद ने जिस तरह संस्कृत शब्दावली का प्रयोग किया, वह हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध है। साही जी के अनुसार " हिन्दी काव्यभाषा की केन्द्रीय शक्ति तुलसीदास और सूरदास की भाषा में है । "१

यह ठीक है कि हर भाषा की अपनी विशिष्ट प्रकृति होती है, जिसके अनुसार वह अनुभव-संवेदन को अपने व्यक्तित्व में रचा-पचा पाती है । उर्दू काव्यभाषा की शब्द-सुविधाओं पर आधारित चमत्कारिक और नफ़ीस भाव-संवेदना हिन्दी की व्यंजना-प्रधान काव्य भाषा में घुल-मिल नहीं पाती ।

लेकिन संस्कृत और हिन्दी भाषाएँ सांस्कृतिक दृष्टि से एक दूसरे से बिल्कुल निकट हैं, दोनों का केन्द्र मध्यदेश रहा है । अतएव हिन्दी काव्यभाषा में सर्जनात्मक संवरण के लिए अगर छायावादी कवियों ने संस्कृत शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया, तो वह असंगत नहीं कहा जा सकता । निराला ने सब से ज्यादा संस्कृत के वाङ्-तत्व को, उसके संगीत को, अर्थात औदात्य को हिन्दी में जुटाने की कोशिश की है ।" गीतिका " ," तुलसीदास" और " राम की शक्ति-पूजा" इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं । निराला के गीतों में, उनकी लंबी रचनाओं में जो एक भव्यता और उदात्तता है, उसके मूल में बहुत कुछ उनके संस्कृत प्रयोगों का हाथ है । फिर तुलसीदास और सूरदास ने - विशेषतः तुलसीदास ने - शुद्ध संस्कृत की अभिजात शब्दावली का भरपूर उपयोग किया है । यह अलग बात है कि मध्यकालीन भाषिक परंपरा के अनुसार उस शब्दावली का किसी सीमा तक अर्द्ध-तत्समीकरण किया गया हो -" अमिय मूरि मय चूरन चारू" जैसे प्रयोग इसी प्रकार के हैं, जहाँ 'अमिय ' अथवा" चारू" तद्भव नहीं, अर्द्धतत्सम रूप हैं ।

एक बात और है । तत्सम शब्दावली के माध्यम से सर्जनात्मकता को विकसित करने की दिशा में प्रयत्नशील छायावादी कवियों ने निःसन्देह ही कठिन-

---

१) हिन्दुस्तानी एकेडेमी के काव्यभाषा विषयक परिसंवाद-संगोष्ठी में पढ़े गये प्रथम भाषण : 'कौंडी का चौक और हिन्दी कविता की भाषा' से उद्धृत ।

"कुकुरमुत्ता" से भी पहले प्रकाशित 'ग्राम्या' इसका अच्छा उदाहरण है।

छायावादी कवियों द्वारा संस्कृत शब्दों के प्रचुर प्रयोगों को लेकर श्री विजयदेव नारायण साही ने एक महत्वपूर्ण स्थापना रखी है : "छायावाद ने जिस तरह संस्कृत शब्दावली का प्रयोग किया, वह हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध था। साही जी के अनुसार "हिन्दी काव्यभाषा की केन्द्रीय शक्ति तुलसीदास और सूरदास की भाषा में है।"[१]

यह ठीक है कि हर भाषा की अपनी विशिष्ट प्रकृति होती है, जिसके अनुसार वह अनुभव-संवेदन को अपने व्यक्तित्व में रचा-पचा पाती है। उर्दू काव्यभाषा की इसके मुहावरों पर आधारित चमत्कारिक और नफ़ीस भाव-संवेदना हिन्दी की व्यंजना-प्रधान काव्य भाषा में घुल-मिल नहीं पाती।

लेकिन संस्कृत और हिन्दी भाषाएँ सांस्कृतिक दृष्टि से एक दूसरे से बिल्कुल निकट हैं, दोनों का केन्द्र मध्यदेश रहा है। अतएव हिन्दी काव्यभाषा में सर्जनात्मक संचरण के लिए अगर छायावादी कवियों ने संस्कृत शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया, तो वह असंगत नहीं कहा जा सकता। निराला ने सब से ज्यादा संस्कृत के वाङ्-तत्व को, उसके संगीत को, उसके अर्थात औदात्य को हिन्दी में घुलाने की कोशिश की है। "गीतिका", "तुलसीदास" और "राम की शक्ति-पूजा" इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। निराला के गीतों में, उनकी ऊँची रचनाओं में जो एक भव्यता और उदात्तता है, उसके मूल में बहुत कुछ उनके संस्कृत प्रयोगों का हाथ है। फिर तुलसीदास और सूरदास ने - विशेषतः तुलसीदास ने - शुद्ध संस्कृत की अभिजात शब्दावली का भरपूर उपयोग किया है। यह अलग बात है कि मध्यकालीन भाषिक परंपरा के अनुसार उस शब्दावली का किसी सीमा तक अर्द्ध-तत्समीकरण किया गया हो - "अमिय मूरि मय चूरन चारू" जैसे प्रयोग इसी प्रकार के हैं, जहाँ 'अमिय' अथवा "चारु" तद्भव नहीं, अर्द्धतत्सम रूप हैं।

एक बात और है। तत्सम शब्दावली के माध्यम से सर्जनात्मकता को विकसित करने की दिशा में प्रयत्नशील छायावादी कवियों ने [illegible] से पाठक-

---

१) हिन्दुस्तानी एकेडेमी के काव्यभाषा विषयक परिसंवाद-गोष्ठी में पढ़े गये प्रपत्र भाषण : 'कोशों का बोझ और हिन्दी कविता की भाषा' से उद्धृत।

सम्मिश्रित अनुभवों की उपेक्षा है, प्रसाद की " कामायनी " और निराला का " तुलसीदास " इसके भव्य उदाहरण हैं । काव्यभाषा के इस आयाम का स्पर्श मध्यकालीन कवि नहीं कर सके हैं । वस्तुतः काव्यभाषा के निर्माण की प्रक्रिया में शब्द 'शब्द' न रहकर कवि का विशिष्ट प्रयोग बन जाता है । इस रूप में ये प्रयोग संस्कृत की शिष्ट क्लासिकल कविता में नहीं है । छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त होकर ये संस्कृत शब्द हिंदी काव्यभाषा के अपने प्रयोग हो गये हैं ।

हाँ, छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त संस्कृत शब्दावली वहाँ रूढ़ लगने लगती है, जहाँ वह यथार्थ के प्रति सही प्रतिक्रिया नहीं कर पाती अथवा अपनी अतिशय चित्रात्मकता की आवृत्ति करने लगती है । तब वह कला से कढ़ी दिखती है । " पल्लव " और " गुंजन " में संकलित पंत की कुछ कविताएँ महादेवी के अनेक गीत और निराला के अस्पष्टता-दोष पर उतर आए तत्समगीत (विशेषतः " गीतिका " के) इस संदर्भ में उदाहृत किए जा सकते हैं । यहाँ एक विचित्र कृत्रिमता और यान्त्रिकता की प्रतीति होने लगती है । शब्दों को प्रयत्नपूर्वक काव्यात्मक बनाने की प्रवृत्ति कविता नहीं रचती, काव्याभास निर्मित करती है ।

छायावादी प्रभाव-क्षेत्र के उत्तरवर्ती कवियों में रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, नरेन्द्र शर्मा प्रभृति के नाम लिये जा सकते हैं । ये कवि छायावादी काव्यभाषा को अर्थ के स्तर पर कोई गुणात्मक समृद्धि नहीं प्रदान करते, बल्कि कहना तो यह चाहिए कि छायावाद के कवि-चतुष्टय में से किसी जैसा भी व्यक्तित्व इनमें नहीं बन पाया है । हाँ, यह ज़रूर है कि सूक्ष्मता को क्रमशः वायवीयता का रूप देने की ओर बढ़कर छायावादी काव्यभाषा में इन कवियों ने मांसलता का प्रत्यारोपण किया है । विशेषतः अंचल के प्रयोग उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने यौवन की उद्दाम अनुभूतियों का खुलकर कथन किया है । यहाँ तक कि अक्सर यह खुलापन अर्थ के स्तर पर उन्मुक्तता और संवरणशीलता का प्रमाण न दे कर अधिकतया सस्ते ढंग के वासना-चित्र की रचना करने लगता है । " अपराजिता " का 'भर लो आज मतवालापन अधरों में तो सपनों की मधुशाली' गीत एक उदाहरण है । मितकथन की प्रणाली का अंचल में प्रायः अभाव है, इसीलिए यौन अनुभूतियाँ फैलकर रचना के स्तर पर विश्वसनीय नहीं हो पाती । कल्पनात्मक संयम-भरी काव्यभाषा का

अनिवार्य गुण है - अंचल की कविताओं में पूरी तौर पर निर्वाह नहीं हो पाता ।

" चित्ररेखा " में रामकुमार वर्मा ने छायावाद के प्रिय वर्ण्य चाँदनी रात के परिवेश को मधुर जीवन बना दिया है :

यह ज्योत्स्ना तो देखो, नभ की
बरसी हुई उमंग
आत्मा-सी बन कर छूती है
मेरे व्याकुल अंग ।
आओ चुम्बन -सी छोटी है यह जीवन की रात ।

यहाँ विशिष्ट प्रयोग तो है - " आत्मा " और " चुम्बन " । ज्योत्स्ना का आत्मा बनकर व्याकुल अंगों को छूना ऐन्द्रिय ताजगी को एक आत्मीय गंभीर अनुभव का रूप दे देता है । इसी तरह " चुम्बन " सी छोटी रात " प्रयोग के द्वारा कवि ऐन्द्रिय ताजगी में निहित प्रखरता और तीव्रता का सटीक रूपायन करता है । ये दोनों अमूर्त बिंब छायावाद की सूक्ष्म कला-चेष्टा का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

भगवती चरण वर्मा की कविताओं में रूमानी मस्ती ज़रूर है, लेकिन उसके माध्यम से कवि किसी रचनात्मक सार्थकता की उपलब्धि कर रहा हो, ऐसा नहीं लगता । प्रतीकों की नियोजना अधिक है, लेकिन छायावादी प्रतीक-योजना में नवोन्मेष लाने की प्रवृत्ति नहीं है । यह ज़रूर है कि उनकी काव्यभाषा में वायवीयता और अस्पष्टता नहीं है ।" मधुकण " संकलन में यह विशेषता देखी जा सकती है ।

नरेन्द्र शर्मा ने जगह-जगह आधुनिक मनुष्य की आंतरिक रिक्तता को उकेरने की कोशिश अपनी कविताओं में की है । प्रवास में मनु के माध्यम से विडंबनामयी शून्यता का उद्घाटन दुहरे बिंबों में किया है । दो उदाहरण रखे जा रहे हैं -

१) शून्यता का उघड़ा-सा राग
२) खोखली शून्यता में प्रति पद आकुलता अधिक कुलाँच रही ।

नरेन्द्र शर्मा ने एक नये ' कुंठना ' प्रयोग से आधुनिक जीवन की विराट् रिक्तता, दमघोंट एकरसता को विवृत किया है।उदाहरण ' घड़ी घड़ी गिन "

(" आधुनिक कवि " में संकलित) कविता का है :

कुछ हो न हो, दुर्घटना ही मेरे इस नीरस जीवन में ।

कवि दुर्घटना का जोखिम संवरण करने को तैयार है, क्योंकि एक-सा शून्यता का जीवन- बिताते-बिताते वह ऊब गया है । छायावादी काव्यभाषा में मानो बदलाव लाने की आकांक्षा भी यहाँ सांकेतिक रूप में देखी जा सकती है । आधुनिक रचना-प्रक्रिया के बीज इस तरह के प्रयोगों में मिल जाते हैं ।

छायावादी काव्यभाषा की जीवनी-शक्ति उसकी पुनर्जागरणकालीन चेतना से समग्र रूप में पूरी सम्पन्नता के साथ सुरक्षित हुई है, जिसे प्रतिनिधि छायावादी कवियों का " शक्ति-काव्य " माना जा सकता है । मध्यकालीन विशेषतः रीतिकालीन क्लिष्ट आलंकारिक काव्यभाषा का एकदम प्रत्याख्यान कर और द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता को पीछे छोड़कर अपनी ही सृजनात्मक प्रक्रिया को परिभाषित करने की महत्त्वाकांक्षी कोशिश छायावादी काव्यभाषा की गहरी जड़ों में रचनात्मक संसक्ति का प्रमाण है ।

अध्याय - ८

निराला की कविताओं का अध्ययन

("जुही की कली")

"जुही की कली" (१९१६ ई०) के माध्यम से हिन्दी कविता समग्र रूप में पहली बार अकुंठ उन्मुक्तता का अनुभव करती है - विशेषतः शृंगारिक कविता के संदर्भ में इस अकुंठ उन्मुक्तता का अनुभव और भी प्रीतिकर लगता है। छायावादी काव्यभाषा में अनुस्यूत होती गई और सघन अर्थ-छवियों का सम्यक साक्षात्कार "जुही की कली" कराती है। निराला ने इसकी रचना के माध्यम से हिन्दी कविता के संदर्भ में छंदमुक्त कविता में पहल की; अतएव यह रचना अपना ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती है।

जुही की कली" और मलयानिल के स्वच्छन्द शारीरिक व्यापार का अंकन कर कवि ने उन्मुक्त मानवीय प्रणय-व्यापार को स्वर दिया है। प्रणय-स्थिति के अंकन में इस तरह का वातावरण ताज़गी से भरपूर है :

> विजन-वन-वल्लरी पर,
> सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह -स्वप्न मग्न
> अमल-कोमल तनु तरुणी-जुही की कली,
> दृग बंद किये, शिथिल - पत्रांक में,

यहाँ "सुहाग-भरी", "स्नेह - स्वप्न मग्न", "अमल-कोमल-तनु-तरुणी" जैसे प्रयोग इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं कि जुही की कली का चित्रण ही कवि का मूल अभिप्रेत नहीं है, वह ऊष्मामय मानवीय संवेदन को व्यंजित करने का माध्यम भी है। बँगला पद-विन्यास से अनुप्राणित इस अंश में संस्कृत शब्दावली के बीच एक विशिष्ट प्रयोग कवि ने रखा है - "सुहाग-भरी", जो इस मानवीय ऊष्मा में गहरी आत्मीयता भर देता है -

आगे मलयानिल का चित्रण हुआ है:

वासंती निशा थी ;
विरह-विधुर प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल ।

अंतिम पंक्ति में एक प्रयोग मुक्त छंद की प्रकृति के अनुकूल एकदम अयाचित ढंग से कवि ने रखा है - " जिसे कहते हैं मलयानिल । बातचीत के ढर्रे का यह प्रयोग भाषा-मुक्ति के आरंभिक सिलसिले में उल्लेखनीय है ।

अभी एक स्मृति-चित्र आता है, जो प्रिया से बिछुड़े मलय के मानस में निर्मित होता है :

आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात
आई याद कांता की कंपित कमनीय गात,

लय का यह अकस्मात् परिवर्तन संयोगकालीन स्मृतिपरक संवेदना को अनुभव के धरातल पर विश्वसनीय बनाता है । इन तीन तीव्र-मुखर पंक्तियों में संयोगात्मक उत्तेजना की स्मृति बहुत जीवन्त बन पड़ी है । चाँदनी रात के लिए " चाँदनी की धुली हुई आधी रात " का प्रयोग गत्यात्मक वातावरण की सृष्टि करता है । इस मादक स्मृति से परिचालित मलय की सक्रियता को कवि शब्दों में यों उतारता है :

फिर क्या ? पवन
उपवन-सर-सरित् गहन गिरि कानन
कुंज-लता-पुंजों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली-खिली-साथ।

" उपवन-सर-सरित् की अबाध गति पवन की अदम्य उत्कण्ठा को रूपायित करती है । मलय के इस आवेगमय व्यापार को बंधन-विहीन छंद ही अभिव्यक्ति दे सकता था । छंद की ऊँची-नीची गति भी इस स्वच्छंदता के स्वरूप को आकार पहुँचाती । भाषा, छंद और संवेदना की परस्पर संश्लिष्ट प्रकृति का रहस्य

निराला ने शुरू में ही पहचान लिया था ।

इसी बात के दौरों में कवि ने काव्य में उद्दाम प्रणय-का केलीय चित्रांकन किया है, जो अपने सारे खुलेपन के बावजूद अश्लीलता का आभास नहीं होने देता -

> निर्दय उस नायक ने
> निपट निठुराई की
> कि झोंकों की झड़ियों से
> सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली
> मसल दिए गोरे कपोल गोल,
> चौंक पड़ी युवती -
> चकित चितवन निज चारों ओर फेर ,

प्राकृतिक व्यापार को प्रणय-व्यापार में समग्रतः रूपांतरित या कि संक्रमित कर सकने की यह क्षमता छायावादी काव्यभाषा में विकसित होती है, इसीलिये इस सारी प्रक्रिया को मानवीकरण भर न कहकर प्रकृति और जीवन का संश्लेषण कहा जायगा ।

यहाँ छंद-मुक्ति की प्रक्रिया संवेदना से आंतरिक स्तर पर जुड़ी हुई है या नहीं, यह प्रश्न विचारणीय है । निराला के संवेदनशील समीक्षक दूधनाथ सिंह ने छंद-मुक्ति की प्रक्रिया को बहुत स्थूल धरातल पर ही देखा है, तभी वे कहते हैं—"छंद से मुक्त हो जाने पर कविता अपनी छंदानुशासन की परंपरा से मुक्त हो सकती है, लेकिन भाव क्षेत्र से उसमें संवेदनागत मुक्तता कैसे आ जायगी ?[1]

विचार के इस धरातल पर तो छंद और संवेदना को अलग-अलग तत्व के रूप में मान लेना पड़ेगा, जिन्हें रचना की अपनी संश्लिष्टता में नहीं देखा-परखा जा सकता । वस्तुतः "जुही की कली" की मुक्त छंद-पद्धति भाव-मुक्ति से सीधे संबद्ध है, भावाभिव्यक्ति का स्वच्छंद प्रणय-व्यापार मुक्तछंद की रचना में सजीव,

---

१) निराला : आत्महंता आस्था, पृ० २०८

उन्मुक्त हो उठा है । निराला ने भाव और छंद की संपृक्त स्थिति को समझा है । "परिमल" की भूमिका में छंद-मुक्ति की प्रक्रिया को उन्होंने इसी बिन्दु से देखा है । इस पक्ष को थोड़ा विस्तार देते हुए यह सवाल उठाया जा सकता है कि क्या "जुही की कली" में निराला का भाषिक प्रयोग, उनका मुक्त छंद-विधान प्रणय के नये स्वर का संचारी करता है ? इस संदर्भ में पहले तो कवि की विशिष्ट रचना-प्रक्रिया को देखना होगा । पूरी कविता में जुही की कली और मलयानिल प्रतीक रूप में लिए जाकर फिर अपने में एक संश्लिष्ट बिंब विकसित करते हैं, जिसे कहीं बीच से तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता । उल्लेखनीय यह है कि संरचनागत यह लगाव परंपरित सांगरूपक के ढंग का नहीं है, क्योंकि तब तो प्रणयानुभव और शरीर सुखानुभव का एक साथ उन्मुक्त संचरण न हो पाता । प्रकृति और प्रणय के अनुभव यहाँ मात्र प्रस्तुत-अप्रस्तुत न होकर एक दूसरे से संश्लिष्ट हो गए हैं । "जुही की कली" या इस जैसी अपनी अन्य छोटी कविताओं की "संपूर्ण कला" का उद्घाटन निराला ने उचित ही किया है :" यह ऐसी रचना नहीं कि सूक्ति-रूप-खण्ड एक अंश उद्धृत किया जा सके । मेरी छोटी रचनाएँ (लीरिक्स) और गीत (सांग्स) प्रायः ऐसी ही हैं । इनकी कला इनकी संपूर्णता में है, खण्ड में नहीं ।"[1]

लेकिन दूधनाथ सिंह ने इस तरह की कविता को छंद-मुक्ति की कोशिश भर माना है, संवेदना का यहाँ कोई नवोन्मेष हुआ है, ऐसा वे नहीं मानते । उनके अनुसार "सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली", "मसल दिये गोरे कपोल गोल" या "बंद कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से / यौवन उभार ने" जैसी पंक्तियाँ नितान्त रीत्यात्मक हैं । मैथिली शरण गुप्त की "सखि, वे मुझसे कहकर जाते" के सामने ये पंक्तियाँ भले ही नयी हों - बिहारी, देव, घनानन्द की रचनाओं के आगे इनकी कोई अलग से विशिष्टता नहीं बतायी जा सकती ।[2]

वस्तुतः इस तरह से दो तीन पंक्तियाँ उद्धृत करके कोई संगत निर्णय नहीं किया जा सकता (स्मरणीय निराला का उपर्युक्त उद्धरण) । इस तरह की पंक्तियाँ हिन्दी के रीतियुगीन कविता में हैं, इसमें संदेह नहीं ।

---

१) वही, पृ० २७३
२) निराला : आत्महंता आस्था, पृ० २०८

लेकिन 'जुही की कली' की पूरी की एक भाव-प्रतिमा बनती है - सुकुमार-स्वच्छंद प्रणय का परिष्कृत चित्र-वह रीति-युग में नहीं। यहाँ शरीर-सुख के प्रति कैसी कुंठ भावना भी नहीं है। निराला की 'धारा' कविता ('परिमल' में संगृहीत) में दुर्दमनीय यौवन-आकांक्षा देखी जा सकती है :

बहने दो,
रोक-टोक से कभी नहीं रुकती है,
यौवनमद की बाढ़ नदी की
किसे देख झुकती है ?

इसका सटीक प्रतिनिधित्व करता है 'जुही की कली' का आख्यानिक। सम्पूर्ण कविता में आवेग, उत्तेजना, उन्माद की जो तीव्रता है, वह अपनी अखण्ड बिंब-प्रक्रिया में द्विवेदीयुगीन अति नैतिकता और रीतिकालीन चमत्कारपरक शृंगार-चित्रण से अलग धरातल पर विकसित है। रीतिकाल के कवित्त-सवैया -दोहा जैसे बँधे-बँधाये छंद में यौवन-जन्य आवेग और उन्माद का ऐसा बेलौस और स्वच्छ अंकन नहीं हो सकता था।

('संध्या-सुंदरी')

छायावादी काव्यभाषा का स्वरूप बनाने में 'संध्या-सुंदरी' (१९२१ ई०) जैसी कविताओं का विशिष्ट योग रहा है, जिसमें द्विवेदीयुग तक कुल मिलाकर इतिवृत्तात्मकता के सोपान पर आरूढ़ खड़ीबोली के संस्करण और परिष्करण की भरी-पूरी कोशिश है।

प्रकृति छायावादी कवियों का प्रिय विषय रही है - विशेषतः उनके प्रारंभिक रचना-काल में। प्रकृति में भी संध्या के प्रति अपेक्षाकृत सघन आकर्षण इन कवियों को रहा है - और प्रसाद तथा निराला ने तो उसमें है अपना रचनात्मक उन्मीलन भी किया है (द्रष्टव्य - 'विषाद' (झरना), 'मधुर

माधवी संध्या में एक रागात्मक कवि होता अस्त'(लहर)-प्रसाद ; 'संध्या-सुंदरी,' 'अस्ताचल रवि जल छलछल'(गीतिका) -निराला)। इसका कारण यही हो सकता है कि संध्या की प्रशांत-उदास भव्यता छायावादी कवियों के आत्मनिष्ठ व्यक्तित्व को गहरे में छूती है, इस प्रक्रिया में भावना की आंतरिक परतें खुलती हैं। यों खड़ीबोली कविता में छायावादी काव्य से पूर्व भी संध्या को बराबर काव्य-विषय बनाया जाता रहा है, पर वहाँ संध्या अनुभव नहीं बन पाती, कवि उसमें से अपनी रचनात्मक मुक्ति नहीं ढूँढ पाता। हरिऔध के 'प्रियप्रवास' में संध्या-संबंधी अनेक चित्र हैं। प्रसिद्ध पंक्तियाँ भी आरंभ की हैं -

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरु-शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।

यहाँ संध्या के ब्यौरे हैं, पर यह चित्र प्रकृति के प्रति कवि की किसी अनुभवपरक प्रतिक्रिया को नहीं उभारता। इसके बाद 'संध्या-सुंदरी' का सांध्य-चित्र खड़ीबोली के बिंबात्मक विकास का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसमें एक संश्लिष्ट चित्र रचने की कोशिश विद्यमान है :

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुंदरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे

कवि आसमान से उतरती परी के रूपक में संध्या की परिकल्पना कर उसी बिंब को विस्तार देता है, जिसमें सौन्दर्यात्मक चित्र-योजना है, लेकिन यह विशिष्टता अनदेखी नहीं की जा सकती कि परी के अप्रस्तुत का सांगरूपक की ब्यौरेवार वर्णन-प्रणाली के ढंग पर निर्वाह नहीं किया गया है, जैसा कि महादेवी के एक रजनी-गीत ('धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी') में देखा जा सकता है। एक बार परी का उल्लेख कर निराला अपने दृश्य-विधान में

फिर रम जाते हैं और विषयनीय वर्णन से तटस्थता की यह प्रवृत्ति ही उनके संध्या-चित्र को स्वच्छ-तटस्थ बनाये रखती है ।

आगे कवि ने संध्याकालीन नीरवता, उदासीनता, छायामयता, सूक्ष्मता को या यों कहें कि संध्या के अमूर्त छायामय व्यक्तित्व को एक संश्लिष्ट और कल्पनात्मक चित्र में उतारा है :

उदासता की भी-लता
किन्तु कोमलता की वह कली
सखि नीरवता के कंधे पर डाले बाँह
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली ।

इन्हीं सूक्ष्म ऐन्द्रिक विशेषताओं से भी निराला ने संध्या को मानवीय ऊष्मा से संयुक्त कर दिया है, संध्या के मौन की व्यंजना के लिए तीसरी पंक्ति का विशिष्ट प्रयोग "सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह" मानवीय संवेदना का समावेश कर देता है, संध्या अनुभूत दृश्य-चित्रण नहीं रह जाती । प्रकृति-चित्र और मानवीय बिंब की घुली-मिली स्थिति ऐसी रचनाओं में देखी जा सकती है । इस बिन्दु पर दूधनाथ सिंह का यह कथन संगत नहीं लगता– "स्वयं जुही की कली" या "संध्या-सुंदरी" की भाषिक संरचना छायावादी है और ये किसी खास विषयगत नवीनता की कविताएँ नहीं हैं । "धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी" और "संध्या-सुंदरी" की "सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह" की रूपकात्मकता में कोई विशेष फर्क नहीं है । सखी का प्रसंग ही रीतिकालीन है ।"

एक तो संध्या के संदर्भ में इस तरह का सूक्ष्म मानवीय गुणों से समन्वित संश्लिष्ट-सुकुमार चित्र अपने में नया है, फिर सखी के उल्लेख-मात्र से रीतिकालीन चित्र-संस्कार नहीं बनता, और उस पर भी सखी नीरवता की । दूसरे अपनी यत्किंचित् रूपकात्मकता के बावजूद यह चित्र महादेवी के "धीरे - धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी" गीत की चित्रकारिता और प्रसाधन-प्रियता से अलग है । महादेवी के गीत में शुरू से अंत तक सज्जा की सतर्क आयोजना है, काव्यात्मक शब्दावली का सुरुचि-सम्मत विन्यास है । आरंभिक अंश प्रस्तुत है -

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत-रजनी ।

तारकमय नव वेणी-बंधन
शीश फूलकर शशि का नूतन
रश्मि-वलय सित घन-अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी
पुलकती आ वसंत-रजनी ।

[illegible] और निराला अपने चित्रों को भी नयी संभावनाएँ प्रदान करते हैं, रूपकात्मकता के आकर्षण में नहीं जाते । यह प्रवृत्ति ठीक बाद के बंध में देखी जा सकती है, जहाँ कवि संध्याकालीन नीरवता की व्यंजना करता है :

नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा
नहीं होता कोई अनुराग -राग-आलाप
नूपुरों में भी रुनझुन-रुनझुन रुनझुन नहीं,
सिर्फ़ एक अव्यक्त शब्द-सा चुप-चुप-चुप
है गूँज रहा सब कहीं -

नीरवता की अनूठी,सूक्ष्म और सुकुमार स्थिति के अंकन के लिए कवि अद्भुत प्रखर आवेग के साथ, क्रियात्मक विस्तार में," चुप-चुप-चुप " की गूँज को उल्लसित करता है । वीणा का न बजना अनुराग-राग-आलाप का न होना और नूपुरों में रुनझुन -रुनझुन का अभाव संध्या-सुंदरी के प्रशांत,शांत व्यक्तित्व को व्यंजित करते हैं । फिर बचा क्या है " सिर्फ़ एक अव्यक्त शब्द-सा 'चुप-चुप-चुप' जो सब तरफ़ गूँज रहा है ।

इसके बाद कवि संध्याकाल में गहराती हुई निस्तब्धता का विराट् चित्र प्रस्तुत करता है । इस अंश में छायावादी काव्यभाषा की जीवनी - शक्ति भी विवृत हुई है :

व्योम-मण्डल में - जगतीतल में -
सोती शांत सरोवर पर उस अमल कमलिनी-दल में -
सौन्दर्य -गर्विता सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में -
धीर-वीर गंभीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में -

उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि-प्रबल में -
क्षिति में -जल में नभ में अनिल अनल में -
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द -सा " चुप, चुप, चुप "
है गूँज रहा सब कहीं -

लय के इसी भव्य प्रसार में नीरवता का यह प्रकृति-व्यापी अंकन बेजोड़ है। प्रकृति के सुकुमार और भयानक दोनों पक्षों में " चुप, चुप, चुप, " की गूँज परिव्याप्त है। " उत्ताल तरंगाघात के दीर्घ और कठोर वर्ण स्तब्ध वातावरण का सशक्त चित्र चित्रित करते हैं। क्षिति में जल में नभ में अनिल-अनल में उसी " चुप,चुप,चुप " की गूँज -अनुगूँज को प्रतिष्ठापित कर निराला उस विराट् चित्र को गरिमा प्रदान करते हैं अर्थात् पंच तत्व भी संध्याकालीन नीरवता से परिव्याप्त है। निस्तब्धता का सर्वग्रासी प्रभाव कवि के सूक्ष्म स्तर पर कदाचित् सर्वत्र एक तत्व की व्याप्ति की व्यंजना करता है। निराला ने अपने एक निबंध में कहा है, " काव्य में साहित्य के सूक्ष्म को दिगंत व्याप्त करने के लिए विराट् रूपों की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है। "[1] अपनी आरंभिक कविताओं से ही निराला इस दिशा में प्रयत्नशील रहे हैं। " संध्या-सुंदरी " का यह अंश एक अच्छा उदाहरण है। विशिष्टता यह है कि " चुप, चुप, चुप " की गूँज-अनुगूँज इस विराट् अंकन को प्रखर गतिशीलता और द्वन्द्वात्मकता प्रदान करती है। नीरवता अपने में सुकुमार स्थिति की सूचक है, उसको कोमल संदर्भ में ही कवि संस्पर्श करता है। " एक तारा " में कवि पंत ने संध्याकालीन प्रशांति को बहुत सुकुमार, अछूते बिंब में अंकित किया है :

पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।

इस दृष्टि से निराला का विराट् चित्र उनके पौरुष-दीप्त काव्य-व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है। " संध्या-सुन्दरी " के इस अंश की कठोर शब्द-योजना को लेकर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने एक अच्छी टिप्पणी की है : " प्रशांत प्रकृति के चित्रण के संदर्भ में इस प्रकार की प्रचण्ड ध्वनिमयी शब्दावली का

---

१) प्रबंध-पद्म ,पृ० ७२

प्रयोग उचित है या नहीं, यह एक अलग प्रश्न है। परन्तु ऊपर उद्धृत कविता में विवादी स्वर का यह संधान अपूर्व सामर्थ्य के साथ किया गया है, इसमें संदेह नहीं।[१] प्रचण्ड ओजस्विनी शब्दावली का यह प्रयोग प्रशांत प्रकृति के चित्रण के संदर्भ में असाधारण है, किन्तु विपरीत भाव की प्रक्रिया में भी वह व्यापकता और प्रखरता को धारण किये हुए है। कवि निराला का क्रांतिकारी व्यक्तित्व [illegible] की इस परंपरित धारणा को यहाँ निर्मूल सिद्ध करता है कि प्रशांत प्रकृति का चित्रण कोमल शब्दावली ही कर सकती है।

हृदय-संवेदन के इस विराट्-भव्य चित्र के बाद अंतिम बंध में निराला संध्या के दूसरे तत्त्व विश्राम का चित्रण करते हैं। इस स्थल पर वे संध्या को सहज मानवीय जीवन से बिल्कुल संपृक्त कर देते हैं, छायावादी कवि का आत्मनिष्ठ स्वर यहाँ मुखरित होता है :

और क्या है ? कुछ नहीं
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती,
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह अगणित मीठे सपने,
अर्द्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग।

" और क्या है ? कुछ नहीं " का शब्द प्रयोग बोलचाल की उन्मुक्तता बनाये रखता है। निराला की " संध्या-सुंदरी " मदिरा की नदी बहाती हुई आती है। यह बिंब (" मदिरा की नदी बहाती आती ") प्रगाढ़ होते संध्याकाल में प्राणियों के विश्राम, क्लांति-मुक्तता और अलसता की व्यंजना करता है।

---

१) कवि निराला, पृ० १०८

अर्थ से अधिक सूक्ष्म-स्तर पर एक सुकुमार-तन्मय परिवेश निर्मित होता है - संध्या-सुन्दरी अपनी आवास में लौटे हुए प्राणियों की प्रेयसी के सान्निध्य-सुख सा । जो संध्या प्रारंभ में परी सी प्रतीत हुई थी, वह मनुष्य लोक में आकर उनके जीवन में खिलती है । अपने कर्तव्य की समाप्ति के बाद वह अर्द्धरात्रि की निस्तब्धता में लीन हो जाती है ।

इस पूरे श्रृंगारपरक चित्र से भी कवि की चेतना कुछ भी प्रभावित होती है । वह उससे तादात्म्य का अनुभव करने लगता है -

> कवि का बढ़ जाता अनुराग,
> विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
> आप निकल पड़ता तब एक विहाग ।

' विहाग ' की नियुक्ति कवि की बेचैनी, क्षोभ, उन्मना की सूचक है । संध्या का मौन भाव कवि के कण्ठ से विहाग बनकर फूटता है । इस रूप में संध्या एक जीवंत अनुभव बन जाती है, उसी से कवि अपना रचनात्मक उन्मोचन करता है, उसके साथ एक जीवन जीता है । संध्या और रचना का भी नाटकीय संबंध जुड़ता है - ' विरहाकुल कमनीय कण्ठ से / आप निकल पड़ता तब एक विहाग । '

(' बादल - राग ')

' बादल-राग ' से संबद्ध सब भाव-बोध हिन्दी की अपनी व्यंजना-क्षमता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं और इस प्रकार कवि में ' राग अमर ' संबोधन की सार्थकता प्रदान करते हैं । कविता का आनन्द उसके अर्थ-विस्तार में निहित होता है । जितनी बार उसका विश्लेषण किया जाए, उतनी ही बार वह किसी-न-किसी संवेदना से हमारा परिचय कराए, कवि का मूल अभिप्रेत भावना की विकासशील और तनाव-युक्त प्रकृति के बल पर किसी न किसी जटिलता से उसे रमणीयता का बोध कराए । ' बादल-राग ' की विविध कविताएँ बहुमुखी चेतना-

अनुभूतियों को रागात्मक करती चलती है ।

पहले भाव-बोध में कवि अमर राग के गायक बादलों का आवाहन करता है । पंक्तियों की विशिष्ट ध्वन्यात्मकता कवि के आह्लाद, उन्माद को, उसके मुक्तिकामी प्राण को पूरी अभिव्यक्ति देती है :

झूम झूम मृदु गरज-गरज घन घोर ।
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर ।
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में,
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
सरित-तड़ित-गति-चकित पवन में
मन में, विजन-गहन-कानन में
आनन-आनन में, रव घोर कठोर-
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर ।

निराला-काव्य की विशिष्ट श्रुतिधर्मिता का परिचय यह पूरा गति-चित्र सम्भव करता है । मुक्त-गीत में प्रवाह और आंतरिक गठन के लिए ध्वनि-आवर्त्त की आवश्यकता का अनुभव रचनात्मक उपकरण के रूप में अपना संवेदना के गहरे स्तरों का संस्पर्श करने का सूचक है । भावचित्र तथा नादरूप बिंबों की पुष्टि तो होती ही है, वरन् वे सघन स्तर पर यह शब्दावली उन्मुक्त, अबाध प्राण के संचरण को भी स्वर देती है । कवि का अभिप्रेत वह अमर राग है, जो प्रकृति में ही नहीं, मानव-मन में भी, आनन-आनन में अपनी अकृत्रिम मनोवृत्ति, स्वच्छन्द आनन्द की स्थापन है । " राग अमर " की पुनः आवृत्ति उसकी संश्लिष्ट गूँज-अनुगूँज को विस्तार देती है । शब्दों की तथाकथित सरलता अपने विशिष्ट क्रम में, लय और अनुभूति की संगति में एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाती है ।

इसी की पंक्तियों में कवि का बादल के लिए 'अरे, वर्ष के हर्ष " का प्रयोग अपनी निश्छल प्रकृति से कवि की " राग अमर " के प्रति नितान्त आकुलता को व्यंजित करता है । यह संवेदन जीवनानुभूति में से उत्तीर्ण होकर निकला है । अभिनय व्यापारों में सीधे-सपाट कथन भी अपनी उत्पादक शक्ति के

अपनी विशिष्ट लयात्मकता से ये पंक्तियाँ न केवल बादलों के साथ निर्द्वन्द्वता की धारा उड़ने वाले कवि मानस की अभिव्यक्ति देती हैं, अपितु सीमाओं में न बँधकर असीमता का संस्पर्श करने को व्यग्र उसकी आत्मा को भी स्वर देती है।" मुक्ति गगन का पिता सघन वह और वह और, जो सम्भव है, जो निराला के - या अधिक व्यापक स्तर पर एक सर्जनशील व्यक्तित्व के - विकास के लिए उचित दिशा-निर्देश कर सके।

"बादल-राग" का दूसरा भाव-बंध ओजस्वी संबोधन, लय की उन्मुक्तता तथा शब्दों की अनेक अर्थ-स्तरीय शक्ति के कारण उदात्त क्रान्तिकारी व्यंजना संभव करता है :

ऐ निर्बन्ध !
अन्ध-तम-अगम-अनर्गल-बादल !
ऐ स्वच्छन्द !-
मंद-चंचल-समीर रथ पर उच्छृंखल

यहाँ कवि की भावना किसी निश्चयात्मक उक्ति की ओर संकेत न करके अपनी प्रश्नात्मक प्रकृति से बहुमुखी अभिव्यक्तियाँ संभव करती है, जैसे कवि मानस ने बंधनमय राह का प्रत्याख्यान किया हो। निराला की ही एक कविता याद आ जाती है :

आज नहीं है मुक्ति और कुछ चाह
अर्ध-विकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये, छोड़ कर बंधनमय छंदों की छोटी राह।

जो कवि ने पूर्ववर्ती हिन्दी काव्य-परंपरा की संकुचितता एवं गतानुगतिकता का अतिक्रमण किया हो, समस्त सामाजिक, राजनीतिक जड़ निर्जीवों का विरोध कर उन्मुक्त विकास की व्यंजना की हो, या अधिक सूक्ष्म स्तर पर (और वस्तुतः जो निराला की उदात्त कवि-मनोवृत्ति का सूचक है) अंधकार की शक्ति से जूझते हुए ओजस्वी, जिजीविषा-शक्ति-संपन्न व्यक्तित्व को रूपायित किया हो। " अंध-तम-अगम अनर्गल बादल " का क्रांतिमय प्रभाव बादलों की दुर्दम्य शक्ति को ध्वनित करता है। यह विशेषण यथार्थ का डटकर मुकाबला करनेवाले

पौरुष-दीप्त व्यक्तित्व का जीवन्त चित्र उतारता है । कालिदास ने जिसे " सूचीभेद्य अंधकार " कहा है, या निराला जी की " राम की शक्ति पूजा " में " है अमा निशा: उगलता गगन घन अंधकार " की जो व्यंजना है, वही और उन बादलों की दुर्धर्ष शक्ति के द्वारा अतिक्रमित हो जाता है । इसी अपराजेय शक्ति की अन्वेषणा में कवि ने " राम की शक्ति-पूजा " में नितान्त मानवीय राम का भी यों चित्रण किया है :

वह एक और मन रहा राम का जो न थका,
जो नहीं जानता दैन्य नहीं जानता विनय,

राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों स्तरों पर आत्म-विश्वास से रहित, बँधी लीक पर चलनेवाली तत्कालीन भारतीय आत्मा को ये संबोधन भी उद्बोधित करनेवाले हैं :

ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण ।
बाधा रहित विराट !
ऐ विप्लव के प्लावन !
सावन-घोर गगन के
ऐ सम्राट !

किन्तु काव्यभाषा की अपनी उन्मुक्त और उदार प्रकृति के कारण ये पंक्तियाँ सामयिक परिवेश के प्रति सजगता के साथ-साथ सार्वभौम अर्थ को भी लेकर चलती हैं । रचना की प्रासंगिकता इसी रूप में संभव होती है । विशृंखलित और चेष्टा-शून्य जीवन को इस संबोधन की वाणी झकझोरने वाली है ।

अपार कामनाओं के प्राण !

" बाधा रहित विराट् " संबोधन स्पष्ट रूप से निराला के ही अदम्य व्यक्तित्व की ओर इशारा करता है । बादल कोरा बादल नहीं है, निराला की सर्जनात्मक भाषा में ढलकर प्रबल जीवन आकांक्षा, मुक्त आत्मा का पोषक बन गया है ।

आगे की पंक्तियों में निराला ने बादल के रौद्र रूप को चित्रित किया है । जो बादल सामान्य दृष्टि से जल-दान करनेवाले हैं, वे कवि की संवेदनशील कल्पना के साँचे में ढलकर रचना और संहार के माध्यम से क्रान्ति उत्पन्न करते हैं । रचना और संहार एक ही प्रक्रिया के दो पक्ष हैं । बादल का विप्लवी रूप विकास को ही सूचित करता है । अंतिम पंक्तियाँ पूरे बंध को एक ऊर्ध्व विराम दे देती हैं :

भय के मायामय आँगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर !

" मायामय " के साथ संयुक्त होकर " भय " अर्थ की विविध छायाएँ उद्भूत करता है । पौरुष-उपासक कवि को भय की सत्ता उखाड़नी ही है । भय के प्राथमिक स्तर पर विधिनिषेधों से परतंत्र भयाकुल मानवात्मा का निर्देश है, सूक्ष्म स्तर पर उसकी विफलता, उसी उदय में स्खलन का बोध करनेवाले साधक-मन के भय की व्यंजना है, जिसे संशय कहना अधिक उचित होगा । " राम की शक्ति-पूजा " में मानवीय संकल्प-विकल्प से युक्त राम की स्थिति आँखों के निकट आ जाती है -
" स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर फिर संशय । "

" गरजो विप्लव के नव जलधर " जो मानस में ही निहित (किन्तु प्रसुप्त) शक्ति के सक्रिय होने की पुकार लगाता है । कवि की रोमांटिक कवियों जैसी भाव-विह्वलता तथा आवेगमयता वैचारिक कवि की गम्भीरता से संवलित हो जाती है । इसी स्थल पर आकर बादल की प्रतीक-योजना विराटता को प्रश्रय देती प्रतीत होती है ।

" तीसरा भाव-बंध ऐतिहासिक प्रतीक के माध्यम से सांस्कृतिक व्यंजनाएँ उद्भूत करता है, जिसमें धीरव्रती अर्जुन के स्वर्ग-प्रवास और वहाँ से सफल प्रत्यावर्तन के चित्रण द्वारा कवि बादल का अन्त:भूत कर्तव्य-निष्ठ रूप खड़ा करता है । इसके लिए कवि-कल्पना आरंभ से ही पृष्ठभूमि तैयार करती है :

सिन्धु के अश्रु !
धरा के खिन्न दिवस के दाह !

बादल की उत्पत्ति के भौतिक सत्य को सर्जनशील भावना कविता

के साँचे में किस तरह से ढाल देती है, यह द्रष्टव्य है। सूर्य की ऊष्मा और समुद्र के वाष्प से बादल का जन्म होता है। उस बादल का सेवा-रत जीवन " तरु के सुमन " के चित्र में कवि ने प्रस्तुत किया है :

विदाई के अनिमेष नयन !
मौन उर में चिह्नित कर चाह
छोड़ अपना परिचित संसार-
सुरभि का कारागार,
चले जाते हो सेवा पथ पर,
तरु के सुमन !
सफल करके
मरीचिमाली का चारु चयन।

सेवा में ही जीवन की सार्थकता है और उस सेवा-कार्य में वैयक्तिक आकांक्षाओं की बलि देनी पड़ती है, इन दोनों भावों की यहाँ व्यंजना है। " विदाई के अनिमेष नयन " का भावात्मक सौन्दर्य सामान्य शब्दों में कहने की चीज़ नहीं है। एक ओर अपने परिचित संसार का मोह है, ममत्व है; दूसरी ओर कर्तव्य-भावना है। इन दोनों की टकराहट में विवेक को प्राथमिकता देना ही मनस्वी व्यक्तित्व का धर्म है। बादलों के माध्यम से इस सत्य को कवि ने प्रस्तुत किया है।

एक बार फिर " सिन्धु के अश्रु " संबोधन की सार्थकता का अवलोकन किया जा सकता है, जो पूरे भाव से संबद्ध है, विच्छिन्न नहीं। बादल यहाँ बादल नहीं है, सिन्धु के अश्रु है। सेवा-पथ पर जाते हुए प्रियजनों से विछोह की अनुभूति की निराशा ने इस सूक्ष्म उपमान में मार्मिकता से रूपायित किया है।

यहीं 'सव्यसाची' अर्जुन का चित्र पूरे बंध को एक सांस्कृतिक छवि प्रदान करता है। काफ़ी दूर तक इस रूपक का निर्वाह भी कवि की कर्मशील जीवन के प्रति उत्कट आस्था को घोषित करता है :

स्वर्ग के अभिलाषी हे वीर,
सव्यसाची से तुम अध्ययन-अधीर

अपना मुक्त विहार

प्रौढ़ बंधुओं के उत्सुक नयनों का सच्चा प्यार

पाते हो तुम अपने मन पर,

स्मृति के गृह में रख कर

अपनी सुधि के सज्जित तार ।

"सव्यसाची" शब्द की अनेक छायाएं उद्घाटित करता है । "अर्जुन" संबोधन में यह बात न आती । दायें ही नहीं, बायें हाथ से भी समान कौशल से धनुष चलाने में निपुण होने के कारण अर्जुन सव्यसाची कहलाये । बादल भी उत्कट जीवनी-शक्ति, प्रखर पराक्रम से परिपूर्ण है । इस पराक्रम के विरोध में ये दो पंक्तियाँ :

स्मृति के गृह में रख कर

अपनी सुधि के सज्जित तार ।

बड़ी-ही मर्मस्पर्शिनी प्रतीत होती है । वस्तुतः बादल तो कवि के लिए केवल प्रतीक मात्र है - जीवन-निष्ठा, दृढ़ संकल्प, दुर्धर्ष शक्ति का । अतएव वह विविध सांस्कृतिक संदर्भों के आलोक में उसकी क्षमता की चर्चा करता है । उसे केवल मानवीकरण कह देना कविता की प्रकृति के साथ अन्याय करना है । इस प्रसंग में सुमित्रानन्दन पन्त की 'बादल' शीर्षक कविता याद आ जाती है । जिसमें अनुभव के साथ रचनाकार की गहरी संपृक्ति का परिचय न्यून मात्र में मिलता है, हाँ, अलग-अलग बिंबों, कल्पनाओं की छटा-छब अवश्य विद्यमान है ।

सव्यसाची अर्जुन का यह पौराणिक रूपक रचनाकार की सृजन-प्रक्रिया को समृद्ध करता है ।

पूर्ण मनोरथ हो जाए,

तुम आए ;

यह संबोधन भी बड़ा-ही सटीक है । पौरुष में आस्था रखने वाला ही ऐसा संबोधन कर सकता है । साधनावस्था तथा सिद्धावस्था का संश्लेषण यहाँ सशक्त भाषा द्वारा संभव हुआ है, जो एक मानी में कला की चरम सिद्धि कही जा सकती है । पौरुष और उत्साह से परिपूर्ण व्यक्तित्व की यह परिकल्पना निरा

ने एकान्तिक स्तर पर नहीं की है वरन् वह सामूहिक आकांक्षा को व्यक्त कर देती है। प्रकारान्तर से यह कवि की उदात्त दृष्टि की ही प्रेरणा है :

विजय ! विश्व में नव जीवन भर,
उतरो अपने रथ से भारत !

अर्जुन के लिए विशेष रूप से " भारत " संबोधन साभिप्राय है, मानों कवि दिग्भ्रमित आत्मविश्वास-शून्य देश को जागरण का संदेश देता है। समूचे बिंब-विधान की परिणति दाम्पत्य-प्रेम के अनुभव में होती है। योग-भोग, साधना-तृप्ति, दोनों का संश्लेष हो जाता है। प्रसाद के नाटकों के पौरुष-दीप्त प्रणयी पात्र याद आ जाते हैं। " कामायनी " की श्रद्धा का यह उद्बोधन - कर्म का भोग, भोग का कर्म / यही जड़ का चेतन आनन्द " भी इस बंध में अपना स्थान बनाता प्रतीत होता है :

उस अरण्य में बैठी प्रिया अधीर,
कितने पूजित दिन अब तक हैं व्यर्थ,
मौन कुटीर।
आज भेंट होगी -
हाँ, होगी निस्सन्देह
आज सदा सुख छाया होगा कानन -गेह

लय की घटती बढ़ती विरामें, पंक्तियों की दीर्घता प्रणय की आकुलता को व्यंजित करती है। " पूजित " शब्द का प्रणय को वैयक्तिक स्तर से ऊपर उठाकर सांस्कृतिक गरिमा प्रदान करता है, जिसमें भारतीय पत्नी की उत्कंठा, समर्पण और साधना की संश्लिष्ट गूँज-अनुगूँज परिव्याप्त है।

आज अनिश्चित पूरा होगा श्रमित प्रवास,
आज मिटेगी व्याकुल श्यामा के अधरों की प्यास।

उपर्युक्त पंक्तियाँ जीवन में प्रणय के केन्द्रीय स्थान को घोषित करती हैं-जो उसके बिना यह सारी दौड़-धूप, यह सारी साधना के प्रति उपेक्षता व्यर्थ है। " अनिश्चित " और " श्रमित " विशेषण प्रणयाभाव में जीवन की रिक्तता को

बड़ी सूक्ष्म अभिव्यक्ति देते हैं ।" श्यामा के व्याकुल अधरों की प्यास का मिटना " पंक्ति अपने विशिष्ट सौन्दर्य-बोध के तल पर ऐन्द्रिक के साथ मानसिक तृष्णा की परितृप्ति की व्यंजना करती है ।" श्यामा " के माध्यम से एक ओर सुती पालती की हरीतिमा का चित्र साकार होता है, दूसरी ओर समर्पणशील प्रिया की तुष्ट उत्कंठा दृष्टिगोचर होती है । प्रसाद के "स्कंदगुप्त " नाटक की विजया स्कंदगुप्त को प्रथम दर्शन पर कहती है - अहा ! कैसी भयानक और सुन्दर मूर्ति है ।[1] भयानक और सुन्दर के तनाव और संश्लेषण के अर्थ की सूक्ष्म छायाएँ इस बंध में निराला ने प्रस्तुत की है ।

चौथे खण्ड में बादल के क्रीड़ा-रत रूप को प्रस्तुत किया गया है । उदात्त दृष्टि जीवन को एक क्रीड़ा-रूप में ग्रहण करती है । बादल के लिए क्रीड़ा-रत बालक का बिंब अनोखा है । गोरखनाथ ने परम तत्त्व को आकाश में खेलनेवाला बालक कहा है -" गगन सिखर महिं बालक बोलै, ताका नाँव धरौगे कैसा ? "

पाँचवें बंध में " निरंजन " का संबोधन इस शिशु-प्रतीक को परम तत्त्व के बालक- प्रतीक से अनायास ही संबद्ध कर देता है । छठे बंध का प्रारंभ यों होता है :

उमड़ सृष्टि के अंतहीन अंबर से
घर से क्रीड़ा-रत बालक-से
ऐ अनंत के चंचल शिशु सुकुमार !
स्तब्ध गगन को करते हो तुम पार
अंधकार—घन-अंधकार ही क्रीड़ा का आगार ।

" अंधकार घन अंधकार " अर्थ के विस्तार द्वारा संघर्ष, बाधा, निराशा , अवसाद की प्रबल सत्ताओं को प्रश्रय देता है, जिसका सामना " चंचल शिशु सुकुमार " करता है, अथवा यों कहें, तो अधिक समीचीन होगा कि वह वह यथार्थ ही क्रीड़ा-स्थल है । स्थिति कितनी विषम है, उसे उतनी ही सरलता से कहा गया है पर यह सरलता या कहने का खुला-खुला ढंग ही उस विषमता को और भी गहरा रंग देता है :

---

१) स्कंदगुप्त, पृ० ३७ ।

अंधकार-घन-अंधकार ही

क्रीड़ा का आगार ।

ये कवि की एक इकलौपन को समेटे हुए यह शब्दावली और अंधकार-सुदृढ़ स्तर पर वस्तु यथार्थ के साथ संघर्ष में निडरता और क्रीड़ा वृत्ति को व्यंजित करती है । यहीं विद्युत-कान्ति के चमक का छिपने के बादल दृश्य को कवि ने संगीतशास्त्रीय उपमान में सजीव बनाया है :

चौंक चमक छिप जाती विद्युत

तड़िद्दाम अभिराम,

तुम्हारे कुंचित केशों में

अधीर विक्षुब्ध ताल पर

एक इमन का-सा अति मुग्ध विराम ।

विद्युत के चमक कर तुरन्त छिपने का यह एक क्षण ताल पर इमन राग के अति मुग्ध विराम द्वारा कविता में चित्रित हो जाता है । शिशु रूप में परिकल्पित बादल के साथ क्रीड़ा करती सूर्य-रश्मियों का भी बिम्बात्मक अंकन हुआ है । इन दो उपमानों में कवि ने ध्वनि और रंग का संश्लेषण सृजन किया है, जो छायावादी बिंब-विधान की विशेषता है।

सप्तवर्णी इन्द्रधनुष को लेकर कवि-कल्पना ने औदात्य के उच्च धरातल की सृष्टि की है । कवि वीणा के सप्तक से इन्द्र धनुष का समीकरण करता है । "गुडाकेश" विशेषण बादल की सक्रियता, गगन में निरंतरता को लक्षित करता है । ये पंक्तियाँ कवि की ऊर्ध्वोन्मुखी दृष्टि की परिचायक हैं -

इन्द्रधनुष के सप्तक,तार;—

व्योम और जाती है राग उदार

मध्यदेश में, गुडाकेश !

गाते हो बारंबार ।

हिन्दी प्रदेश का प्राचीन नाम मध्यदेश है । ये बंगाल-प्रवासी निराला के तेजस्वी बादल पिछड़े हुए हिंदी प्रदेश को नवजागरण का संदेश सुनाते हो ।

मेघ-वीणा में कवि-कल्पना संगीत-स्वर की विभिन्न स्थितियों का साक्षात्कार कर लेती है। यहाँ "मुक्त" विशेषण ही कवि की स्थूल परिस्थिति के प्रति उपेक्षता से ऊपर उठकर सांस्कृतिक उच्चता के प्रति आदर-भाव को स्वर देता है :

मुक्त! तुम्हारे मुक्त कंठ में
स्वरारोह, अवरोह, विघात
मधुर, मन्द्र,उठ पुनः-पुनः ध्वनि
छा लेती है गगन, श्याम कानन,
सुरभित उद्यान,
झर-झर-रव भूधर का मधुर प्रपात

बादल की मुक्त आत्मा इस कविता की मुक्त आत्मा को भी सूचित करती है। यह ध्वनि, जो गगन, श्याम कानन, उद्यान आदि सभी को छा लेती है, कोई साधारण नहीं है,वरन् साधारण मुक्ति का संदेश देनेवाली है।

बधिर विश्व के कानों में
भरते हो अपना राग,
मुक्त शिशु! पुनः पुनः एक ही राग अनुराग।

"राग अमर अंबर में भर निज रोर" की गूँज पुनः छा जाती है। यहाँ विश्व के लिए "बधिर" विशेषण उसकी बधिर जीवन-पद्धति, कृत्रिम विधि-निषेध के प्रति श्रद्धा, विभक्त मानवता के बहरेपन को लक्षित करता है। बादल के लिए मुक्त शिशु संबोधन पुनः एक स्वच्छ, उन्मुक्त वातावरण की सृष्टि करता है। जो "बधिर" है, वह भी उस संदेश को, उस अमर गान को सुनेगा; मगर "मुक्त शिशु" का निर्दोष प्रयास दर्शनीय है।

पाँचवें बंध में कवि की उन्नत दृष्टि बादल में ब्रह्म की परिकल्पना करती है। वह निराकार ब्रह्म, जो सगुण रूप धारण करके अवतरित हुआ है, अपनी संपूर्ण विश्वात्मकता में साकार हो उठता है। यहाँ "निरंजन बने नयन अंजन" का विशेष दृष्टव्य है। सावन के सघन श्यामल मेघ नभ को परिपूर्ण रखते हैं और उन्हीं को लक्ष्य करके मध्यकालीन कवि सेनापति ने "कवित्त रत्नाकर" की "ऋतुवर्णन" तरंग में उन्हें "आये हैं पहार मानो काजर के ढोरि के" कहा है। निराला ने भी

उन्हें " नयन अंजन " विशेषण प्रदान किया है, जो अनेकार्थक अधिक संवेदनशील है। " नयन अंजन " कितना सुखकर होता है। बादल के प्रति कवि की ललक, उमंग को यह एक ही विशेषण प्रकट कर देता है। बादल के विविध रूपों की झाँकियाँ प्रारंभिक चरणों में कवि ने प्रस्तुत की है।" घन नयन अंजन " की बारंबार आवृत्ति कवि के आत्मिक तोष का बोध कराती है। उस श्याम घन में कृष्ण का आभास होता है :

आज श्याम घन श्याम, श्याम छवि,
मुक्त कंठ है तुम्हें देख कवि,
अहो, कुसुम कोमल कठोर पवि !
शत-सहस्र-नक्षत्र-चन्द्र-रवि संस्तुत
नयन मनोरंजन !
घन नयन अंजन !

रचना की यह दार्शनिक प्रौढ़ भावना की क्षमता द्वारा ही किया जा सकता है। कवि की यह विह्वलता या दार्शनिकता को रूखा नहीं बनाती, वरन् उसे तादात्म्य की प्रतीति कराती है।

अन्तिम भाव-बोध क्रान्तिकारी व्यंजना और उदात्त स्वर-सौन्दर्य से परिपूर्ण है।" बादल-राग " का यह उत्कृष्टतम गीत भी है।

तिरती है समीर सागर पर
अस्थिर सुख पर दुःख की छाया -
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया -
यह तेरी रण तरी
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर।
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल !

इतना दीर्घ वाक्य अनुभूति की लय पर सधा हुआ है । प्रारम्भ में क्रियापद का प्रयोग नाटकीयता की सृष्टि करता है । इसी नाटकीयता के उत्कर्ष में " राम की शक्ति-पूजा " का "है अमा निशा ; उगलता गगन घन अन्धकार" भी स्मरित हो उठता है । आरंभ में दो अमूर्त अप्रस्तुतों का सन्निवेश और फिर " मेरी गर्जन से सजग अंकुर " का चित्रण एक वाक्य के विस्तार में मुक्तकवि द्वारा ही हो सकता है । छन्द संवेदना को बहुत कुछ नियमित और अनुशासित करता है । "इस बंध-संघात छन्द में यह ओज, प्रवाह और जीवनी-शक्ति नहीं आ सकती थी ।" बंधनमय छन्दों की छोटी राह को छोड़ने की " कवि-आकांक्षा अर्थ की सर्जनात्मक संभावनाओं से उत्प्रेरित है । बादल की क्रान्तिकारी-शक्ति का कुछ संकेत उद्धरण की अन्तिम पंक्तियों को तोड़-तोड़कर कवि ने किया है -" घन, मेरी गर्जन से सजग सुप्त अंकुर उर में पृथ्वी के, आशाओं से नवजीवन की, ऊँचा कर सिर ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल । फिर-फिर ।"

बादल में युद्ध-नौका की परिकल्पना कविता को महाकाव्योचित औदात्य प्रदान करती है ।" मेरी आकांक्षाओं से " प्रयोग अपार कामनाओं के प्राण बादल की अदम्य जिजीविषा को ध्वनित करता है ।" मेरी गर्जन " से " सजग अंकुर उल्लसित होने लगते हैं, इस प्राकृतिक सत्य के माध्यम से काव्यभाषा की उन्मुक्तता सूक्ष्म अर्थ-स्तरों को उद्घाटित करती है । क्रान्ति की सूचना मिलने पर नयी उमंगें सर्जनात्मकता की विविध संभावनाओं से भर उठती है । सुप्त अंकुर सजग होकर, सिर ऊँचा कर, विप्लव के नव बादल की ओर नव जीवन (जल) की आशा से ताक रहे हैं , मानों नयी पीढ़ी पौरुषापेक्षित व्यक्तित्व के नेतृत्व के पथ में आँखें बिछाये खड़ी हो ।" नव जीवन" का श्लेष प्रस्तुत संदर्भ में श्लेष के दोहरे अर्थ से ऊपर उठकर गहरी व्यंजनाएँ संभव करता है, नवजीवन - जिसमें व्यक्ति के विधि-निषेध न हों, जिसमें उनकी कोमल संभावनाओं को क्षति न पहुँचे ।" सजग " के ठीक बाद " सुप्त " का प्रयोग दोनों की अर्थ-गत विपरीतता के कारण " सजग " की अर्थ-व्यापकता में वृद्धि करता है, और फिर विप्लव के बादल का भेरी-नाद अधिक प्रभावकारी प्रतीत होने लगता है । " सजग " और " सुप्त " के स्थान पर कवि अनेक पर्यायों का प्रयोग कर सकता था, पर तब अर्थ की ऐसी उन्मुक्तता

सम्भव न होती । " सुप्त " में ऐसी चेतना सीमा-शून्य, आत्मविस्मृत-स्तम्भित ,जड़ व्यक्तित्व की व्यंजना है, और उसका " अधोमुखी वृत्तियों से व्यक्तित्व से उत्तीर्ण होने की सूचना देता है ।

उद्दाम भावना अपनी अभिव्यक्ति के रूप पर सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं को उभारने में पूर्ण-क्षम होती है, इस दृष्टि से दो कृतियों का वैकल्पनागत अंतर बहुत कुछ उनकी भाषा-प्रयोग -विधि पर निर्भर करता है :

बार-बार गर्जन,
वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता संसार
सुन सुन घोर वज्र हुंकार ।

द्विवेदी-युगीन खड़ीबोली की इतिवृत्तात्मकता इतने साधारण-से प्रतीत होनेवाले शब्दों में सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं को अंकित न कर पाती । यहाँ लय की बनावट कुछ ऐसी है कि एक गति-चित्र निर्मित हो जाता है । बादलों का वज्र-सदृश गर्जन एवं अनवरत वर्षण संसार की सहन-शक्ति के बाहर है, मानो श्रेष्ठ प्रतिभा को झेलना सही मूल्यांकन करना सब के बूते की बात नहीं है । एक चित्र द्रष्टव्य है :

अशनिपात से शापित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत-विक्षत-हत अचल शरीर,
गगन-स्पर्शी स्पर्धा धीर ।

पौरुष के प्रतीक बादल की प्रचण्ड दाहकता का सशक्त उद्घाटन का चित्र उतारा हुआ है । एकनीत शब्दावली वीरों के गिरने की प्रतिक्रिया को स्वर देती है । " शापित " के बाद " उन्नत " का प्रयोग अपनी अतीव विपरीतता से वीरों के सर्वग्राही प्रभाव को व्यंजित करता है ।

और दूसरा चित्र है :

हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार -
शस्य अपार,

हिल हिल,
खिल खिल,
हाथ हिलाते,
तुझे बुलाते,
विप्लव -रव से छोटे ही हैं शोभा पाते ।

क्रान्ति का आवाहन छोटे लोग ही करते हैं । ' छोटे ' जैसा सामान्य शब्द संदर्भानुकूल प्रयुक्त होने से बड़ा ही भावपूर्ण है । तिरस्कृत, निम्न तथा महत्त्वहीन को कवि ने विशिष्टता प्रदान की है । यह शब्द-चित्र कवि की संवेदना को बड़ी उन्मुक्त अभिव्यक्ति देता है । ' हिल हिल खिल खिल ' आदि से पौधों का एक गतिशील बिंब निर्मित होता है, जो बिंब के चाक्षुष रूप तक ही सीमित न रहकर अर्थ की द्वन्द्वात्मकता को भी आत्मसात् करता है । पौधों के उल्लास, उन्माद आवेग को वाणी मिली है । इसके विपरीत :

' अट्टालिका नहीं है रे
आतंक भवन '

से कवि का आक्रोश मुखर हो उठता है । निराला की ही एक कविता ' तोड़ती पत्थर ' की पंक्तियाँ ' सामने तरुमालिका अट्टालिका, प्राकार ' याद आ जाती हैं, जिस पर भग्न हृदय , पत्थर तोड़ती युवती भी हथौड़ा मारती है । दोनों कविताओं का विपरीत-भाव एक जैसा है - अट्टालिका के सामने ' कृषक अधीर ' और पत्थर तोड़ती स्त्री । ' विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते ' की गूँज बहुत दूर तक व्याप्त होकर इस कविता का केन्द्रीय तत्त्व बन जाती है । अन्य वर्णनों में कवि ने विविध बिंबों में से इसी भाव को विकसित किया है :

सदा पंक ही पर होता
जल-विप्लव प्लावन,
क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से सदा छलकता नीर,

' पंक ' के बजाय ' पंकज ' को महत्त्व देनेवाले क्लासिकल और रोमांटिक कवियों के सौन्दर्य-बोध के विपरीत यह दृष्टि सार्थकपूर्ण है । ' जल-विप्लव

"प्लावन" की तुलना में "नीरद" का प्रयोग नीरद की लघुता को अभिव्यक्त करता है ।

> रोग शोक में भी हँसता है
> शैशव का सुकुमार शरीर ।

इस बिंब में बालक की क्रीड़ा-भूमि, उसकी उन्मुक्तता के माध्यम से बहुत कुछ व्यक्त किया गया है । उसकी तुलना में ये धनी हैं :

> रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष
> अंगना-अंग से लिपटे भी
> आतंक-अंक पर काँप रहे हैं
> धनी वज्र गर्जन से बादल !
> त्रस्त नयन मुख ढाँप रहे हैं ।

धनी व्यक्तियों में नैतिक बल के अभाव का निराला ने निर्ममता से पर्दाफाश किया है । रोष, घृणा, ग्लानि की मिली-जुली प्रतिक्रियाएँ इस चित्र को देखकर उद्भूत होती हैं । कल्पना के पात्र ये विलासी शीत से नहीं काँप रहे हैं, परन्तु भय से ।" अंगना अंग से लिपटना " और " आतंक अंक पर काँपना " ये दोनों चित्र एक के बाद एक विरोध में शोषक लक्ष्मीपतियों की विलासिता और आत्म-बल-शून्यता को उद्घाटित करते हैं ।

और अन्त का यह कृषक-चित्र पूरी कविता को एक संगति प्रदान करता है ,

> जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर
> तुझे बुलाता कृषक अधीर,
> ऐ विप्लव के वीर !
> चूस लिया है उसका सार
> हाड़-मात्र ही है आधार
> ऐ जीवन के पारावार !

उपर्युक्त अंश निराला की प्रबुद्ध वर्ग-चेतना का प्रतीक है । उस विलक्षण कृषक का साक्षात्कार भावना की प्रतीकात्मकता संभव करती है- ' चूस

किया है उसका सार " निःसत्व जीवन की करुण और आक्रोशपूर्ण अभिव्यक्ति जाता है।" जीवन के पारावार " में गहन, उत्साह या यों कहें, परिपूर्णता की स्पष्ट व्यंजना है।" जीवन-नद" या " जीवन-सरिता " आदि कहने से वह बात न आती, जो " पारावार " के प्रयोग में निहित है।" जीवन के पारावार" बादल धारा की बाढ़-आँधी-शोषण सर्वहारा का ही उद्धार हो सकता है। सुमित्रानन्दन पन्त ने " बादल राग " कविता की इन पंक्तियों को उद्धृत करते हुए यह स्थापना की है " बादल को क्रान्ति का दूत मान लेना और उसे क्रान्ति को युग-क्रान्ति से संबद्ध करना उनके (निराला के) समर्थकों की कल्पना की उड़ान-भर है।"[1]

वस्तुतः कविता की भाषा केवल अर्थ-सजगता को प्रश्रय न देकर उसकी संप्रेषणशीलता को दृष्टि-पथ में रखती है। अर्थ के विविध स्तरों से पूर्ण यह समूची कविता उस दृष्टि से युग-क्रान्ति को ही स्वर नहीं देती, वह नैतिक जागरण, स्वच्छंद जीवन पद्धति, नूतन प्रयोगों की संभावना को भी प्रमुखता देती है। निराला जैसा सांस्कृतिक कवि क्रान्ति के केवल स्थूल रूप से संतुष्ट भी नहीं हो सकता। लेकिन पंत जी का यह कथन कि " बादल को युग-क्रान्ति से संबद्ध करना केवल उनके समर्थकों की कल्पना की उड़ान भर है " कविता के संवेदनशील विश्लेषण के बा स्वीकार्य नहीं होता।

भाव का दूरगामी निर्वाह इस कविता की भाषा की उल्लेखनीय विशेषता है। तीसरा भाव बंध है -

" उमड़ सृष्टि के अन्तहीन अंबर से," जिसमें बादल के लिए शिशु का बिंब प्रस्तुत हुआ है। यह बिंब-निर्वाह पूरी कविता में हुआ है और " मुक्त शिशु पुनः पुनः एक ही राग अनुराग " में ही उसकी परिसमाप्ति होती है। कविता में अखण्ड आंतरिक एकता इसी कारण संभव हो सकी है। पंत जी ने भी अपनी " बादल " कविता में शिशु के बिंब को बादलों की क्रीड़ावृत्ति के चित्रण के लिए प्रयुक्त किया है। पर चूँकि कलाकार की दृष्टि रम्य, किन्तु खण्ड-खण्ड कल्पनाओं में है, अतः वहाँ यह बिंब एक छंद में ही समाप्त हो जाता है -

" फिर परियों के बच्चों से हम
सुभग सीप के पंख पसार

समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना में

पकड़ इन्दु के कर सुकुमार ।

" बादल-राग " में एक ही बादल में प्रलय, मुक्त शिशु, क्रान्ति-दूत की परिकल्पनाएँ करना कोई मामूली बात नहीं है, और विशिष्टता तो यह है कि वे परिकल्पनाएँ कहीं भी ऊपर से लादी हुई नहीं लगतीं, वरन् अनुभव का अंग बन गयी हैं । इसका कारण यह है कि भाषा कवि की विविध संवेदनाओं के साथ सक्रिय है चाहे वह अमर राग के गायक बादल का गर्जन हो - शब्दों की ध्वन्यात्मकता का कवि पूरा-पूरा ध्यान रखता है, या विप्लव के माध्यम से नव-निर्माण को संभव करनेवाले " धँस-धँस-धँसता-धँसते बादल " का रूप हो । रचना की आंतरिक एकता और शब्दावली का बोध कवि पूरी ईमानदारी का निर्वाह करता है ।

(" गीतिका ")

" गीतिका " निराला का एक महत्त्वाकांक्षी प्रयोग है, महत्त्वाकांक्षी इस अर्थ में कि हिन्दी भाषा की सांगीतिक संभावनाओं को मुख्यतः तत्सम शब्द-प्रयोगों से उभारने का साहसपूर्ण प्रयास उसमें है । पुनर्जागरण की मूल भावना से प्रेरित होने के कारण संस्कृत निष्ठ शब्दावली को अपनाती हुई गीतिका की काव्यभाषा सांस्कृतिक परिवेश और सूक्ष्म संवेदनों को अपने भीतर आत्मसात करने में एक बड़ी सीमा तक कामयाब हुई है, और इस प्रकार हिंदी भाषा की व्यंजना क्षमता को जीवंत अनुभव के रूप में प्रस्तुत करती है । इसमें कोई संदेह नहीं कि " गीतिका " में कुछ गीत ऐसे हैं, जिनमें रचना-कौशल गहरे स्तर पर सक्रिय नहीं प्रतीत होता, दार्शनिक चिन्तन का भाषा से वह रचनात्मक रिश्ता नहीं जुड़ता जिसके बल पर वैचारिक दुरूहता कुज्झटिका से आच्छन्न न होकर काव्य के अनुभव में, गीत की अनुभूतिगत सघनता और तीव्रता में पर्यवसित हो जाती है । आत्म-ज्ञान रहस्यानुभूति की विशुद्ध दार्शनिक स्थितियाँ अथवा जीवनानुभूतियों के स्पंदन से असंपृक्त रहकर काव्य के लिए कहाँ तक ग्राह्य हो सकती है, यह एक विचारणीय प्रश्न है ।

अस्तु, जिन गीतों में कविता की रचना-प्रक्रिया जागरूक प्रतीत होती है, उनमें से कुछ गीतों के विश्लेषण के आधार पर निराला के इस " महत्त्वाकांक्षी प्रयोग " की परख की जा सकती है। यह तो स्पष्ट ही है कि " गीतिका " की रचना में निराला की दृष्टि ने संगीत तत्त्व को केन्द्र में रखा है (द्रष्टव्य " गीतिका " की भूमिका)। यह अपने आप में एक पुष्ट अनुभव है कि यह संगीत-तत्त्व भावाभाषा की संभावना को समृद्ध करता चलता है। यों तो खड़ीबोली में नये गीतों की सृष्टि सर्वप्रथम जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से की है, जैसा कि निराला ने स्वयं स्वीकार किया है [1] और प्रसाद के कुछ गीत - " मींड़ मत खिंचे बीन के तार " (" अजातशत्रु "), " मानकी छाया में खेलो ", " अब जीवन बीता जाता है ", " आह ! वेदना मिली विदाई (स्कन्दगुप्त) " तुम कनक किरन के अंतराल में लुक-छिपकर चलते हो क्यों ? इत्यादि कुछ-एक मूड़ में प्रयुक्त कुछ भारती (" चन्द्रगुप्त) अपने रचना-संघटन में बेजोड़ हैं, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि प्रसाद ने गीतों की संभावना को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। तत्सम शब्दों के ज़बर्दस्त आकर्षण से युक्त निराला के गीत संगीत और काव्य को एक सार्थक सर्जनात्मक रिश्ते में बाँधते हैं।

" (प्रिय) यामिनी जागी " गीत अपनी संगीतात्मक लय, मौलिक स्वर-विस्तार में सद्यःजागृता प्रेयसी का एक गतिशील चित्र निर्मित करता है। प्रिय के साथ देर रात तक जागरण की खुमारी को अभिव्यक्त करने के लिए यह शब्द बंध प्रयुक्त हुआ है -

(प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख-
तरुण-अनुरागी।

" (प्रिय) यामिनी जागी के शब्द-प्रयोग में अनुभव की उन्मुक्तता, सघनता की प्रत्यय मिला है। यह लाक्षणिक प्रयोग महज़ छायावादी लाक्षणिकता का कायल नहीं है, वरन् इसके द्वारा रात्रि-जागरण के सुखानुभव का भरपूर आस्वादन संभव

---

१) गीतिका - भूमिका, पृ० ११

हुआ है । यामिनी जाग गई है । सूक्ष्म-अमूर्त रूप के बावजूद 'यामिनी' में रात्रि की संपूर्ण संयोग-क्रियाओं की छवि-छवियाँ गीतिका के पूरे आकार में साथ अंकित की गई है । 'यामिनी' की अर्थ-छायाएँ देखने योग्य हैं, जो उसके किसी अन्य पर्याय में नहीं आ सकती थी - याम- प्रहर-प्रहर वाली - यानी लम्बी रात । संयोग-सुख की दीर्घकालीनता को यह प्रयोग स्वर देता है । प्रेयसी के अलसाये पंकज-नयन अरुण- मुख प्रिय के अनुरागी हो रहे हैं । प्रिय संयोग के बाद की खुमारी का अंकन बहुप्रयुक्त अप्रस्तुत-विधान पर आधारित है - (" अलस- पंकज-दृग") ,जो प्रातःकालीन परिवेश को आलोकित करने के बावजूद अर्थ की गहरी संभावनाएं नहीं उद्भूत करता । यही स्थिति प्रसाद के "बीती विभावरी जाग री " गीत के इस अंश में आ सकती है :

तू अब तक सोई है आली ।
आँखों में भरे विहाग री ।

यहाँ रात्रिकालीन राग " विहाग " का सूक्ष्म-अमूर्त बिंब विभिन्न में गहरे स्तरों पर व्याप्त होकर जागरण सुख की विविध स्थितियों- मादकता, अलसता, खुमारी - छायाएँ उद्भूत करता है । दो कवियों के पर्यवेक्षणों के इस तुलनात्मक विश्लेषण से वह प्रयुक्त अप्रस्तुत और तीसरे, सूक्ष्म-अमूर्त बिंब पर की आस्वादन प्रक्रिया के अंतर को पहिचाना जा सकता है ।

महुआ से तत्काल उठी प्रेयसी के छूटे बालों की " अशेष शोभा " " ए" के स्वर-विस्तार ,अभिधात्मकता के बावजूद शब्दों की तुलनशीलता, लय की साथ निर्योजना में सजीव हो उठी है -

छूटे केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे ,

केश के साथ " अशेष " की जो आन्तरिक तुक है, वह केवल बाह्य अलंकृति नहीं वरन् छूटे केशों की शब्दातीत शोभा को अशेष पद (संभवतः सर्वाधिक उपयुक्त) प्रयोग में बाँधने की प्रक्रिया है । संयोग-सुख से सद्यःनिसृत प्रेयसी की स्थिति से छूटकर छूटे केशों की यह " अशेष शोभा " और भी सार्थक एवं अनातिरंजित प्रतीत होती है । क्रियाओं के शृंगार की सौन्दर्य पर ध्यान दें - " भर रहे " और

क्रिया-कलाप में होती है और जो एक माने में दाम्पत्य-जीवन की पूर्णता है। प्रकृति के व्यापार में 'ज्योति की तन्वी' जैसे प्रयोग के समकक्ष 'गेह में प्रिय स्नेह की बरसात' का प्रयोग अपने मांगलिक संदर्भ के कारण विशिष्ट अर्थवत्ता रखता है और निराला की शब्द-पारखी प्रकृति को प्रकट करता है। अन्तिम पंक्ति 'वासना की मुक्ति, मुक्ता / त्याग में तागी' का आध्यात्मिक संयोजन, कल्पनात्मक पकड़ सर्वथा नवीन है। ऐन्द्रिक दृष्टि और आत्म निष्ठा का संयुक्त प्रभाव इस गीत का है, जो इन विविध शब्द-प्रयोगों में उभर उठा है।

'(प्रिय) यामिनी जागी' की तरह कथा-निर्वाह की सजग चेष्टा 'मौन रही हार' (गीत सं० ६) में देखी जा सकती है, जिसमें परंपरा से व्यापित नव-वधू को नये संदर्भ में रखने की कोशिश की गई है-यानी उसकी द्वैतात्मक मनःस्थिति को उकेरा गया है :

मौन रही हार,
प्रिय पथ पर चलती,
सब कहते शृंगार।

आभूषणों के लिए 'शृंगार' का प्रयोग और उसका नवीन वाक्य-विन्यास ('सब कहते शृंगार') में पिरोया जाना उल्लेखनीय है। आभूषण-भूषणों के बजने से लोक-लाजवश नववधू प्रिय पथ पर जाना छोड़ देती है, लेकिन 'पद रजकर के रस पूर के सब सार' के कारण वह अपनी लज्जा का परित्याग कर पुनः प्रिय के पास जाने लगती है। यहाँ शब्दों की श्लक्ष्ण संगीतात्मकता में नववधू के सारे क्रियाकलाप और उसकी विशिष्ट मनःस्थिति रूपायित हो उठी है।

'फूलों की पंखुड़ियाँ सकल झुकीं' (गीत सं० १७) परिष्कृत पद-विन्यास का एक बढ़िया नमूना है, जो प्रणय के औदात्य को गहरा रंग देता है। फूलों की पंखुड़ियों का इस प्रकार का रूपकात्मक चित्रण है, मानों वे नायिका हों। इसी प्रसंग में 'स्पर्श से लाज लगी' (गीत सं० २८) को लिया जा सकता है, जिसमें नायक के साथ नहीं स्पर्श पर संयत रचनाकार शरीर-सुख की एक विराट् उत्सव

---

१) कामायनी, पृ० ७६

के रूप में लेता है। चुंबन की प्रतिक्रिया का अंकन बड़े सरस रूप में हुआ है -

चुंबन-चकित चतुर्दिक चंचल
हेर, फेर मुख, कर बहु सुख छल,
कभी हास, फिर त्रास, साँस बल
उर-सरिता उमगी।

" चुंबन-चकित ", जैसा शब्द संयोजन प्रिया की आंगिक और मानसिक प्रतिक्रिया को, उसके अक्षत यौवन की कड़ी सुकुमार अभिव्यक्ति देता है। पहली पंक्ति में " च " ध्वनि की आवृत्ति आश्चर्ययुक्त वातावरण के निर्माण में सहायक हुई है। बाकी दोनों पंक्तियों के प्रसंगानुरूप विराम देखने योग्य है। इसके आगे मधुकरी की प्रक्रिया को कवि ने अनुभव के स्तर पर प्रखर रूप में स्थान दिया है -

प्रेम वयन के उठा नयन नव
विधु-चितवन, मन में मधु कलरव
मौन पान करती अधरासव
कण्ठ लगी उमगी।

पहिली पंक्ति में " नयन " के पूर्व " वयन " का प्रयोग आन्तरिक अनुरूपता की निर्मापना करता है, पर यह गौण बात है, विशिष्टता तो और गहराई में पैठने पर सामने आएगी। प्रिया प्रेम की सुनी बातें नव नयनों को उठाती है, जैसे " प्रेम " कोई मूर्त वस्तु हो, जिसका " वयन " किया जाता है। स्थूल वस्तु के संदर्भ में प्रयुक्त " वयन " शब्द का " प्रेम " जैसी सूक्ष्म प्रक्रिया के संदर्भ में काव्यात्मक विन्यास स्पृहणीय है। यहाँ, कहने में अति सामान्य, पर प्रस्तुत संदर्भ में बहुत सार्थक " नव " विशेषण पर विचार करना संगत होगा। नयन नव है, क्योंकि वे प्रेम-वयन करनेवाले हैं। वाक्य-विन्यास में निहित कल्पनात्मक पक्ष द्रष्टव्य है -

प्रेम-वयन के उठा नयन नव,

नव जैसा काव्य-रूढ़ विशेषण - विशेषतः छायावादी काव्य के संदर्भ में - यहाँ प्रस्तुत आलंकारिक रूप से नयनों को प्रत्यग्रता प्रदान करता है। चितवन के लिए विधु का बिंब ('विधु-चितवन') भी ऐसी ही सामग्री से परिपूर्ण है।

तीसरी पंक्ति का " मौन " बड़ी सूक्ष्म, सटीक और सुकुमार व्यंजनाएँ उद्भूत करता है-विशेषतः अधरासव-पान -चुम्बनों के सर्वाधिक उत्तेजक और सुखद अनुभव के संकेत भी । पंक्ति की बड़ी सधी हुई लय है -

मौन पान करती अधरासव
कंठ लगी उरगी ।

'परिमल' में संकलित 'मौन' कविता में " मौन मधु हो जाय " से अनुप्राणित संवेदनशील रचनाकार ही यहाँ मौन की अभिव्यक्ति पा सकता था । अन्तिम वाक्यांश " कंठ लगी उरगी " में गीत की तीव्रता को मूर्धन्य कर दिया गया है । संयोग-सुख के एकान्तिक उत्कर्ष का निकटतम साक्षात्कार " उरगी " शब्द संभव करता है, जहाँ भाषा अनुभव और अभिव्यक्ति का पर्यायात्मक रिश्ता नहीं प्रस्तुत करती, बल्कि और दूरी तक जाकर स्वयं अनुभव बन जाती है । नारी की उत्तेजित वासना का आवर्त " उरगी " में है । यह " उरगी " का तीव्र-प्रखर रूप पूर्ववर्ती " विधु-चितवन " की शीतलता शालीनता और " मौन " (मौन पान करती अधरासव) की विश्रान्ति के " कन्ट्रास्ट " में और भी उभरता है, और इस प्रकार, यौन अनुभवों - लज्जा, निषेध, आकर्षण ,उत्तेजना - के क्रमिक विकास की अभिव्यक्ति देता है । मांसल चुंबन का ऐसा सही साक्षात्कार छायावादी कवियों की कुंठित सूक्ष्मता के परिप्रेक्ष्य में स्पृहणीय लगता है ।

मांसल चुंबन के अंकन के बाद कला की यह परिणति वही कवि कर सकता है, जिसमें रोमान्टिक के साथ क्लासिकल कलाकार की गहरी भंगिमा हो:

मधुर स्नेह के मेघ प्रखरतर,
बरस गये रस-निर्झर ,झर-झर,
उगा अमरांकुर -उर भीतर ;
संसृति भीति भगी ।

" अधरासव " और " उरगी " के उत्तेजक संदर्भ के बाद संयोग की उदात्त प्रतिक्रियाएँ " अमर अंकुर " की अवतारणा में संभव हुई है । मेघ के रूपक का निर्वाह पूरी आध्यात्मिक संवेदनशीलता के साथ कवि ने किया है । अन्तिम पंक्ति

" संसृति - भीति भगी " का उदात्त संवेदन द्रष्टव्य है। कवि ने संयोग के उपभोग को ही नहीं अनुकूल किया ,उसमें निहित ऊर्ध्व-चेतना को भी ग्रहण किया है।

सामान्यतः ऐन्द्रिक रूप से अभिव्यक्त " गीतिका " के गीतों की श्रेणी में 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे " (गीत नं० ४१) एकदम यथार्थ चित्र है, जिसमें होली के नितान्त घरेलू और परिचित रूप में शरीर के उल्लास का अंकन हुआ है। संगीत के स्तर पर यह लोकगीत के करीब पहुँचता है और काव्य के स्तर पर इसकी खूबी यह है कि शरीर-सुख के इस बेलौस चित्र में कहीं भी अनुभव का हल्कापन नहीं है।" गीतिका " के साधारणतः सूक्ष्म-भावभूमि वाले गीतों की तुलना में इस गीत की भाषा देखने योग्य है -

प्रिय-कर-कठिन उरोज-परस कस कसक मसक गई चोली,
एक वसन रह गई मंद हँस अधर दसन अनबोली -
कली-सी काँटे की तोली।

मौलिक और अनौपचारिक रूप पर निर्मित वाक्य के इसी लम्बे विस्तार में " कसक "," मसक "," अनबोली ", तोली " , जैसे ठेठ शब्दों का सधा प्रयोग हिन्दी भाषा की व्यंजना -क्षमता में वृद्धि करता है। इस नितान्त उन्मुक्त अंकन के साथ सूक्ष्म व्यंजनात्मक भाषा में गीत की यह परिणति हुई है -

बीती रात सुखद बातों में प्रात पवन प्रिय डोली,
उठी सँभाल बाल, मुखलट,पट,दीप बुझा हँस बोली -
रह यह एक ठठोली।

यहाँ 'बीती रात " में" बीती " क्रिया-पद की व्यंजनात्मक गहराई देखने योग्य है। वह मधुर रात बीत गई, बिताई नहीं गई। अगर कवि ने" बिताई" क्रिया-पद का प्रयोग किया होता, तो वह अर्थ का द्योतक होता, जैसे प्रिया ने विरक्ति के साथ संयोग-सुख की वह रात बिताई हो। किन्तु " बीती" के प्रयोग में ध्वनि यह है कि वह रात स्वयं बीत गई, मानों प्रिया को उसकी कोई खबर न थी।

है घट उलट उतारी, पथ

पिच्छल, तू गहरी ।

करुण और प्रशान्त लय वाले संगीत की संभावनाओं का इतना दूरगामी उपयोग इन उदाहरणों में देखा जा सकता है । दूसरे गीत " चाल ऐसी मत चलो " में भी खड़ीबोली का सारा कड़ापन निरस्त कर दिया गया है । लय का यह ठहराव समग्र अनुभूति को एक नम्यता प्रदान करता है -

चाल ऐसी मत चलो

दृष्टि से ही गिर रहा जो

सृष्टि से फिर मत छलो ।

" अनामिका " में संकलित अत्यन्त प्रौढ़ गीत-रचना " मरण-दृश्य " की खास ढंग की लय का स्मरण प्रस्तुत गीत करा देता है ।" मरण-दृश्य " में भी ऐसी ही ठहरी-ठहरी लय है -

कहा जो न, कहो ।

नित्य-नूतन, प्राण, अपने

गान रच-रच दो ।

" गीतिका " के प्रस्तुत गीत में " चाल चलना " (चाल ऐसी मत चलो) का ठेठ प्रयोग उल्लेखनीय है ।" सृष्टि" और" दृष्टि " का आंतरिक ध्वनि साम्य-सृष्टि प्रणय वेदना और उसमें प्रिया की निष्ठुरता को बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति देता है । दूसरी तथा तीसरी पंक्ति में क्रमशः" ही" और" फिर " अव्ययों के प्रयोग व्यग्रता को एकान्तिक स्थान पर पहुँचा देते हैं । गीत के अन्तिम चरणों में एक खास ढंग की आत्मीयता शब्दों के रूप में उभरी है । उसमें एक विशिष्ट प्रकाशशीलता है, जिसमें मन की सारी गोपनीयता अपने को खुली देती है-

कह रहा हूँ जो कथा

बन रही उसकी व्यथा ?

या चरण चले रंगे

निवसन पर सवेरा ?

सुख मिला जिससे मिलाया

दुख दे मत मचलो ।

जाता है, जिसमें सांस्कृतिक संदर्भों से अनुप्राणित विराट रूपक का निर्वाह नहीं बन पाता है हुआ है। निराला की विविधरूपा कल्पना जहाँ अनेक निखर उठ गया है। गीत में शाम की सूखी डाल के रूप में जीवन की निराशा और उपेक्षा के संश्लेषण का साक्षात्कार करती है, वहीं "गीतिका" के एक गीत में पतझड़ की सूखी डाल पर वर-रूप में शिव की प्राप्ति के लिए तपस्या, शैल-सुता-पार्वती का रूपक बाँधती है। कला-प्रयास और उदात्त चिन्तन का स्वच्छ रूप इस गीत में देखा जा सकता है। प्रणय की भारतीय परिकल्पना(जिसमें त्याग-तपस्या की अशेष प्रतिष्ठा है, और जो पार्वती के रूपक में बड़े सटीक ढंग से उद्घाटित हुई है), पतन में उत्थान के प्राकृतिक नियम तथा जागरण के नवोल्लास का संयुक्त अनुभव इस गीत की विशेषता है, जिसके आरंभ, मध्य और परिणति का निर्वाह सधी हुई संस्कृत निष्ठ लाक्षणिक भाषा करती है। भाषा और अनुभव के स्तर पर पुनर्जागरण का बहुत भव्य रूप इन गीतों में देखा जा सकता है।

पौराणिक रूपक का ऐसा ही आध्यात्मिक उपयोग पाया भी है, हीरे की खान," (गीत सं० २५) की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है, जिनमें परम-सत्य-सिद्धि की अवस्थिति अपने ही भीतर मानी गयी है और जिसकी उपलब्धि कठोर आत्मिक संयम के बल पर हो सकती है। द्रौपदी-स्वयंवर के लिए आयोजित "मत्स्य वेध" का रूपक कवि की पौराणिक कल्पना-शक्ति का संकेत देता है :

चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार,
बेधना सूक्ष्म मीन शर मार
दिखा के जल में चित्र विचार,
धर्म का आयुध कर में धार,
मिलेगी कृष्णा सिद्धि महान् ;
सोचता क्यों रे नादान ?

सिद्धि का सूक्ष्मानुभव इस रूपक के कारण काव्य के स्तर पर प्राप्त हो सका है। व्यक्तित्व मुक्ति का अनुभव अंतर्साम्य हुए जितनी क्रमागत रीति है, छन्द और प्रतीकों की नियोजना में, वाक्य की आवृत्ति में ध्वनित हो उठा है, वह "गीतिका" के आमुख गीत में देखा जा सकता है और जो इस माने में "गीतिका" का मूल गीत कहा जा सकता है -

" गीतिका " में संकलित जागरण गीतों में निराला ने तत्सम शब्दों का भरपूर और मुक्त उपयोग किया है, जिनमें से एक गीत " जागो जीवन धनिके " को विश्लेषण के लिए लिया जाता है। मन की अधिष्ठात्री के रूप में परिकल्पित लक्ष्मी के परंपरित ,सीमित रूप को न लेकर उसके व्यापक रूप को इस गीत में लिया गया है। लक्ष्मी के लिए नया संबोधन है - जीवन-धनिके।" इसमें जीवन की समूची समृद्धि अनुस्यूत है। अंधकार को निरस्त कर अवतरित होते प्रकाश की नियोजना से जागरण का अंकन कोई नई बात नहीं ,किन्तु प्रस्तुत पंक्तियों में कवि की विराट् बिम्ब योजना द्रष्टव्य है -

दुःख-भार भारत तम-केवल
दीर्घ-सुप्ति से ढके सकल दल,
खोलो उषा-पटल निज कर अयि
छविमयि दिन-मणिके !

भारत के सामूहिक पतन की तीव्र पीड़ा पहली दो पंक्तियों में मूर्त हो उठी है।" दीर्घ सुप्ति से ढके सकल दल " प्रयोग तम-शून्यता को उभारता है। अंतिम पंक्ति में जागरण की कामना मुखरित हुई है।

शब्दों की विशिष्ट नियोजना के कारण कविता में से विराटता किस प्रकार विभूत होती है, यह गीत के अंतिम अंश में देखा जा सकता है :

विश्व-भाव सुख स्वप्न वर्ष भर
अतुल-वर्णी गुण-ग्रीव निरंतर
बरसो छोड़ शेष तन तुम पर
जय-निर्भय कणिके !

जिसमें जीवन-धनिके के विराट रूप, सार्वभौम, शक्ति की प्रतिष्ठा हुई है।" दिन-मणिके "," ज्ञान-विपणि-स्वामिके "," जय-निर्भय-कणिके " की प्रयोग समास-प्रियता और संस्कृत ज्ञान के प्रदर्शन के अभिप्राय से नहीं प्रयुक्त हुए हैं, अपितु इनमें उदात्त चिन्तन, विश्वोन्मुखी चेतना अनुस्यूत है और इस रूप में ये जागरण के विराट् भाव को आत्म विश्वास से मुखरित करते हैं।

('तोड़ती पत्थर')

काव्यभाषा में महत्त्व गठन का है, शब्दावली का नहीं ।
कवि की संवेदना की सही पहचान, उसकी ईमानदारी ,गैर-ईमानदारी की पकड़
केवल शब्दों की तत्सम-तद्भव प्रकृति के अनुशीलन से नहीं की जा सकती । केवल तद्भव
और देशज शब्दों का प्रयोग काव्य में जन-सामान्य की प्रतिष्ठा तब तक नहीं कर
सकता, जब तक उन शब्दों में कवि की संवेदना ने अपनी उष्मा, संप्रेषित न कर दी हो ।
अकिंचन, उपेक्षित को स्थान देने वाली रचना में रचनाकार के संस्कारशील, तत्सम
शब्द-प्रयोग के कारण उस रचना की वस्तुनिष्ठता और साधारण के प्रति कवि-
संवेदना की प्रामाणिकता में संदेह संगत नहीं प्रतीत होता । बहुत संभव है कि
संवेदनशील रचनाकार के उस विशिष्ट प्रयोग में रचनात्मकता का आग्रह हो तथा
आभिजात्य के कुछ-कुछ निकट रहनेवाली वह शब्दावली अकिंचनता के विरोध में
आकर संवेदना की तीव्रता को और भी अधिक उजागर करे । अपनी प्रबुद्ध समीक्षा
शक्ति और यथार्थग्राही दृष्टि के बावजूद दूधनाथसिंह 'तोड़ती पत्थर' (१९३७ ई०)
की मूल दृष्टि का संस्पर्श न कर पाने के कारण उसकी यथार्थ की पकड़ में संदेह करते
हैं और उसकी प्रकृति को छायावादी कल्पनाशीलता से संपृक्त करते हैं - 'मुक्त छंद'
के बावजूद 'तोड़ती पत्थर' या दूसरी कविताओं का संपूर्ण संदर्भ छायावादी है।[1]
'कुकुरमुत्ता' तथा कुछ अन्य कविताओं की तुलना में उन्होंने यह बात कही है ।

'स्नेह-स्वप्न-मग्न, अमल-कोमलतनु-तरुणी' जुही की कली के
निर्माण के साथ निराला काव्य-क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और कवि की परिवेश के प्रति
उन्मुख दृष्टि उसे इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़नेवाली युवती मजदूरिनी के
ऊपर कुछ सोचने को विवश कर देती है। प्रगतिशील काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत
करनेवाले निराला-जन-साधारण से जुड़कर बड़े सहज ढंग में पत्थर तोड़ती युवती
का चित्र निर्मित करते हैं । इस कविता की मूल विशेषता उसमें निहित विपरीत

---

१) 'कुकुरमुत्ता : भूमिका' कुकुरमुत्ता काव्य : आभिजात्य से मुक्ति, पृ० २४

भाव है, जिसे मार्मिक संरचना रूपायित करती है। यह विपरीत भाव विपन्नता और सम्पन्नता को उभार तो देते हैं, पर कविता की भाव-गंभीरता 'पत्थर तोड़ती मजदूरिनी' के भरे यौवन और उसके प्रति स्वयं उसकी तटस्थता (जो वस्तुतः उसकी हीन स्थिति की विवशता का प्रतिफलन है) में निहित है। वैषम्य की व्यंजना कवि आरंभ से ही करता है :

> नहीं छायादार
> पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
> श्याम तन भर बँधा यौवन,
> नत नयन, प्रिय कर्म रत मन
> गुरु हथौड़ा हाथ,
> करती बार-बार प्रहार
> सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार।

'नहीं छायादार पेड़' और 'तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार' का आमना-सामना होता है। दोनों स्थितियों का विरोध कविता की संरचना को समृद्ध बनाता है। श्रेष्ठ कविता में गठन की परिपक्वता होती है, शब्दों की सरलता-कठिनता उसी के आधार पर अपना रूप धारण करती है। निराला जैसे संरचना के महत्व पर बल देनेवाले रचनाकार इस बात को गहराई में महसूस करते हैं। जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे एक पत्र में उन्होंने 'तोड़ती पत्थर' की इसी संरचनागत सूक्ष्मता का उद्घाटन किया है। कुछ अंश उद्धृत है -

'कुछ काव्य समझकर आप जो सरल कहेंगे, मुझे विश्वास नहीं। जो गहन भाव, सीधी भाषा सीधे छन्द में भरता है, वह जौहरबाज है।'[1]

यहाँ 'सीधी भाषा' में 'सीधी' प्रयोग द्रष्टव्य है। सीधी यानी छन्द-विरोध की प्रकृति से रहित भाषा के प्रयोगकर्ता से नहीं है। भाव और भाषा की प्रकृति पर चिन्तन और उनके समतोलन पर बल रचना के साथ गहरे स्तरों से संबद्ध रहनेवाला रचनाकार ही कर सकता है। थोड़ी देर के लिए अभिव्यक्ति की प्रणाली को छोड़ दें, संवेदना को ही दृष्टिपथ में रखें (इस विचार

---

१) 'साहित्य' पत्र में उद्धृत (वर्ष १, अंक ३, १९५०)।

के बावजूद कि (वेदना का साक्षात्कार अभिव्यक्ति ही तो संभव करती है)
तो हम यहाँ वर्णन के भीतर से उभरती हुई व्यंग्य-ध्वनि का स्वर सुन सकेंगे ।
यह छायावादी करुणा नहीं है, जैसा कि दूधनाथसिंह ने कहा है, वरन् उस
सामाजिक-आर्थिक विषमता पर व्यंग्य है, जो मनुष्यता का नारा लगाने के बावजूद
व्यवहार रूप में उसका मूल्य नहीं आँकती । सामने "अट्टालिका-तरुमालिका" है,
पर पत्थर तोड़नेवाली जिस पेड़ के नीचे बैठी है, वह छायादार नहीं है । यह
वैषम्य तिलमिलाहट उत्पन्न करता है, निष्क्रिय करुणा की सृष्टि नहीं करता ।

नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,

'नहीं' का आरंभ में प्रयोग जैसे इस निषेध-भाव को बढ़ा देता है ।
पेड़ छायादार नहीं है, तो न हो। पत्थर तोड़नेवाली को तो उसी के नीचे बैठना है ।
"स्वीकार" में केवल आदमी के अपनी नियति से मूक समझौते की व्यंजना है । इस
सहनशक्ति में एक विचित्र प्रकार की उच्चाशयता के दर्शन करना और उसे छायावाद
के काव्य-आभिजात्य की देन बतलाना ठीक नहीं । यह स्वीकार अर्थ के प्राथमिक
स्तर पर असहाय स्थिति को देता है । जो है, जैसा है, उसको उस मजदूरिनी को
स्वीकारना ही होगा, अन्यथा चारा नहीं । अर्थ के अधिक सूक्ष्म स्तर पर इसकी
व्यंजना और गहरी है, जिसे आगे लिया जाएगा ।

श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन प्रिय कर्म रत मन,

इन दो चरणों के आधार पर कवि की दृष्टि को रोमांटिक
कहा गया है । कहाँ तो विषमता दीनता का चित्र है, कहाँ मजदूरिनी के यौवन का
उल्लेख ! मगर सूक्ष्म विश्लेषण के बाद यह तथाकथित रोमांटिक दृष्टि कविता में
अर्थ-सघनता की सृष्टि करती है और उसे संपन्नता-निर्धनता का वैषम्य प्रस्तुत करने
वाली अनेक कविताओं से पृथक् एक विशिष्ट स्थान देती है । "श्याम तन, भर बँधा
यौवन" पूरी कविता में गूँज छोड़ जाता है । उसका तिरस्कार-सा करता हुआ-
अथवा यों कहें - उसे चुनौती देता हुआ "नत नयन" "प्रिय कर्म-रत-मन" का दृश्य
सामने आ जाता है । वासना से भरे हुए यौवन, ऐन्द्रिक तृप्ति की लालसा को
कोई स्थान नहीं है । इस वैषम्य में, आमने-सामने की टकराहट में जिन्दगी की

पर प्रहार कर रही थी । स्वयं निराला ने जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे पत्रों में इन पंक्तियों को इसी प्रकार व्याख्यायित किया है - जहाँ सीधा वर्णन होने पर भी हथौड़े की चोट पत्थर पर पड़ने पर भी, देखिए, किस तरह अट्टालिका पर पड़ती है ? लेखक के वर्णन प्रकार के कारण व भिन्न है ।[1]

यह व्याख्या संगत है । स्पष्ट है कि यह प्रहार चुनौती है, ललकार है, विवश आत्म-समर्पण नहीं । अगर उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों का अधिक सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाए, तो एक और गहरी ध्वनि निकलती है : जो वह पत्थर तोड़ती युवती अपने " भर बँधा यौवन " पर प्रहार कर रही थी - उस यौवन पर, जो छलकता नहीं, उमड़ता नहीं, जो उसके दैनिक जीवन के अनुभव का अंग नहीं बन पाता है । यह स्मरण रहे कि यौवन के प्रति यह आक्रोश या तटस्थता भी विषमता की कड़ी चोटों का प्रतिफलन है । इस प्रकार भाषिक संरचना का संवेदनशील और साथ ही सूक्ष्म अध्ययन जिस निष्कर्ष पर पहुँचाता है, वह छायावादी शब्द-संयोजन के प्रयोग के बावजूद कवि की वास्तविक पकड़ को ही व्यंजित करता है ।

यहीं " काला-कलूटा रंग और पत्थर तोड़ती हुई मुद्रा " के अधिक न प्रकट होने की शिकायत, तो " श्याम तन भर बँधा यौवन " और " गुरु हथौड़ा हाथ " के परस्पर वैषम्य द्वारा कवि जो की गूँज-अनुगूँज व्यक्त करना चाहता है, वह काली-कलूटी आदि विशेषणों के सपाट कथन में संभव न होता । इस स्पष्टीकरण के बावजूद यदि कोई इस वैषम्य को कविता का दुर्गुण बताये, क्योंकि इसी के कारण भाषा और संवेदना के कलात्मक पक्ष को पकड़ना पड़ता है, तो इसके अतिरिक्त और क्या कहा जाए कि " आदमी " की अभिव्यक्ति में दो विभिन्न जीवन-स्थितियों से सम्बद्ध शब्दावली को ग्रहण करना दुर्गुण नहीं है । इस यथार्थ-परक कविता में आभिजात्य का संस्पर्श यथार्थ को और गहरा रंग देने के लिए है ।

पत्थर तोड़ती बाला की सुकुमारता,
गदराए यौवन को कैसे चुनौती मिलती है :
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार बार प्रहार ।

---

१) " साहित्य " पत्र से उद्धृत (वर्ष १, अंक ३, अक्टूबर, १९५०) ।

चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप
उठी झुलसाती हुई लू
रुई-ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगीं छा गईं
प्रायः हुई दुपहर
वह तोड़ती पत्थर ।

वातावरण की भीषणता - दूसरे शब्दों में यथार्थ की तीव्रता - अपनी सारी प्रभावकता के बावजूद अंत के वाक्य 'वह तोड़ती पत्थर' के सामने कमजोर पड़ जाती है, जैसे उस श्रमिक स्त्री को झुलसाती हुई लू, रुई-ज्यों जलती हुई भू' से कोई प्रयोजन न हो, उसका तो कर्म ही है, चुपचाप कर्म में लीन रहना । पूरे वाक्य की परिसमाप्ति ("'वह तोड़ती पत्थर') में होती है, जो कवि के परम्परागत कौशल को सूचित करती है । ऐसा सघन वाक्य-विन्यास कवि की सघन संवेदना को स्वर देता है । यहाँ 'प्रायः हुई दुपहर' में 'प्रायः' का सौजन्य और मितकथन दुपहर को हल्का नहीं करता, वरन रेखांकित कर देता है, कुछ-कुछ वैसे ही, जैसे अंग्रेजी कविता में 'स्पारली' का प्रयोग कहीं-कहीं ऊर्जा की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है । वर्णन के भीतर से करुणा और व्यंग्य की संपृक्त ध्वनियां सुनाई पड़ती हैं, जो 'श्रमी और स्वामी' के सीधे व्यंग्य से अधिक गहरी और जटिल है । इस बार पूर्ववर्ती 'स्वीकार' (नहीं छायादार पेड़ वह जिसके नीचे बैठी हुई स्वीकार) को इस पूरे बंध से सम्बद्ध करके देखें । इस विशिष्ट संरचना में अर्थात् 'श्याम तन भर बंधा यौवन', और 'रुई-ज्यों जलती हुई भू' के विरोध में 'स्वीकार' की अर्थ-सघनता दृष्टिगोचर होगी, जिसमें कातरता नहीं है, मुक्तचित्त का भाव है, तीखापन है । अन्तिम बंध में चित्र की पूर्ण परिणति तो है ही, पत्थर तोड़नेवाली का 'मैं तोड़ती पत्थर' कहना सारी स्थिति तक पर एक बार फिर सोचने के लिए मजबूर कर देता है -

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार

(हिन्दी काव्य के क्षेत्र में) के प्रणयन का स्पृहणीय साहस न छोड़कर अपनी एक मात्र पुत्री सरोज की असामयिक मृत्यु से उत्पन्न गंभीर विषाद को कविता के स्तर पर निःसंग अभिव्यक्ति दी। कहना न होगा कि इस चुनौती का सामना करते हुए कवि ने अपनी सहृदय संवेदना और अपूर्व मानसिक संयम का परिचय दिया है। निराला के इसी व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी ने जो बात कही है, वह 'सरोज-स्मृति' कविता के प्रसंग में बड़ी सटीक प्रतीत होती है -

"कविताओं के भीतर से जितना प्रशस्त तथा अस्खलित व्यक्तित्व निराला जी का है, उतना न प्रसाद जी का है न पंत जी का है। यह निराला जी की समुन्नत काव्य-साधना का प्रमाण है।"[१]

'सरोज-स्मृति' में परम्परागत काव्यपट की भित्ति पर कवि ने वैयक्तिक व्यथा को विविध जीवन-स्थितियों की सापेक्षता में अभिव्यक्ति दी है, और इस प्रकार शोक-गीति की सत्ता से युक्त इस कविता में जीवन के संघर्ष से उभरकर आती हुई साहस, विद्रोह, वात्सल्य, अवसाद, ग्लानि की मिली-जुली अनुभूतियाँ उद्भूत होती हैं।

कविता का आरंभ सरोज के देहावसान के चित्रण से होता है, और कवि की दार्शनिक दृष्टि इस देहावसान को शोक की भावनात्मक तीव्रता से परे दिव्य स्तर पर पहुँचा देती है -

ऊनविंश पर जो प्रथम चरण
तेरा वह जीवन-सिन्धु-तरण
तनये, ली कर दृक्पात तरुण
जनक से जन्म की विदा अरुण
गीते मेरी, तज रूप-नाम
वर लिया अमर शाश्वत विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय

---

१) कवि निराला, पृ० २८

" ऊनविंश पर जो प्रथम चरण " की अतीत जीवन्तता के साथ " तनये , लीकर दृक्पात तरुण " की विषमता को रचनेवाला कवि प्रौढ़ शिल्प का रचयिता है । इसमें का यह ठण्डापन कवि की निर्वैयक्तिकता को स्पष्ट देता है । सरोज के कुछ अठारह वर्षों के जीवन को गीता के " अष्टदशाध्याय " का रूप देकर कवि ने सरोज को " गीते " संबोधन प्रदान किया है, जो इस वैयक्तिक दुःख को सांस्कृतिक संदर्भ से संयुक्त कर देता है । विवेचन के इस बिन्दु पर यह स्मरण रखना होगा कि यह दार्शनिकता निष्क्रिय नहीं है, जिसमें जीवनानुभूतियों की उष्णता को महसूस किये बिना तटस्थता की मुद्रा ग्रहण की जाती है, वरन् सच्चे जीवन-द्रष्टा का " चिन्तन " है और जैसा कि हम आगे देखेंगे, यह कविता की संरचना का अंग है, क्योंकि इस दार्शनिक दृष्टि के विपरीत रूप में एकाकी और सामंजस्यहीन पिता की ममता और अवसाद में अधिक सघनता आ जाती है ।

आगे पुत्री के प्रयाण पर एक अतिरिक्त सूक्ष्म और मार्मिक कल्पना करके कवि ने अपने जीवन के दैन्य को गहरा रंग दिया है, यद्यपि भावावेग उमड़ आया है -

जीवित कवि ने, इस शर वधिर
छोड़ कर पिता को पृथ्वी पर
तू गयी स्वर्ग, क्या यह विचार
जब पिता करेंगे मार्ग पार
यह अक्षम अति, तब मैं सक्षम,
तारूँगी कर गह दुस्तर तम ?
कहता तेरा प्रयाण सविनय
कोई न अन्य था भावोदय ।

सरोज के लिए " जीवित कविते ," संबोधन अपने में बहुत मार्मिक है - वह सरोज, जिसका सारा जीवन " जीवित कविता " रहा, इस रूप में प्रस्तुत कविता को अतिरिक्त ऊष्मा देती है । यहाँ " अक्षम " प्रयोग निराला की जीवन-स्थिति (जिसका अभी उल्लेख है) के सन्दर्भ में उनकी उत्तरदायित्व-निर्वाह की असमर्थता की ओर संकेत करता है । सरोज के संदर्भ में " सक्षम " शब्द इस असमर्थता को और गहराई देता है ।

इसके बाद के कुछ अंशों में पुत्री-हितविहीन पिता की आन्तरिक व्यथा और आर्थिक क्षेत्र के अन्याय को निराला ने बहुत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। कुछ अंश द्रष्टव्य है -

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका।
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर
शुचिते, पहनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख।

प्रणय के प्रसंग में तो औरों कवियों ने अपने व्यक्तित्व के पक्षों का प्रकाशन किया था, चाहे वह प्रकाशन प्रत्यक्ष रहा हो या अप्रत्यक्ष, परन्तु सही अर्थों में ईमानदारी का निर्वाह करनेवाले " संकुचित काय " आदमी के प्रति भाग्य की निर्ममता की बात निराला जैसा भुक्तभोगी और साथ-ही साहसी कवि ही कर सकता था। निरर्थक में अर्थहीनता और धनाभाव दोनों की व्यंजना है। सीधे आदमी की जिन्दगी (छल, अन्याय, प्रतिस्पर्द्धा के साम्राज्य में) कितनी विडम्बनापूर्ण होती है, इसका पूरा इतिहास ये आठ पंक्तियाँ कह देती हैं। पुत्री को " चीनांशुक " पहनाना और उसे " दधिमुख " रखना उस पिता के लिए कैसे सुगम हो सकता था, जो " हारता रहा मैं स्वार्थ समर " था। " स्वार्थ-समर " और " चीनांशुक " - दधिमुख की टकराहट से कवि की अनेक गूँज अनुगूँज उत्पन्न होती है।

भौतिक जीवन की सुख-सुविधाओं के अभाव का बोध किन्तु आत्मिक उन्नयन पर दीप्त संतोष-भाव (जो अपेक्षाकृत अधिक स्थायी है) - दो स्वरों की टकराहट निराला की अनेक कविताओं में सुनाई पड़ती। यहाँ अपनी साधनहीनता के अनुशीलन को निराला जो परिणति देते हैं, वह द्रष्टव्य है -

वह नहीं पार, मेरी भास्वर
वह रत्नाकर-लोकोत्तर पर।"

अन्यथा, जहाँ है भाव शुद्ध
साहित्य-कला कौशल प्रबुद्ध,
हैं दिए हुए मेरे प्रमाण
कुछ वहाँ, प्राप्ति को समाधान
पार्श्व में अन्य रख कुशल हस्त
गद्य में पद्य में समाभ्यस्त ।

साहित्यिक जीवन के विविध-घात-प्रतिघातों के बीच अपने कभी न झुकनेवाले व्यक्तित्व का आख्यान कवि ने इन पंक्तियों में किया है :-

एक साथ जब शत घात घूर्ण
आते थे मुझ पर तुले तूर्ण ।
देखता रहा मैं खड़ा अपल
वह शर-क्षेप, वह रण-कौशल

उक्ति का सारी प्रखरता, कविता के भावपूर्ण स्नेह-भाव की सबकी इच्छाएँ और दृष्टि की छलक की अनुभूति और अपने अस्खलित व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के प्रसंग में उनका उल्लेख निराला की संवेदनात्मक पकड़ और सटीक वर्णन-पद्धति का सूचक है -

पुष्ट थी, पिता गेह में स्थिर,
छोड़ने के प्रथम जीर्ण अजिर ।
आँसुओं सजल दृष्टि की छलक
पूरी न हुई जो रही कलक
प्राणों की प्राणों से दबकर
कहती लघु-लघु उसाँस में भर :
समझता हुआ मैं रहा देख,
हटती भी पथ पर दृष्टि टेक ।

लोक-गीत के इस सघन वातावरण में निराला अभिव्यक्ति की सामान्य-सी प्रतीत होनेवाली (पर वस्तुतः बड़ी कठिन) प्रणाली का उपयोग करते हैं, जो उनकी भावात्मक कविता के शिल्प की एक प्रतिनिधि विशेषता है । उसका

साक्षात्कार युग-कवि के प्रति मतानुशासित विचारों के पोषक साहित्यिक व्यक्तियों द्वारा उपेक्षापूर्ण व्यवहार में किया जा सकता है :-

लौटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश
बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुन-गुनकर
संपादक के गुण, यथाभ्यास
पास की नोचता हुआ घास
अज्ञात फेंकता इधर-उधर
भाव की चढ़ी पूजा उन पर ।

' व्यतीत करता था गुन गुनकर / संपादक के गुण , ' में जो हल्का विनोद-भाव है, वह कवि जीवन के अवसाद को और तीखा कर देता है । अन्तिम तीन पंक्तियों में घास नोचने और उन्हें इधर-उधर फेंकने का उल्लेख कवि के मानसिक द्वन्द्व को स्वर देता है । यहाँ उपचेतन की कुछ हल्की-फुल्की क्रियाओं को अंकित किया गया है ।

निराला ने अपने व्यक्तिगत जीवन में विकृतियों पर प्रभूत शाब्दिक प्रहार ही नहीं किया, अपितु अपने आचरण से उसे चरितार्थ भी किया । यह ऐसा प्रसंग है, जिसमें पत्नी की मृत्यु से रुआँसा कवि अपनी कुण्डली में दूसरे विवाह का उल्लेख देखकर अपनी प्रतिक्रिया करता है :-

पढ़ लिखे हुए शुभ दो विवाह
हँसता था, मन में बढ़ी चाह
खण्डित करने को भाग्य-अंक
देखा भविष्य के प्रति अशंक ।

पुनर्विवाह न करने के विचार को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने भाग्य-अंक को खण्डित करना चाहा । इस विचार के बाद फिर निराला को कोई नहीं डिगा सकता था । किन्तु शरीर का आकर्षण प्रबल होता है, एक

फिर सोचनी पड़ी । मन की इस क्रिया को पुत्री सरोज की ममता एवं मोह दे देती है । सामान्य वर्णन की भाषा में पूरी प्रभावमयता के साथ समूची स्थिति का अंकन सराहनीय है :

> दृष्टि थी शिथिल
> आयी पुतली तू खिल खिल खिल
> हँसती, मैं हुआ पुनः चेतन
> सोचता हुआ विवाह बंधन ।

यहाँ ' शिथिल ' और ' खिल-खिल-खिल ' की तुकें बड़ी अर्थपूर्ण हैं । सारगर्भित शब्दों में निराला ने गंभीर बात कही है । सारा मन में भर आकर्षण / उन नयनों का " से संचालित होकर वे पुनर्विवाह के प्रश्न को एकबारगी टाल नहीं सकते थे । पर आयी पुतली तू खिल-खिल-खिल / हँसती " के चित्र ने उन्हें एक स्थायी निर्णय को बाध्य कर दिया, क्योंकि वे इस तथ्य से अवगत थे कि कुछ पुतली का यह " खिल-खिल-खिल " हास्य पिता के पुनर्विवाह (दूसरे रूप में अपनी सुख-सुविधा की प्राथमिकता) द्वारा मन्द हो जायगा । अन्त में विवाह को बंधन मानते हुए कवि ने स्थिति के द्वन्द्व को इस प्रकार समाप्त किया है -

> कुण्डली दिखा, बोला — " ए - लो ""
> आयी तू दिया कहा, "" खेलो ""

" सरोज स्मृति " कविता जहाँ एक ओर कवि के रूढ़ि-विरोधी अक्खड़ व्यक्तित्व को व्यक्त करती है, वहीं वह उसके वात्सल्य भावना से परिपूर्ण मनोजगत का अविस्मरणीय रूप प्रस्तुत करती है (जो एक माने में अपेक्षाकृत अधिक स्पृहणीय उपलब्धि है) । खासकर सरोज के यौवन-चित्रण से है । पुत्री से प्रत्यक्ष संबंध होने के कारण चित्रण में विशेष सावधानी रखनी थी । यों कवि चाहता, तो इस प्रसंग की अवतारणा ही न करता , बड़ी निर्दोष रीति से इस नाजुक स्थिति को पार कर देता । पर निराला भी अन्य बहुत-सी बातों में अपवाद थे, वैसे ही पुत्री के सौन्दर्य और भाव-जगत के परिवर्तन के अंकन में भी । कहना न होगा कि अंकन की यह सफलता कवि की समर्थ भाषा का प्रतिफलन है ।

" बादलराग " और " जागो फिर एक बार " (२) के लोकवन्दी गायक निराला अपनी कन्या के यौवन का चित्रण कितने कोमल, सूक्ष्म और सुकुमार चित्रों के माध्यम से करते हैं, यह द्रष्टव्य है :-

धीरे-धीरे फिर बढ़ा चरण ,
बाल्य की केलियों का प्रांगण ।
कर पार, कुंज-तारुण्य सुघर,
आयी ,लावण्य-भार थर-थर,
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकौश नव वीणा पर ।

धीरे-धीरे परिवर्धमान यौवन का अंकन जिस सुकुमारता की अपेक्षा रखता है, वह तो निराला की अपनी अभिव्यक्ति में निहित शक्ति ही थी, इसके साथ कन्या का पिता होने के कारण वह अंकन उदात्त रह सके, इसका भी पूरा-पूरा ध्यान रखना था । नव वीणा पर गाए जानेवाला मालकौश का बिंब कवि के दोनों मंतव्यों को पूर्ण करता है । वीणा के साथ " नव " विशेषण के प्रयोग में सरोज के प्रस्फुट यौवन की व्यंजना है । लावण्य-भार से कोमलता पर थर-थर काँपने में एक बंकिम सौन्दर्य है, जो युवावस्था में क्रमशः स्थान करती सुन्दरता को द्योतित करता है । मालकौश गंभीर भावों का मृदु राग है । इसमें कोमल स्वरों का प्रयोग होता है । इस राग से सरोज के लावण्य को उपमित कर कवि ने युवावस्था की संकोच-मिश्रित गंभीरता, स्वर की मृदुता को अभिव्यक्ति दी है ।

यह कवि-दृष्टि का साक्ष्य और शिल्प पर अखण्ड अधिकार है, जिसके परिणामस्वरूप वह एक बिंब का प्रयोग कर वर्णन को विराम नहीं दे देता, अपितु और आगे बढ़ता है :-

नैश स्वप्न ज्यों तू मंद-मंद
फूटी ऊषा जागरण-छंद,
काँपी भर निज आलोक-भार
काँपे वन, काँपा दिक्‌ प्रसार।
परिचय-परिचय पर खिला सकल
नभ, पृथ्वी, द्रुम, कलि-किसलय-दल

दिव्यता और माधुरी के अधिक गहरे तल में कवि पैठा है । परिवर्धमान यौवन के लिए मेघ-स्वप्न का बिंब इसी कोटि का है । मेघ स्वप्न प्रातःकालीन जागरण के छंद में परिणत हो जाता है । कवि-दृष्टि सरोज के यौवन-जागरण को भी इसी रूप में देखती है । प्रातःकालीन जागरण के गीत की भाँति लावण्य-भार से झुका यह यौवन समूची सृष्टि से संपृक्त है । कन्या के रूप का यह सृष्टिव्यापी सौन्दर्य अंकित कर कवि ने औदात्य को अक्षुण्ण रखा है । मृत कन्या की स्मृति के आवेग से तटस्थ होकर ही ऐसा चित्रण किया जा सकता था ।

यह सौन्दर्यांकन अपूर्ण ही रह जाता, अगर कवि पुत्री के शारीरिक विकास के साथ भाव-जगत के परिवर्तन को न पकड़ता । कवि ने इस सूत्र को पकड़ा है -

> क्या दृष्टि । अतल की सिक्त धार
> ज्यों भोगावती उठी अपार ।
> उमड़ता ऊर्ध्व को कल सलील
> जल टलमल करता नील-नील,
> पर बँधा देह के दिव्य बाँध,
> छलकता दृगों से साथ-साथ ।

" क्या दृष्टि " के बाद का विस्मय-बोधक विराम बड़ा ही अर्थव्यंजक और सुकुमार है - जो कवि शब्दों में उस भाव की अभिव्यक्ति नहीं दे सकता । प्रसाद के द्वारा श्रद्धा के सौन्दर्यांकन में - आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम । बीच जब घिरते हों घनश्याम " ("कामायनी") में " आह " और " वह मुख " के बाद के विराम इसी स्थिति के द्योतक हैं ।

इस प्रकार भोगावती के रूप में कवि भी अपनी अपार अभिव्यक्ति-क्षमता की व्यंजना करता है । बिंब के मार्मिक-चयन में पर्यवसान का यह श्रेष्ठ बढ़िया उदाहरण है ।" भोगावती " प्रयोग ही अर्थ से अत्यन्त सार्थक है । पाताल गंगा कहने से वह बात नहीं आती । भोगावती की अपार जल-राशि अपनी सुन्दर गति से ऊपर उठती हुई जैसे पर्वत को छू लेना चाहती है । पर पृथ्वी की एक निश्चित सीमा रूपी बाँध से बँध जाने के कारण वह छलककर मंद गति से छलकने लगती है ।

यौवन-काल में एक ओर चंचलता, उत्सुकता और उल्लास रहता है, दूसरी ओर अवस्था-जन्य लज्जा भावों पर अंकुश रखती है। इन दो विपरीत स्थितियों की एक साथ-अवस्थिति से युक्त यौवन और भोलापन के चित्र ने बड़ी सुकुमारता से अभिव्यक्ति दी है। चित्र और मांसिक वर्णन की संपृक्त स्थिति इस रूप में देखी जा सकती है कि सरोज के तारुण्य की मनःस्थिति और उभार भौगोलिकी की उत्कट तथा भाव का संश्लेषण हो गया है :

पर बँधा देह के दिव्य-बाँध
छलकता दृगों से साथ-साथ।

ये सारे अंश कवि की कल्पनात्मक पकड़ के बढ़िया उदाहरण हैं। सरोज (या व्यापक रूप में यौवन-काल) की लज्जा स्थिति को, क्रियान्वित चेष्टाओं को बड़े संवेदनशील ढंग से कवि ने प्रस्तुत किया है। इस स्थिति को जयशंकर प्रसाद ने लज्जा के प्रसंग में विशदता और नाटकीयता के साथ अंकित किया है। " स्थिति बन जाती है तरल हँसी / नयनों में भर कर बाँकपना " या " छूने में हिचक देखने में / पलकें आँखों पर झुकती हैं " सुन्दर उदाहरण हैं।

पुत्री सरोज के सन्दर्भ में " बाँध " के साथ " दिव्य " विशेषण साभिप्राय है। प्रेम कैसे छलकता है ? साथ-साथ। दृष्टि की सूक्ष्मता ही ऐसे शब्द-प्रयोग कर सकती है। निराला की छंद की पकड़ (संवेदना के परिप्रेक्ष्य में) कितनी सूक्ष्म थी, यह प्रस्तुत अंश में द्रष्टव्य है। बढ़ के टलकर आने, देह के दिव्य बाँध को बाँधने," दृगों के साथ-साथ छलकने" की वास्तविकता को छंद की गति सजीव कर देती है। छंद गत इस पकड़ के संदर्भ में " राम की शक्ति पूजा " की ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं, जिनमें भाव और छंद-गति का संश्लेषण हो गया है -

ज्योतिः-प्रपात-स्वर्गीय, - ज्ञात-छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कंपन तुरीय।

अंत में, सरोज की मुग्ध मूर्ति को कवि दिवंगता पत्नी की स्मृति से संपृक्त कर देता है। पुत्री और पत्नी के कण्ठ-स्वर की संगति का अनुभव निराला का अपना है -

फूटा कैसा प्रिय कण्ठ: - स्वर
माँ की मधुरिमा व्यंजना भर।

तुम्हीं गाती हो अपना गान,
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान ।

(" गीतिका ", गीत सं० ५५)

किन्तु पुत्री के संदर्भ में यह उनकी दृष्टि की तटस्थता और व्यापकता का प्रतीक है । " कलाकार जितना ही पूर्ण होगा, भोगने वाले और रचनेवाली मनीषा का पृथकत्व उसमें उतना ही अधिक होगा । इलियट का यह कथन निराला के अन्तर्गत " सरोज-स्मृति " पर जितना लागू होता है, उतना उनकी अन्य किसी कविता पर नहीं, क्योंकि इस कविता की प्रेरणा भोक्ता की अपनी तीव्र वस्तु है, पर जो रचनाकार की तटस्थता प्रशंसनीय है । पुत्री के प्रति यह तटस्थ दृष्टि ही आगे चलकर " तुलसीदास " काव्य की रत्नावली का इतना तेजदीप्त व्यक्तित्व प्रस्तुत कर सकती थी -

जागा, जागा, संस्कार प्रबल,
रे गया काम तत्क्षण वह जल,
देखा वामा, वह न थी अनल प्रतिमा वह,

" सरोज स्मृति " में आगे का वर्णन द्रष्टव्य है :

उन्मन-गुंज सज खिला कुंज
तरु पल्लव-कलिदल पुंज-पुंज
बह चली एक अज्ञात बात
चूमती केश-मृदु नवल गात,

" बह चली एक अज्ञात बात " में दीर्घ स्वरों की आवृत्ति से वायु के अबाध प्रवाह को मूर्त किया गया है । " अज्ञात बात " का प्रयोग बड़ा-ही सूक्ष्म और सुन्दर है । यौवन की अस्पष्ट और सूक्ष्म भावनाओं को कला के स्तर पर उतने ही अस्पष्ट और सूक्ष्म रूप में कवि ने चित्रित किया है । संवेदना और भाषा की संपृक्त प्रकृति की पहचान ऐसे ही अंशों में की जा सकती है । शारीरिक और मानसिक छवि के चित्रण का संयोजन कवि जिस ढंग से करता है, वह उसकी नैतिकता और मन की आंतरिक एकता का परिचायक है :-

देखती सकल निष्पलक नयन
तू, समझा मैं तेरा जीवन ।

ऊपरी दृष्टि से साधारण-सी प्रतीत होनेवाली, किन्तु कविता की विशिष्ट संरचना से अभिराम इन दो पंक्तियों के मूल में कवि ने यौवन के प्रति पुत्री और पिता की भावात्मक प्रतिक्रिया गूँथ दी है। सरोज अपने समस्त शारीरिक और भाव-जगत् संबंधी परिवर्तन को देख रही है, समझ रही है, और पिता " समझा मैं तेरा जीवन " के रूप में पुत्री के प्रति अपना उत्तरदायित्व महसूस करने लगा है, जिसका स्पष्ट संकेत सरोज की नानी के कथन में मिलता है -

सासु ने कहा उस एक दिवस

भैया अब नहीं हमारा बस

पालना-पोसना रहा काम

देना सरोज को धन्यधाम

शुचि वर के कर कुलीन लखकर

है काम तुम्हारा धर्मोत्तर

कवि और उसके परिवेश का तनाव पुनः आरम्भ हो जाता है। सरोज का विवाह करना है, किन्तु कान्यकुब्ज -कुल की रूढ़ियों और वैवाहिक रीतियों की कट्टरता से कवि की उन्मुक्त मान्यताएँ मेल नहीं खातीं -

सोचा मन में हत बार-बार

ये कान्यकुब्ज कुल-कुलांगार

खाकर पत्तल में करें छेद

इनके कर कन्या अर्थ-खेद

इस विषय-बेलि में विष ही फल

यह दग्ध मरुस्थल नहीं सुजल।

परिवेश के प्रति सजग दृष्टि के बिना इन पंक्तियों की अवतारणा नहीं हो सकती थी। शब्दों का विन्यास कवि के आक्रोश की उन्मुक्त अभिव्यक्ति कर देता है। " कुलांगार ", " खाकर पत्तल में करें छेद " जैसे प्रयोग व्यक्तिगत द्वेष के परिचायक नहीं हैं, अपितु समाज की गतानुगतिकता, पाखण्ड पर प्रहार करते हैं। अंतिम दो पंक्तियों का तीखापन देखने योग्य है। मानव की परिसीमित मनोवृत्ति से व्याकुल निराला के मन में एक बार फिर समझौते का विचार उठता है - जैसे पहले

पुनर्विवाह की ओर उनका मन कुछ झुका था, किन्तु व्यक्तित्व की प्रखर चेतना उन्हें अपनी ओर खींच लेती है :-

फिर सोचा - मेरे पूर्वजगण
गुजरे जिस राह वही शोभन
होगा, मुझको, यह लोकरीति
कर दूँ पूरी, गो नहीं भीति

कुछ मुझे तोड़ते गत विचार
पर पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते मैं हूँ अक्षम, निश्चय,
आयेगी मुझमें नहीं विनय
उतनी जो सीमा करे पार
सौहार्द्र-बंध की, निराधार ।

भाषा की एक विशिष्ट बानगी दिखलाने के लिए यह पूरा अंश उद्धृत किया गया है । निराला ने जहाँ क्लैसिकल काव्य की परिष्कृत भाषा को उसकी पूर्ण संभावना पर पहुँचाया है, वहीं भाषा के बोलचाल के रूप को पूरे आत्म-विश्वास के साथ अपनाया है । सच तो यह है कि संवेदना और भाषा की सापेक्ष प्रकृति को जितने व्यापक संदर्भ में निराला ने पहचाना है और उसके अनुरूप काव्य-रचना की है, वह आधुनिक भाव-बोध में स्मरणीय है । यों प्रसाद का काव्य भी अनुभव और अभिव्यक्ति की संपृक्ति को प्रत्यय रूप में अग्रणी है ; किन्तु यह अग्रगामिता एक विशिष्ट स्तर की है, उसमें निराला जैसी विविधता नहीं । यह दूसरी बात है कि उस विशिष्ट स्तर को प्रसाद ने उसकी पूरी गहराई में संस्पर्श किया है । "सरोज-स्मृति" के इस अंश में एक पंक्ति को तोड़कर दूसरी पंक्ति में पहुँचने की जो प्रक्रिया है, वह प्रवाह की सृष्टि तो करती ही है, उसके अतिरिक्त निराला के "गत विचार जो तोड़ते" के निश्चय को भी अभिव्यक्ति देती है । "गो" के साथ भीति ("गो नहीं भीति") का प्रयोग साभिप्राय है । "गो" ठेठ बोली का अव्यय है, "भीति" संस्कृत की भयवाची संज्ञा । इन दोनों की समीपता से जहाँ बातचीत की-सी सहजता संभव हुई है, वहीं प्राचीन भार को ढोने में अक्षम

(सूक्ष्म स्तर पर शब्दों के विशुद्ध प्रयोग की गतिशीलता के प्रति सजग रहकर) अतएव गत विचार को तोड़ने के लिए उद्धत कवि के सबल व्यक्तित्व को स्वर मिला है। और यह शाब्दिक प्रयोग अपने में कवि की मानसिक मनोवृत्ति को पुष्ट करता है। अन्तिम पंक्तियों का विपरीत व्यंग्य द्रष्टव्य है -

+ + + + निश्चय
जायेगी झुकायें नहीं विनय
उतरी जो रेखा के पार
सीमाएँ-बंध की, निराधार।

वह विनय, वह समझौता, वह स्वीकृति, जो पूर्व-परम्परा के स्वर-में-स्वर मिलाती है, निराला को मान्य नहीं। वह निराधार है। ऐसी गतानुगतिक विनय-भावना से तथाकथित उद्धत स्वातन्त्र्य कवि के लिए अधिक वरेण्य है।

इसके पश्चात् अपने गठन में एकदम आधुनिक और प्रयोगवादी भाषा के जिस प्रतीक का प्रयोग करते हैं, वह रूढ़ियों को ठोकर लगाते हुए उनके विद्रोहमान व्यक्तित्व की बड़ी सशक्त अभिव्यक्ति करता है। अपनी इन पंक्तियों के लिए 'सरोज-स्मृति' भाषा और संवेदना दोनों स्तरों पर विशेष उल्लेखनीय है -

ये जो यमुना के-से कछार
पद-फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यों, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर-गन्ध,
उन चरणों को मैं यथा अंध,
कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूँ, ऐसी नहीं शक्ति
ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह,
करने की मुझको नहीं चाह,,

इस व्यंग्यपूर्ण प्रयोगधर्मा कवि की अभी पढ़कर 'कुकुरमुत्ता'

देखा विवाह आमूल नवल
तुझ पर शुभ पड़ा कलश का जल

" कलश का जल " अपनी विशिष्ट सन्दर्भ में मांगलिक वातावरण का प्रतीक है । एक बार पुनः निराला नववधू के रूप में कन्या की सूक्ष्म छवि अंकित करते हैं :-

देखती मुझे तू हँसी मंद
होठों में बिजली फँसी स्पंद
उर में भर झूली छवि सुन्दर
प्रिय की अशब्द श्रृंगार-मुखर

विवाह के समय नववधू की सुकुमार मनःस्थिति को कवि ने सुकुमार शिल्प में रूपायित किया है । कन्या के हृदय में एक स्पंदन भर कर पति की सुन्दर छवि झूलने लगी । यहाँ 'झूली' के प्रयोग से उस छवि के साथ सरोज की रागात्मक तल्लीनता व्यंजित होती है । साथ-ही एक गतिशील बिंब की रचना हुई है । वह छवि भी ऐसी थी - " स्पंद उर में भर" ---- जैसे सरोज के पति का मौन श्रृंगार मुखरित हुआ हो । पुनः कवि इस अंकन को विस्तार देता है -

तू खुली एक उच्छ्वास-संग
विश्वास-स्तब्ध बँध अंग-अंग
नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर थर-थर-थर ।

सुकुमार शब्द-विन्यास और मृदु व्यंजनों का प्रयोग वधू के मन, नयन, अधर में धीरे-धीरे स्थान बनाते विश्वास और प्रेम के भावों को स्वर देता है । यह निराला की विकसित भाषा और संवेदना है, जिसके परिणामस्वरूप वे एक ओर " जुही की कली " में उद्दाम प्रणयानुभूति को मूर्त कर सके हैं, और दूसरी ओर पुत्री के प्रीति-भाव को दिव्य संयम शीलता से प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं । श्रेष्ठ कलाकार के लिए सहजता को अपनाना हर प्रसंग में सार्थक होता है । निराला यहाँ की आठ पंक्तियों में वधू-वेश में सरोज के प्रति अपनी विराट-सुकुमार भाव को व्यक्त करते हैं ।

देखा मैंने वह मूर्ति -धीति
मेरे वसंत की प्रथम गीति-
श्रृंगार रहा जो निराकार,
रस कविता में उच्छ्वसितधार
गाया स्वर्गीय प्रिया-संग,
भरता प्राणों में राग-रंग
रति-रूप प्राप्त कर रहा वही,
आकाश बदलकर बना मही ।

बड़े दिव्य स्तर पर निराला ने कन्या का वधू रूप प्रतिष्ठित किया है । वे इस दृश्य को स्वर्गीया प्रिया की स्मृति से संपृक्त कर अपनी उदात्त मनोवृत्ति का संकेत देते हैं । यद्यपि रवीन्द्र के स्वरों में यहाँ न माता है न कन्या । है, वह विराट् सौन्दर्य से युक्त है ।[1] निराला ने इसके लिए बड़ा कोमल और भावपूर्ण चित्र दिया है - " मेरे वसंत की प्रथम गीति-श्रृंगार ", जिसे कवि ने अपनी स्वर्गीया प्रिया के साथ गाया है । इसी से संबद्ध यह करुणाजनक दृश्य आता है -

हो गया ब्याह आत्मीय स्वजन
कोई थे नहीं, न आमन्त्रण
था भेजा गया, विवाह-राग
भर रहा न घर निशि-दिवस जाग
प्रिय मौन एक संगीत भरा
नवजीवन के स्वर पर उतरा ।

मौन की प्रभावमयता निशि-दिवस जाग कर भरनेवाले विवाह-राग से कहीं अधिक तीव्र और गहरी हो गई है, क्योंकि उसमें पिता के स्नेह का स्रोत उमड़ रहा है । मुखरता के बजाय मौन की उपस्थिति भी एकाकी पिता के एकान्त ममत्व की प्रतीक है ।

पूरी निर्ममता से पुत्री के जीवन-क्रम को अंकित करने के बाद निराला उसके निधन की दुःखद घटना को कुछ ही पंक्तियों में स्थान देते हैं ।

---

१) नहि माता, नहि कन्या, नहि वधू, सुंदरी रूपसी,
हे नन्दनवासिनी उर्वशी ।

इसकी विफलताओं, वंचनाओं, प्रहारों की अभिव्यक्ति के बाद पुत्री की मृत्यु, से उत्पन्न शोकानुभूति केवल उन दो पंक्तियों में स्थान पाती है, जो कवि की गंभीर निराशा-वृत्ति को द्योतित करती हैं -

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।

इस अन्तिम अंश में भावना की अनुभूतिगत तीव्रता है, जो करुणावस्था के वातावरण को दीप्त कर देती है, पर प्रगल्भ हुए बिना - 'क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।' पर इसके बाद भी स्नेह-कातर पिता अपने को और अधिक वश में नहीं रख पाता :

हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हों भ्रष्ट शीत के-से शतदल ।
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण ।

ऊपर- ऊपर से प्रतीत होनेवाली इस भावुक सरलता में सतत संघर्षशील कवि की विचलित मनःस्थिति और क्षोभ-भाव की व्यंजना हुई है । ईमानदारी, सिद्धान्त प्रियता, सीधेपन की पराजय के विडम्बनापूर्ण भौतिक सत्य को निराला ने उजागर किया है । वे यथार्थ की इसी गहरी चोट से पीड़ित होकर वर्तमान कर्मों पर वज्रपात होने की कामना करते हैं और मृतकन्या का तर्पण पिछले कर्मों से करते हैं । कविता के आरंभिक अंश का दार्शनिक आलोक यथार्थ की इस पहचान के आगे भी उद्भासित हो गया है । यह दर्शन की अधिक मानवीय और लौकिक काव्यात्मक परिणति है ।

(" राम की शक्ति-पूजा ")

" राम की शक्ति-पूजा " (१९३६ ई०) में मानव की अस्तित्वगत
छटपटाहट और उससे उबरने के लिए उसकी सक्रिय संकल्प-शक्ति को उद्घाटित करते
हुए निराला की काव्यभाषा ने जहाँ खड़ीबोली हिन्दी के इतिहास में निजी
मौलिक प्रकृति तथा अप्रतिहत क्षमता के अविस्मरणीय आयामों को विकसित
किया, वहीं भाषा को भावों की वाहिका के रूप में एक गौण स्थान देनेवाली,
पूर्व प्रचलित रूढ़ उपेक्षा-दृष्टि का प्रत्याख्यान भी किया । पूरी कविता
में कहीं भी अनुभूति का कच्चापन या औदात्य का स्खलन दृष्टिगोचर नहीं होता ।
यह कवि की एक स्पृहणीय उपलब्धि है, और इस उपलब्धि के मर्म की पहचान तभी
हो सकती है, जब " राम की शक्ति-पूजा " में भाषा के द्वारा अपने स्तरों पर जुड़ी
हुई कवि-संवेदना पर ध्यान दिया जाये । राम और रावण के पौराणिक
आख्यान को कवि के सर्जनशील शिल्प ने अस्तित्व की छटपटाहट और उससे व्यक्तित्व
के उत्तीर्ण होने की दिशा में जो मोड़ दिया है, वह भाषा के इतिहास को विस्तार
देता है । जो संघर्ष (जिसमें सूक्ष्म स्तर पर नश्वरता की अनुभूति से आक्रांत मन
और उसे अपनी विविध मानवीय क्षमताओं द्वारा आश्वस्त करने की चेष्टा का
भी समावेश है) के बिना जीवन बेजान, गतिहीन-सा प्रतीत होता है (और
यही तो मानवीय जीवन की विशिष्टता भी है,) वैसे ही कविता (जो दर्शन
और विज्ञान की अपेक्षा जीवन के अधिक निकट, अतएव उससे अधिक आत्मीय है
और जिसका कारण उसका द्वन्द्वात्मक शिल्प है) भी भावुक सरलता के बजाय
द्वन्द्वात्मक शक्ति की अभ्यर्थना करती है । इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि काव्य
में सरलता और कोमलता जैसे गुणों को प्रश्रय नहीं मिलता । कोमलता से शून्य तो
जीवन भी " जीवन " न रहकर एक श्रीहीन यात्रा रह जायगा, फिर काव्य की
अभिव्यक्ति की बात ही क्या है ? आशय यह है कि समृद्ध काव्य शक्ति-सम्पन्न
अवश्य होता है, बल्कि कहना चाहिए कि वह उसकी प्रतिनिधि विशेषता है ।
निराला की ओजस्वी भाषा, अपने परिपक्व गठन के बल पर तुलसीदास के
भगवत्स्वरूप राम को नितान्त मानवीय बना देती है, और यह बाधा, पराजय,

आशा आदि की संश्लिष्ट अनुभूतियों की टकराहट और उनसे उत्तीर्ण होने का प्रयास करते हुए राम की दुर्दम्य जिजीविषा है, जो उन्हें ' मानस ' के राम से अधिक विराट् स्वरूप प्रदान करती है ।

कविता का आरम्भ बड़े उदात्त ढंग से होता है -

रवि हुआ अस्त ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम रावण का अपराजेय समर
आज का + + + + +

अपराजेय समर से कविता के भव्य समारम्भ ही इस बात का सूचक है कि कवि व्यापक एवं गहन संवेदना को लेकर आगे बढ़ रहा है । निराला के काव्य ' तुलसीदास ' में भी सांस्कृतिक सूर्य के अस्तमान का चित्र है -

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे तमस्तूर्य दिङ्मण्डल;

आरम्भ से ही कवि की दृष्टि भाव और भाषा के समतोलन पर रही है, जिसकी पुष्टि ' रवि हुआ अस्त ' द्वारा होती है । ' रवि हुआ अस्त ' - मानो राम - सूर्यवंशी राम - के पराभव को स्वर देता है । कविता के मध्य में यह चित्र है : ' निशि हुई विगत, नभ के ललाट पर प्रथम किरण/ फूटी रघुनन्दन के दृग महिमा ज्योति-हिरण ', जिसमें राम की विजय की प्रच्छन्न व्यंजना है । ये दोनों अंश कवि की संरचनागत संगति के उदाहरण हैं । निराला यहाँ संकेत देते हैं अंधकार का, निराशा का, संघर्ष के प्रगाढ़ होते रंग का । यह अस्तंगत रवि का भाव कविता में विशिष्ट स्थान बना लेता है । आगे चलकर [illegible] ' अमा निशा ', ' घन अंधकार ' का जो उल्लेख हुआ है उसको ' रवि हुआ अस्त ' की पृष्ठभूमि एवं संगति प्रदान करती है । रवि तो अस्त हो गया है, किन्तु राम रावण का अपराजेय समर-मानव मन की प्रवृत्तियों का संघर्ष-अभी जारी है । इसी का सौन्दर्य द्रष्टव्य है -

+ + + ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम रावण का अपराजेय समर
आज का ------

जिसका समकीन रेखत साथ यह बद किया जा सकता है कि किन्हीं में भी कैसी भाषा लिखी जा सकती है ।'[१]

वस्तुत: जिस आचार्य वाजपेयी ने प्रसाद का नाम लिया है, उन पर कवि की दर्शनात्मक संभावनाओं से उत्प्रेरित भाषा है । कविता की भाषा में सरलता-कठिनता का प्रश्न अप्रासंगिक है। श्री वाजपेयी जी ने सरल और जटिल प्रक्रिया के अंतर को काफ़ी बारीकी से पहचाना है, जैसा कि प्रेमचन्द और मैथिलीशरण गुप्त की तुलना में प्रसाद की जटिल रचना-प्रक्रिया की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है - 'बड़े जीवन-पक्षों को हाथ में लेना, जटिल भाव-धाराओं और सांस्कृतिक परिवर्तनों के फलस्वरूप उठी हुई जटिल समस्याओं का निरूपण करना, व्यक्ति, देश और जाति के जीवन के पृष्ठ-छाया वातों को उद्घाटित कर सकना, सारांश यह कि जीवन के गहरे और बहुमुखी घात-प्रतिघातों और विस्तृत जीवन-दशाओं में पद-पद पर आविर्भूत उलझनों को चित्रित करना, उन्हें सँभालना और अपनी कला में उन सब को सजीव करना गुप्त जी और प्रेमचन्द जी की साहित्य-सीमा के बाहर है ।'[२]

अच्छा होता, अगर वे निराला की इस कविता की भी जटिल भाव धारा को समझ कर युद्ध-प्रसंग में प्रयुक्त उनके जटिल शब्द-प्रयोगों की सार्थकता की व्याख्या करते । इस सम्पूर्ण बंध की संश्लिष्ट शब्दावली वर्णन की मूल आवश्यकता का प्रतिफलन है । यह राम की, उनकी वानर सेना की संकुल मन:स्थिति को मूर्तिमान्त करती है । कवि यह जानता है कि युद्ध जीवन की एक विशिष्ट स्थिति है, सामान्य नहीं । उसी के अनुरूप भाषा के एक खास रूप का उसने प्रयोग किया है । अगर कवि को शाब्दिक स्वेच्छाचार या चमत्कार ही दिखाना होता, तो वह संपूर्ण कविता में भाषा का यही रूप रखता, जबकि ऐसा नहीं है । अत: आरंभिक बंध की भाषा को एक खास प्रयोग का तकाज़ा समझना चाहिये । यह निराला की काव्यभाषा का सामान्य आदर्श नहीं है ।

---

१) कवि निराला, पृ० १६०
२) जयशंकर प्रसाद, पृ० ६

अब एक और विरोधी चित्र निराला प्रस्तुत करते हैं, जिसमें युद्धोपरान्त शिविर की ओर लौटती हुई दोनों सेनाओं की भिन्न मनःस्थितियों का अंकन हुआ है । आरम्भिक विकट समास-बंध के बाद भावना का यह शब्द प्रयोग भी तीव्रता के बाद उपराम का द्योतक है ।

लौटे युग दल । राक्षस पद-तल पृथ्वी टलमल,
बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल ।

और दूसरी ओर वानर सेना है ।

वानर-वाहिनी खिन्न, लख निज-पति-चरण-चिह्न
चल रही शिविर की ओर स्थविर-दल ज्यों विभिन्न ।
प्रशमित है वातावरण नमित मुख-सान्ध्य कमल
लक्ष्मण चिन्ता-पल पीछे वानर-वीर सकल ;

छंद-गति के भी दो रूप द्रष्टव्य हैं: एक में टलमल विंध "विकल" की कंपनशील, हल्के-फुल्के शब्दों द्वारा राक्षसों के "महोल्लास" को मूर्त कर दिया गया है ; दूसरे में छंद की बोझिल गति वानर-वाहिनी की "खिन्न" मनःस्थिति को रूपायित करती है ।

स्थविर दल की उपमा पूरे वातावरण को एक वैराग्य-भाव से संयुक्त कर देती है । लक्ष्मण के लिए "नमित मुख सान्ध्यकमल" का विशेषण उनकी श्रीहीनता के साथ संध्या-काल की भी व्यंजना करता है । सूक्ष्म स्तर पर यह विशेषण निराशा को स्वर देता है, जिसका प्रगाढ़ अंधकार आगे राम के चित्र में छा जाता है :-

रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण
श्लथ धनु-गुण है, कटि बंध स्रस्त-तूणीर-धरण,
दृढ़ जटा-मुकुट,हो विपर्यस्त, प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार ।

मानस में उत्पन्न हुई थीं) वे भयानक रूपकीमाओं की भ्रम की भाँति नहीं दिखती हैं। इस उत्तरार्द्ध-भाग में देवी का अतिप्राकृतिक शक्ति किस प्रकार पराजित कर देती है, वह द्रष्टव्य है :

फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो
आच्छादित किये हुए सम्मुख समग्र नभ को,
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ-बुझकर हुए क्षीण
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन।
लख शंकाकुल हो गये अतुल-बल शेष-शयन,
खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन।

देवी-रूप शक्ति की विराटता और प्रचण्डता जितनी दर्शनीय है, उतनी ही राम के इन बाणों की श्री-हीनता भी। दूसरे स्तर पर अतिप्राकृतिक शक्ति से जूझते हुए मानव का चित्र सामने आ जाता है। " अतुल-बल शेष-शयन " के साथ " लख शंकाकुल हो गये " का प्रयोग दो विपरीत स्थितियों की व्यंजना करता है। बाद की पंक्ति " खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन " का काव्यात्मक सौन्दर्य अनुपम है। ये " सीता के राममय नयन " राम के मन में निहित आशंका और उद्वेग के भावों को चुनौती दे रहे थे, जो देवी की संपूर्ण अतिप्राकृतिक शक्ति के मुकाबले में मानवीय प्रेम की तन्मयता के रूप में सीता के राममय नयन खड़े थे। निराला के अनेक प्रयोगों में सांस्कृतिक सौंदर्य विदग्धता से निहित है। यहाँ राममय नयन भारतीय नारी की निष्ठा, साधना, समर्पण और स्नेह को ध्वनित करता है। इसी प्रसंग में " याचक राम " की वे पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं, जिनमें " पूजित " शब्द का प्रयोग कुछ इसी प्रकार की अर्थ-छायायें उद्भूत करता है :

उस अरण्य में बैठी प्रिया-अधीर
कितनी पूजित दिन अब तक है व्यर्थ -

" राममय नयन " अपने गठन में सजीव करता है सीता के उन नेत्रों को, जिनमें सदा राम का संपूर्ण व्यक्तित्व छाया रहता है। " खिंच गये " क्रिया प में एक बंकिम सौन्दर्य है, जो साकार चित्र की याद दिला देता है।

तीसरी और ठीक उसकी विरोधी प्रतिक्रिया द्रष्टव्य है :

फिर सुना — हँस रहा अट्टहास रावण खल-खल
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल ।

राम की मनःस्थिति की परिव्याप्ति इन दो मुक्ता-दलों के गिरने में होती है । यहाँ निराशा का रूप है । इसमें सीता भावमग्न के बीच दो आँसू गिरे हैं । रावण के ' खल-खल ' अट्टहास के सन्दर्भ में इन दो मुक्ता-दलों के गिरने का चित्र विपरीत-भाव की सृष्टि करता है ।

अंधकार के अट्टहास -रूप में मृत्यु की कल्पना प्रसाद ने की है :
' अंधकार के अट्टहास -सी '

निराला के ' अट्टहास ' के प्रयोग में एक व्यंग्य शोकनाश -सा भाव निहित है ।

' फिर सुना हँस रहा अट्टहास रावण खल-खल ' व्यंग्य-विन्यास की नवीनता यहाँ देखी जा सकती है । कवि नादानुरंजित ध्वनियों में भी भी बारीकी बराबर ध्यान में रखता है । ' खल-खल ' ध्वनि का रावण की तामसिक शक्ति के प्रसंग में बड़ा-ही सार्थक प्रयोग हुआ है । इस ' खल-खल ' के विरोध में दूसरी पंक्ति आती है :

' भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल ।' ' खल-खल ' और ' मुक्ता-दल ' छंद की दो तुकें नहीं हैं, उनमें मानव-जीवन के दो परस्पर विरोधी दृश्य अपने पूरे विस्तार में अंकित हैं । फिर ' मुक्तादल ' के पूर्व ' सजल ' की जो आंतरिक तुक है, वह ध्वन्यात्मक वातावरण को भावात्मक वातावरण से पूरी तरह जोड़ देती है । शब्द, ध्वनियाँ और अर्थ - सब परस्पर संश्लिष्ट हो गये हैं ।

इसके बाद एक दूसरा दृश्य सामने आ जाता है, जो शक्ति-पूजक निराला की मनःस्थिति के सर्वथा अनुरूप है । राम के अनन्य सेवक हनुमान के विविध कृत्यों के माध्यम से कवि ने ऐसी पराजित चेतना को उद्बुद्ध करने की चेष्टा की है । राम के ब्रह्मत्व की जो परिकल्पना हनुमान ' पूर्ण ' अस्ति-नास्ति के एक रूप, गुणगण अनिंद्य से करते हैं, वह वस्तुतः उनकी आगामी शौर्य-भाव के उद्दीपन के लिये है । वही भक्त हनुमान जब राम के आँसुओं पर किंचित् गंभीर ढंग से विचार करते हैं, तो उनके अन्दर विशिष्ट प्रतिक्रिया होती है :

ये अश्रु राम के आते ही मन में विचार,
उद्वेल हो उठा शक्ति-खेल-सागर अपार,
हो श्वसित पवन उनचास पिता पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल ",

"ये अश्रु राम के" पद भावित स्थलों से शक्तिगिरि की तुलना-पक्ष से निरपेक्ष विचार किया जाए, तो इन की तुलना-पक्षों के उत्कर्ष में निष्कर्षण की महत्वपूर्ण स्थिति स्पष्ट हो जाती । राम में नितान्त मानवीय दौर्बल्य तो झलकता है, किन्तु मान हनुमान को होता है । यहाँ से निराला की काव्यभाषा फिर सक्रिय चेष्टाओं से भर उठती है, क्योंकि उसे दुर्धर्ष शक्ति का अंकन करना था। "सागर अपार" का स्वर-विस्तार विराट् भाव की व्यंजना करता है । छंद की गतिशीलता में वृद्धि हो जाती है :

शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़
जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़
तोड़ता बंध-प्रतिसंध धरा, हो स्फीत-वक्ष
दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष
शत-वायु-वेग-बल डुबा अतल में देश-भाव
जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव
वज्रांग तेज घन बना पवन को, महाकाश
पहुँचा, एकादशरुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास ।

सम्यक् योजना के साथ वाक्य के इसी विराट विस्तार की संभावना इसी कवि की ही विशिष्टता है । पूरे बंध में एक भयावह बिंब की सर्जना हुई है । प्रकृति की विराट् पृष्ठभूमि में उत्थान, कोलाहल का यह चित्र भी निराला की ही आकृतिक कल्पना, शक्ति, अलौकिक सर्जनात्मक ऊर्जा को व्यंजित करता है । हनुमान का आकाश-गमन और प्रकृति में विक्षोभ-दोनों का भाषा की क्षमता द्वारा संश्लेषण हो गया है । कोमल उद्दाम तरंगों की भंगिमाओं से सागर का विक्षोभ ही नहीं, हनुमान का विक्षोभ भी व्यंजित हो रहा है । उद्दाम काव्य-भाषा ही इस प्रकार की उत्कृष्ट व्यंजना को प्रस्तुत करती है ।" जल-राशि

राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़ " का स्वर-विस्तार सचमुच लहरों के उठने-गिरने का एक गति-चित्र निर्मित कर देता है । सागर अपनी मर्यादा को तोड़कर अपना विस्तार आकाश तक ले जा रहा है ।

" तोड़ता बंध प्रतिसंध धरा, हो स्फीत वक्ष। दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष "

एक पंक्ति को तोड़कर दूसरी पंक्ति में पहुँचने की प्रक्रिया भी सागर या हनुमान-दोनों स्तर पर मानवीय जिजीविषा-की दिग्विजय कामना, सीमा-हीन विस्तार की आकांक्षा को व्यंजित करती है । वाग्धारा की स्फीतता द्रष्टव्य है । पुराने ढंग के अनुप्रास आदि के स्थान पर (जिनमें अर्थ-समृद्धि की अपेक्षाकृत कम गुंजाइश रहती थी) कविता की आंतरिक ध्वनि-व्यवस्था में एक अनुरूपता छायावादी कवियों ने प्रस्तुत की । निराला में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से द्रष्टव्य है । शब्दावली कहीं स्खलन की गुंजाइश ही नहीं रखती । उनचास पवनों के बल की समाविष्टि, देश भाव की समाप्ति (सीमाओं का परित्याग) विपुल जलराशि का मंथन- सभी कुछ तो सजीव हो उठा है - जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव/ वज्रांग तेज घन बना पवन को महाकाश / पहुँचा , एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास । पंक्ति को तोड़ देने से " महाकाश " और " पहुँचा " दोनों पर ही बल पड़ता है ।

इस प्रक्रिया से जैसे सचमुच महाकाश में पहुँचने का चित्र सजीव हो उठता है, साथ ही इस ऊर्ध्व यात्रा में वज्रांग हनुमान के मन में क्षोभ, उत्साह, उद्वेलन और पौरुष के जो भाव हैं, वे भी पंक्तियों की इस क्रमान्वित गति से ध्वनित हो जाते हैं ।

और अब विषम स्थिति आ जाती है । एक ओर शक्ति-रक्षित रावण की महिमा है, दूसरी ओर हनुमान हैं, जिन्हें शिव-रक्षित अपने आराध्य राम का बल प्राप्त है । हनुमान द्वारा आकाश को ग्रसित करने के अटल प्रयत्न पर शिव विचलित हो उठते हैं :

करने को ग्रस्त समस्त व्योम कपि बढ़ा अटल,
लख महानाश शिव अचल हुए क्षण भर चंचल,

" कैठ और पैपल " का विरोध द्रष्टव्य है । शिव अपनी शक्ति पार्वती को इस प्रकार प्रबोधित करते हैं :

> श्यामा के पद-तल भार-धरण हर मन्द स्वर
> बोले—'सम्वरो, देवि, निज तेज, नहीं वानर
> यह — नहीं हुआ शृंगार-युग्म-गत, महावीर,
> अर्चना राम की मूर्तिमान् अक्षय-शरीर,
> चिर ब्रह्मचर्य रत, ये एकादश रुद्र, धन्य,
> मर्यादा पुरुषोत्तम के सर्वोत्तम, अनन्य
> लीला सहचर, दिव्यभावधर, इन पर प्रहार
> करने पर होगी देवि, तुम्हारी विषम हार,
> विद्या का ले आश्रय इसको दो प्रबोध
> झुक जायेगा कपि, निश्चय होगा दूर रोध। "

स्पष्ट है कि निराला की दिव्यता कहीं स्खलित नहीं होती । उन्होंने अत: पूत, संयमी हनुमान का जो चित्र खींचा है, वह इस बात का द्योतक है कि सात्त्विक बल के आगे अति-प्राकृतिक शक्ति को झुकना ही पड़ता है — " इन पर प्रहार करने पर होगी, देवि, तुम्हारी विषम हार ",

कवि इस सम्पूर्ण प्रसंग में तनाव का परिसमन शक्ति के अंजना रूप की अवतारणा द्वारा करता है । निराला की भावना की स्वस्थ और परिपुष्ट ढंग की बानगी देने के लिये अंजना रूप में उचित शक्ति के प्रबोधन का कुछ अंश उद्धृत करने का लोभ संवरित नहीं किया जा सकता :

> बोलीं माता—'तुमने रवि को जब लिया निगल
> तब नहीं बोध था तुम्हें रहे बालक केवल
> यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह-रह
> यह लज्जा की है बात कि माँ रहती सह-सह ।

हनुमान-प्रसंग के बाद कवि पुनः राम और उनके शिविर की ओर लौट आता है । तथा विभीषण अवसाद-ग्रस्त राम को इस पराजय-भाव

देखा, हैं महाशक्ति रावण को लिये अंक,
लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक,

प्रस्तुत उपमा रावण की कलंकी प्रकृति को व्यंजित करती है। देवी की सारी चतुराई और कार्य-कलाप के प्रति राम की प्रतिक्रिया को कवि ने शब्दों में बड़ी मजबूती से बाँधा है :

विचलित लख कपिदल क्रुद्ध युद्ध को मैं ज्यों-ज्यों
झक-झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों-त्यों
पश्चात् देखने लगीं मुझे, बँध गये हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं, हुआ त्रस्त।

अन्तिम दो पंक्तियों में पाँच क्रियाओं के प्रयोग द्वारा भय-ग्रस्त राम का चित्र खींचा गया है। " मुक्त ज्यों बँधा " की अर्थ-विपरीतता में जो विवशता है, वह दर्शनीय है। कविता की रचना में विविध स्तरीय सम्भाषण-शैली पर निराला का कितना अधिकार रहा है, उसका प्रमाण " राम की शक्ति-पूजा " है।

इस सारी निराशा, उद्वेग, संशय को उन्मूलित करते हुये जाम्बवान घटना-क्रम को एक गतिशील मोड़ देते हैं। वे शक्ति की उपासना करके सिद्धि प्राप्त करने की बात कहते हैं। उनकी यह सूक्ति अपनी व्यंजना से पूरी कविता में अन्त-र्व्याप्ति रखती है -

" आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर - "

निराला जैसा पौरुषवादी कवि निष्क्रिय प्रतिरोध, गतिशील अहिंसा को स्वीकार नहीं कर सकता। अंग्रेजों के शासन में पराधीन, तत्कालीन भारतीय जन-मानस के लिये यह उद्बोधन जितना प्रासंगिक था, उतना ही आज भी है। सच तो यह है कि श्रेष्ठ कविताएँ अपनी मार्मिक संरचना से देशकाल तक सीमित न रहकर सार्वभौम अर्थ की व्यंजना करती हैं।" शक्ति की करो मौलिक कल्पना " में निराला हिन्दी की अपनी प्रकृति को घोषित करते हैं। पुनर्जागरण काल में हिन्दी क्षेत्र की - मध्य देश की - यह अपनी विशिष्टता है, देन है।

मिथक की प्रतीकात्मक भाषा आधुनिक कविता के निकट ले जाती है। इस दृष्टि से द्विवेदीयुगीन और छायावादयुगीन कृतित्व की पौराणिक कविता का अन्तर उनकी भाषा की विविधस्तरीय प्रतीकात्मकता का अंतर है।

राम की भावनादीप्त बुद्धि उन्हें जब निराशा से उबरने की प्रेरणा देती है :

वह एक और मन रहा राम का जो न थका
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,
बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत-गति हतचेतन
राम में जगी स्मृति, हुए सजग पा भाव प्रमन।

" दैन्य " और " विनय " की कमजोर भावनाओं से पौरुष को हानि पहुँचने की सम्भावना को निराला ने गहराई से महसूस की थी। यह उल्लेखनीय है कि जिस विद्युत गति से राम का मन बुद्धि के दुर्ग में पहुँचता है, वह भाषा में भी उसी प्रकार सजीव हो उठती है। पंक्तियों का प्रवाह और लय की द्रुत गति द्रष्टव्य है।

अंततः नीलकमल की अपनी आँख के अर्पण द्वारा राम सिद्धि को प्राप्त करने के लिए उद्यत होते हैं। उनके इस संकल्प द्वारा उन्हें परीक्षा में उत्तीर्ण समझकर विराट् स्वरूपा देवी उदित होती है और राम को विजय का आश्वासन देती है। " होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन ! कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

शक्ति की मौलिक कल्पना में राम राम को देवी " नवीन पुरुषोत्तम " का संबोधन देती है। यह अन्तिम घटना नेत्रदान के लिये राम की संकल्प-बद्धता और देवी की उपस्थिति भी सूक्ष्म रूप में ग्रहण करनी होगी। शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बलवान् व्यक्ति ही विघ्न-बाधाओं का अतिक्रमण कर उद्देश्य की पूर्ति करता है। योगमार्गी वैयक्तिक साधना का अन्याय के प्रतिकार के लिए सन्नद्ध मानव में अदम्य शक्ति भर देने के उपाय-रूप में उपयोग पुनर्जागरण

में " तमस्तूर्य दिङ्मण्डल " के माध्यम से मुखरित आतंक अंधकार - पुरुष स्तर पर विघटन - का सांकेतिक चित्रण है । एक में काल का मानवीकरण है, दूसरे में दिङ्मण्डल का । भाषा की शुद्धि का प्रमाण निराला की रचना में हम बराबर देखते हैं, वे सर्जनात्मकता का स्रोत शब्द में न मानकर शब्द-प्रयोग में मानते हैं - " तमस्तूर्य " का प्रयोग उल्लेखनीय है । " तूर्य " शब्द का " तम " के संदर्भ में प्रयोग नवीनता के साथ अर्थ की अनंत संभावनाओं से भरा हुआ है । विनिफ्रेड नवोत्तनी ने शब्दों को उनके संदर्भों से जोड़कर विचार करने पर बल दिया है - " कविता के शब्दों का प्रश्न इस बात का प्रश्न है कि किस प्रकार शब्द प्रभाव डालते हैं और उन कलात्मक संदर्भों द्वारा प्रभावित होते हैं, जिनमें वे प्रविष्ट होते हैं ।[1] तूर्य-वादन में जो तीव्रता, कर्कशता, आतंक का भाव है, वह पतन के सर्वग्रासी प्रभाव को ध्वनित करता है । इतने विराट् रूपक को इतने कम शब्दों में निबाँधना निराला के असाधारण भाषा-अधिकार की परिचायिका है । इस " तमस्तूर्य " के साथ " प्रभापूर्ण " पर दृष्टिपात करें, - बाहरी बनावट की समता अर्थगत विरोध के आलोक में अजीब प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है ।" प्रभापूर्ण " की परिणति " अस्तमित आज रे " में होती है और दूसरी ओर " तमस्तूर्य " अपना प्रभूत आतंक जमाये हुये है ।

आगे शब्दों की विशिष्ट बानगी मुसलमानों के आतंकपूर्ण शासन का रूप प्रस्तुत करती है -

उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान ;

शासक के वास्तविक धर्म से च्युत मुसलमान नरेश आसनों पर बैठकर शासन करते हैं, भारतीयों को प्रताड़ित करते हैं, जबकि उन्हें अपने शिरस्त्राण विशेषण को सार्थक करना चाहिए । यहाँ " शिरस्त्राण " का प्रयोग सिद्धान्त और व्यवहार के बीच की खाई को बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है । इस सारी स्थिति की परिणति इन शब्दों में होती है -

है ऊर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल ।

---

1. The question of the diction of poetry is a question of how words affect and are affected by the artistic contexts they enter.

सतही दृष्टि से सक्रिय प्रतीत होनेवाले, किन्तु सूक्ष्म रूप में सोते हुए भारतीय जीवन के लिए प्रयुक्त यह और शतदल का यह बिंब आधुनिक जीवन की ऐन्द्रजालिक विडम्बना को भी पूरे आत्मविश्वास के साथ अभिव्यक्त कर सकता है। इस प्रकार वर्णन में बड़े गहरे स्तरों पर व्याप्त होकर यह बिंब आत्मव्यंजना का सामान्य अंग बन गया है। राजनैतिक विस्तार और आर्थिक सम्पन्नता की तुलना में संस्कृति का रूप सूक्ष्म और सुकुमार होता है; उसके मूल्यों को आत्मसात् करना कठिन कार्य है। " निश्चलत्प्राण शतदल " का बिंब अपनी प्रकृति में अत्यन्त सुकुमार संस्कृति की रिक्तता को व्यंजना के स्तर पर उतने ही सुकुमार ढंग से अभिव्यक्ति देता है, और जीवन की पुनर्रचना के रूप में कला की व्याख्या को व्यावहारिक स्तर पर विश्वसनीय बनाता है। पूर्ववर्ती " अस्तमित सांस्कृतिक सूर्य " के साथ इस " निश्चलत्प्राण शतदल " को मिलाकर पढ़ें, तो निराला की संरचनागत क्षमता का परिचय मिलेगा। सूर्यास्त होने पर शतदल का कुम्हलाना स्वाभाविक है। इसी प्रकार संस्कृति के विघटन के समय सही अर्थों में स्वस्थ जीवन की परिकल्पना दुष्कर है। नवीन संदर्भों में प्रयुक्त किये जाने पर एक घिसा-पिटा शब्द भी अर्थ की कितनी विस्तृत छायाएँ उद्भूत कर सकता है, इसका बढ़िया उदाहरण " शतदल " है।

इस सांस्कृतिक संध्या की सर्वव्यापी सत्ता को निराला एक अन्य विराट अप्रस्तुत द्वारा मूर्तिमन्त करते हैं -

ठग-ठग शब्दों का सांध्य-काल
यह आकुंचित भ्रू कुटिल-भाल
छाया अम्बर पर जलद-जाल ज्यों दुस्तर

देश की सांस्कृतिक अकिंचनता से विचक्षण कवि-मानस अम्बर पर छाये हुए दुस्तर जलद-जाल से सांस्कृतिक संध्या को उपमित करता है। दीर्घ स्वरों की प्रमुखता और छंद की त्वरित गति पाठक के बढ़ते हुए प्रभाव-क्षेत्र को साकार कर देती है, जिसकी लपेट में भारत के विभिन्न प्रांत आ जाते हैं।

तीसरे छंद में नाश के प्रतीक आक्रामक मुगलों के आतंक का भयावह चित्र प्रस्तुत करते हैं :

मोगल-दल बल के जलद-यान,
दर्पित-पद उन्मद-नद पठान
हैं बहा रहे दिग्देशज्ञान, शर-खरतर ;

'मुगल' के बजाय 'मोगल' के प्रयोग से आक्रामकों की दुर्निवार शक्ति को अधिक जोरदार अभिव्यक्ति मिली है। इन मुगलों की सेना बादल है, और दर्प से चलते हुए पठान पद से भरे नद है। 'द' की अनेक बार आवृत्ति भी दर्पित आक्रामकों की शक्ति को मुखरित करती है। निराला की कविता की सुगठित-पद-योजना के उत्कृष्ट उदाहरण ये अंश हैं। इन आक्रामकों की गतिशीलता का अल्प शब्दों में विस्तृत चित्र द्रष्टव्य है: हैं बहा रहे दिग्देशज्ञान, शर-खरतर।

मुगलों के आक्रमण की यह प्रलयकारी बाढ़, घन अंधकार, दुर्निवार, वज्रपात, शब्दों में जिस प्रकार परस्पर संश्लिष्ट हो गए हैं, वह द्रष्टव्य है -

छाया ऊपर घन अन्धकार -
टूटता वज्र दह दुर्निवार,
नीचे प्लावन की प्रलय धार, ध्वनि हर-हर।

यहाँ छंद-योजना में निराला अपने व्यक्तित्व की सारी ओजस्विता, सारी सशक्तता का परिचय देते चलते हैं।

मुगलों से समर में परास्त बुन्देलों की श्री-हीनता को कवि ने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है -

रिपु के समक्ष जो था प्रचण्ड
आतप ज्यों तम पर करोद्दण्ड ;
निश्चल अब वही बुन्देलखंड, आभागत,

किरणों से प्रचण्ड सूर्य की भाँति बुन्देलखण्ड अन्धकार-रूप रिपुओं को मर्दित कर देता था। समय के फेर से वही बुन्देलखण्ड अब निस्तेज हो गया है। उसकी पराजय को निराला ने निम्न दो पंक्तियों में बड़ी संवेदनशीलता से संगुम्फित कर दिया है -

" नर " और " किन्नर " का विशिष्ट प्रयोग निराला की भाषा-क्षमता का उदाहरण है। जो भारत में पुरुषार्थशील होते थे अर्थात् " नर " हैं, वे तो संग्राम-भूमि में युद्ध करते हुए मुगलों द्वारा बंदी बना लिये गये, पर जो किंपुरुष (किन्नर) हैं, वे अपने नाम की शोभा बढ़ाते हुए दासता पर उत्सव मना रहे हैं, उन्हें अपने राजनीतिक और सांस्कृतिक पराभव पर ग्लानि नहीं है, उनका पुरुषत्व विलुप्त हो गया है। इस प्रसंग में कवि ने दो पौराणिक दृष्टान्तों को प्रस्तुत किया है -

> पी का ज्यों प्राणों का आतप
> देखा असुरों ने दैहिक दम,
> बंधन में फँस आत्मा-बांधव दुख पाते।

कवि को कदाचित् आत्मिक रूप के लिए इनसे उपयुक्त पौराणिक दृष्टान्तों की प्राप्ति नहीं हो सकती थी। डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने निराला की भाषा में अप्रचलित प्रयोगों पर आपत्ति करते हुए इस छंद को उदाहरण रूप में रखा है - " निराला की भाषा का एक दोष यह भी है कि उन्होंने विभिन्न शब्दों से मनमाने अर्थों को लिया है, प्रायः उन शब्दों से कवि द्वारा ग्राह्य अर्थ प्रचलित नहीं है, अतः उनके द्वारा अभीष्ट अर्थ, कविता से व्यंजित नहीं होता, यथा " तुलसीदास " में - " किन्नर " का अर्थ नपुंसक व आत्म-बांधव का अर्थ आध्यात्मिक शक्तियाँ लिया गया है - नर के भीतर बाहर किन्नरगण गाते।"[1]

किन्तु " नर " की तुलना में " किन्नर " को प्रयुक्त करने के कारण " किन्नर " के अर्थ-स्फुरण में कोई बाधा नहीं प्रतीत होती, प्रत्युत अर्थ-क्षमता अधिक बढ़ जाती है। एक तो किंपुरुष या नपुंसक कहने से पुरुषत्व से हीन चाटुकारों पर कवि के गंभीर व्यंग्य और क्षोभ की उतनी कुशलता से अभिव्यक्ति नहीं होती। दूसरे, यक्ष-किन्नरों के जीवन की जो एक विलासमय पौराणिक परिकल्पना रही है, वह दासता पर विजय मनाते, गौरवशून्य भारतीयों के संदर्भ में बड़ी सटीक प्रतीत होती है। पंक्ति को एक बार फिर पढ़ें - " नर के भीतर, बाहर किन्नर-गण गाते।" सच्चे वीर बंदीगृह में हैं, और नरनामधारी

---

१ निराला का साहित्य और साधना, पृ० २१४

सोचता कहाँ रे, किधर कूल
बहता तरंग का प्रमुद फूल ?
यों इस प्रवाह में देख मूंद जो बहता,
कल-कल-रव में बहता अपि चल,
वह मन्त्र-मुग्ध सुनता " कल-कल ",
निष्फल, शोभा-प्रिय कूलोपल ज्यों रहता ।

तरंग में बहता फूल अपनी गतिविधि भूल जाता है, किनारे का उसको बोध ही नहीं होता । ठीक यही दशा देश की भी है, जो इस्लामी सभ्यता के आकर्षण में फँसकर निजत्व-ज्ञान खो चुका है । कवि श्री निराला ने कहा है :-

मोगल-दल-बल के जलद-यान,
दर्पित-पद उन्माद-नद पठान
हैं बहा रहे दिग्देश ज्ञान, शर-खरतर,

स्थिति की विडम्बना द्रष्टव्य है, जब वायु " कल कल कल " करते हुए बहता फूल को सावधान करता है कि वह किनारे की खोज ले, इस तरंग-प्रवाह में सजग रहे । पर वह फूल मंत्र-मुग्ध-सा उस " कल कल कल " को " कल-कल - सुन्दर-सुन्दर ही " के रूप में सुनता है । उसका यह सौन्दर्य-प्रेम निष्फल है, वर्णनात्मकता से रंजित है, धारा के किनारे के पत्थर की भाँति वह इस आडम्बरयुक्त निष्फल जीवन की जड़ता को नहीं समझ पाता । किनारे पर पड़े हुए पत्थर (कूलोपल) का उपमान अकर्मण्य जीवन को बड़ी सटीक अभिव्यक्ति देता है । तरंग में बहते फूल का बिंब सामान्य वर्णन की भाषा में धीरे-धीरे पर्यवसित हो जाता है और इस प्रकार भाषिक वर्णन और बिंब के संश्लेषण का एक स्पृहणीय रूप निर्मित होता है । अनुरणनात्मक ध्वनियों के अन्तर को कवि कितनी बारीकी से पहचानता है, यह " राम की शक्ति-पूजा " में बड़े विशद रूप में देखा जा सकता है, " तुलसीदास " काव्य में भी " कल-कल-कल " और " कल-कल " के विषम भाव द्वारा कवि अपनी इसी पहचान को अभिव्यक्ति देता है । खतरे को न पहचान कर आमोद-प्रमोद में डूबे, गाफिल लोगों पर कवि ने सूक्ष्म व्यंग्य किया है । ध्वन्यात्मक शब्दों से क्षोभ, व्यंग्य, ग्लानि

प्रकृति के संदेश से प्रभावित तुलसीदास के मानसिक प्रसार को निराला ने बड़े उदात्त ढंग से काव्य के स्तर पर प्रतिष्ठित किया है :-

बहकर समीर ज्यों पुष्पाकुल
वन को कर जाती है व्याकुल
हो गया चित्त कवि का त्यों तुलकर उन्मन
वह उस शाखा का वन-विहंग
उड़ गया मुक्त नभ निस्तरंग
छोड़ता रंग पर रंग-रंग पर जीवन ।

सुरभित वायु वन को विकल कर जाती है, ठीक उसी तरह प्रकृति के संदेश ने भी तुलसीदास के चित्त को उन्मन कर दिया । यह उपमा बड़ी सटीक है । मन की ऊर्ध्व उड़ान को सशक्त भाव से कवि अन्तिम तीन पंक्तियों में स्थान देता है । बद्ध संस्कारों की सीमा को पार कर मन मुक्ताकाश में विचरण करता है । विहंग का रूपक उस ऊर्ध्व-यात्रा के प्रारंभ की कविता का अनुभव बना देता है । अन्तिम पंक्ति- " छोड़ता रंग पर रंग-रंग पर जीवन " का शब्द - विन्यास तो वस्तुतः धीरे-धीरे संस्कारों की सीमा पार कर अगोचर सत्य के निकट पहुँचते मन को व्याख्यायित करता है । स्वयं निराला ने काव्य में प्रतिष्ठापित विराट् रूपों के लक्ष्य में सार्थक अवधान पर बल दिया है । वास्तव में चित्रों तथा भावनाओं के भीतर से चिरंतन सत्य में पहुँचना, अपार सौन्दर्य से भावना तथा चित्रों की आकृतियों को मिटा देना कविता की पूर्णता है ।" तुलसीदास " में ऊर्ध्व-संचरण के ये दृश्य कविता की इसी पूर्णता की धारणा के व्यावहारिक निदर्शन हैं ।

तेरहवें छन्द में प्राकृतिक दृश्य के माध्यम से मन की ऊर्ध्व-उड़ान का लोकोत्तर विस्तार वर्णन है :-

दूर, दूरतर, दूरतम शेष,
कर रहा पार मन नभोदेश,
सजता सुवेश, फिर-फिर सुवेश जीवन पर,
छोड़ता रंग, फिर-फिर संवार
उड़ती तरंग ऊपर अपार
संध्या-ज्योतिः ज्यों सुविस्तार अम्बरतर ।

तुलसीदास का मानस क्रमशः दूर से दूरतर से दूरतम स्तर में प्रवेश करता ही जाता है । इस प्रक्रिया में वह लदे हुए संस्कारों की परत को पार करता जा रहा है, संध्या कालीन सूर्य की किरणें भी आकाश में ऊपर उठती हैं ।

मन की इस ऊर्ध्व उड़ान में तुलसीदास तत्कालीन भारतीय संस्कृति का वास्तविक आभास पा जाते हैं । पराधीन भारतीय मानस का यही चित्र निम्न छंद में उभरा है :-

> बँध भिन्न-भिन्न भावों के दल
> क्षुद्र से क्षुद्रतर हुए विकल ।
> पूजा में भी प्रतिरोध-अनल है जलता,
> हो रहा भस्म अपना जीवन,
> चेतनाहीन फिर भी चेतन
> अपने ही मन को यों प्रतिक्षण है छलता ।

युग-सम्पृक्ति के अभाव में ऐसी पंक्तियों की रचना नहीं हो सकती थी । मानवीय स्वभाव की विचित्रता इन पंक्तियों में समा गई है । क्षुद्र भावों से परिचालित ,रचनात्मक दृष्टि से शून्य मनुष्य जड़-तुल्य हो रहा है, पर वह अपने को चेतन समझता है ।" चेतनाहीन फिर भी चेतन " का विरोधाभास द्रष्टव्य है । और, इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य का मन अपने ही मन को धोखा दे रहा है । मानवीय प्रकृति की इस विचित्र विडम्बना को काम के शाप में प्रसाद ने भी अभिव्यक्ति दी है -

> हृदयों का हो आवरण सदा अपने वक्षस्थल की जड़ता
> पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता पड़ता ।[१]

यहाँ कवि जर्जरित वर्ण-व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करता है । भारतीय सभ्यता-संस्कृति के विघटन के मूल में बहुत कुछ निम्न वर्गों की शोचनीय दशा है :-

---

१) कामायनी, पृ० १०२

चलते-फिरते पर निस्सहाय,
वे दीन, क्षीण कंकालकाय;
आशा केवल जीवनोपाय उर-उर में ;
रण के बाणों से सतत सतत
दलमल जाते ज्यों, दल के दल
कृषकगण क्षुद्र -जीवन -अंचल, पुर-पुर में

यह उल्लेखनीय है कि कुलीनता का ऊर्ध्व-संचरण जहाँ उन्हें सूक्ष्म समस्याओं पर विचार करने के लिए दृष्टि देता है, वहीं सभ्यता के विकास में छोटे प्रतीत होनेवाले, पर वस्तुत: उसके अविभाज्य अंग कृषकगण के प्रति उनके मन में गंभीर संवेदनशीलता को स्थान देता है। बड़े मार्मिक भावचित्र द्वारा उनके जीवन की विवशता और दयनीयता को कवि ने स्वर दिया है। यह पूरा छंद भाषा के लोच का बढ़िया उदाहरण है। " दलमल जाते ज्यों, दल के दल " में " द " की आवृत्ति " दलमल " की क्रिया को सचमुच साकार कर देती है।

इस सामूहिक पतन से पीड़ित कवि-मानस के निस्तार भाव की अत्यन्त कलात्मक अभिव्यक्ति निम्न छंद में हुई है :-

इस छाया के भीतर है सब,
है बँधा हुआ सारा कलरव,
भूले सब इस सुख का आसव पी-पीकर।
इसके भीतर रख देश-काल
हो सीमा न रहे मुक्त भाल
बढ़े क्रम-क्रम उन्नत विशाल ज्योतिःसर।

कवि की भीतरी छटपटाहट भाषा में साकार हो उठी है। भारतीय जीवन की गत्यात्मकता, सर्जनशीलता समाप्त हो चुकी है, जीवन का सारा स्पंदन बंध गया है -" है बँधा हुआ सारा कलरव " बड़ा सुन्दर व्यंग्यात्मक प्रयोग है।" बादल-राग " में मुक्त विकास के अभिलाषी निराला बंधन को (जो जड़ता का प्रतीक है) किसी भी मूल्य पर स्वीकृति नहीं दे सकते। दूसरा

ये पंक्तियाँ भी संकेत करती हैं कि देश की गरिमा की खोज कर ही आत्मिक आलोक की उपलब्धि हो सकती है । इसी भाव से संबद्ध एक और तेजदीप्त चित्र द्रष्टव्य है :-

कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम,
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम,
वह रुद्ध द्वार का छाया-तम तरने को -
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार -
तोड़ने को विषम वज्र-द्वार ;
उमड़े भारत का भ्रम अपार हरने को ।

तुलसीदास की प्राण-चेतना सामूहिक स्तर पर क्रियाशील हो गई है । वह अपना ही नहीं, भारत देश का अपार भ्रम हरने को उद्यत है । निराला की काव्यभाषा का सतही अध्ययन करने पर कोई इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि उनके काव्य में ओज का समावेश उनकी समास-प्रधान क्लिष्ट शब्दावली द्वारा हुआ है, पर वास्तविकता यह नहीं है । जानकीवल्लभ शास्त्री ने निराला के काव्य में अन्तर्निहित ओज का बहुत सटीक उद्घाटन किया है - "समस्त शब्दों द्वारा ओज सृष्टि करने की चाह से भी वे कायल नहीं हैं । कवि की आंतरिक शक्ति के बिना पदों में विद्युत्कान्ति आ नहीं सकती ।"[१]

कवि की इस आन्तरिक शक्ति के बड़े अच्छे उदाहरण उपर्युक्त दोनों छन्द हैं, जिनमें समस्त शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है, परुष वर्ण-योजना का भी कोई आग्रह नहीं है, पर इसके बावजूद दोनों छन्द भरपूर ओजस्विता से युक्त हैं ।

तुलसीदास का यह दृढ़ संकल्प अपनी पत्नी रत्नावली के स्मृति-चित्र को देखकर डगमगा जाता है । बड़ी मनोवैज्ञानिक कुशलता से निराला ने तुलसीदास के ऊर्ध्वोन्मुख मानस के चित्रण के ठीक बाद रत्नावली के प्रबल आकर्षण का प्रसंग रखा है । रत्नावली के कामिनी-रूप की सीमा अत्यन्त सटीक चित्र में प्रस्तुत हुई है :-

---

१) साहित्य-दर्शन, पृ० ३०६

यह निराला की बहुमुखी प्रतिभा है, जिसके कारण वे एक ओर मन की ऊँची-उड़ान से बड़े विराट चित्र पूरे आत्मविश्वास के साथ काव्य में प्रतिष्ठित करते हैं, और दूसरी ओर मानवीय आकर्षण की प्रभावपूर्णता को पकड़ सधे ढंग से पकड़ते हैं। " तुलसी उस दृग-छवि में बँधकर " का सरल सौन्दर्य-चित्रण दर्शनीय है। मन किस प्रकार धीरे-धीरे आकर्षण की ओर उन्मुख होता है और आकर्षण किस प्रकार उसको अपने अधीन कर लेता है, उसको छन्दों में निराला ने मूर्त कर दिया है।

तुलसीदास चित्रकूट यात्रा से घर लौट आते हैं। पत्नी के आकर्षण-पाश में बंधे उन्हें सृष्टि-व्यापी सौन्दर्य के मूल में उसी की मूर्ति दिखलाई पड़ती है। छायावादी कवि जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों को भी किस प्रकार सार्वभौम रूप में प्रस्तुत करते हैं, यह निराला के इन तीनों चित्रों (४०,४१,४२,) में देखा जा सकता है। जो प्रकृति में जो भी है वह रत्नावली से संपृक्त है। तुलसीदास रत्नावली को सृष्टि-रहस्य के रूप में देखते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि में उसका शारीरिक आकर्षण प्रधान है। निराला उनके इस विभ्रम का खण्डन प्रस्तुत छन्द में बड़े उदात्त ढंग से करते हैं :-

जिस शुचि प्रकाश का सौर-जगत्
रुचि-रुचि में खुला, असत् भी सत्
वह बँधा हुआ है एक महत् परिचय से,
अविनश्वर वही ज्ञान भीतर ;
बाहर भ्रम-भ्रमरों को, भास्वर ;
वह रत्नावली-सूत्रधर, पर आशय से।

वह रत्नावली विश्व की सूत्रधर है, पर बाह्य रूप से नहीं, उस आन्तरिक रहस्य से, जो संसार की एकता का कारण है। शुद्ध-बुद्ध त्रिपुर सुन्दरी की-सी परिकल्पना यहाँ पर है। " भ्रम-भ्रमरों " का प्रयोग कवि का अपना है। और [illegible] " आत्मा-बांधव " (७), " सुख-स्वरित वाक " (८) जैसे मौलिक प्रयोगों की तरह इसे भी आक्षेप का शिकार होना पड़ा है। निराला के विविध

लौकिक शब्द प्रयोगों, व्याकरण-रूपों से लेकर तुक की प्रचण्डकार चतुर्वेदी ने पढ़ी कहीं, किन्तु उनका टिप्पणी प्रस्तुत की है - " जिस खड़ीबोली का नव संस्कृता के वाग्जाल से निकलकर भारतेन्दु जी ने विकास दिया, द्विवेदी पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी तथा अन्य महारथियों ने परिमार्जित एवं नियंत्रित किया, निराला जी की " तुलसीदास " में वही खड़ीबोली फिर से पूर्व काल के अनस्थिरता - अँधेर में इधर-उधर बुरी तरह भटकने लगी ।" [1]

" तुलसीदास " काव्य का कोई भी प्रबुद्ध अध्येता इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हो सकता । उक्त आलोचक की दृष्टि भाषा-वैज्ञानिक व्यवस्था पर अधिक है, यहाँ भाव से उन्मेषात्मक काव्यभाषा पर कम ।" निरंकुशाः हि कवयः " से वैज्ञानिक स्तर पर उनका छोड़ भी व्यावहारिक रूप में उनको ध्यान में नहीं रखा जाता, यह आलोचना के लिए एक विडम्बनामयी स्थिति है । निराला-काव्य में शब्द-प्रयोग की स्वच्छंदता लगभग हर जगह अर्थ की सघनता के लिए है (लगभग का प्रयोग उनकी काव्यभाषा के प्रति किसी अतिरंजनामय दृष्टिकोण की संभावना को समाप्त करने के लिये है ।), पांडित्य-प्रदर्शन के अभिप्राय से नहीं । कवि ने भ्रम-भ्रमरों का अर्थ टिप्पणी में लिखा है - भ्रम में पड़े हुए लोग - संस्कृत भाषा की " भ्रम् " धातु भटकने, " भूलने ", " चक्कर खाने " का अर्थ देती है । स्वयं " भ्रमर " शब्द में भटकने की क्रिया का आभास निहित है । यहाँ भ्रम-भ्रमरों के प्रयोग में संस्कृत धातु भ्रम् के अर्थ और " भ्रमरवृत्ति " (भटकाव) दोनों का सन्निवेश है । चूँकि प्रसंग माया के आकर्षण जाल का है, अतः यह प्रयोग और सार्थक प्रतीत होता है

तुलसीदास रत्नावली के प्रति आसक्ति को ही जीवन का केन्द्रीय सत्य मान बैठते हैं :-

उस प्रियावरण प्रकाश में बँध,
सोचता, - " सहज पड़ते पग सध ;
शोभा को लिए ऊर्ध्व औ अध " घर-बाहर,
यह विश्व सूर्य, तारक-मंडल
दिन, पक्ष, मास, ऋतु वर्ष चपल
बँध गति प्रकाश से हुए सकल पूर्वापर ।"

---

१) आधुनिक हिन्दी कविता की भाषा, पृ० ८०

भोग के लिये हैं, वे शुभ नहीं हैं । वास्तविक ज्ञानालोक इस स्थूल भाव से परे है ।

पत्नी के प्रति अपनी गहन आसक्ति से बँधे तुलसीदास के जीवन में एक मोड़ आता है । एक दिन रत्नावली का भाई अपनी बहन को घर ले जाने के लिए आता है । कथा के इस अंश का निम्नांकित वर्णन निराला टकसाली भाषा में कवि करता है । रत्नावली के भाई का यह आत्मीय आक्षेप भाषा की रवानगी के कारण बहुत स्वाभाविक बन पड़ा है :-

" हो गयी रत्ना कितनी दुर्बल
चिन्ता में बहन, गयी तू गल ?
माँ, बापूजी, भाभियाँ सकल पड़ोस की
हैं विकल देखने को सत्वर
सहेलियाँ सब ताने देकर
कहती हैं, बैठा कर के घर, था न सखी ।"

भाषा के एकान्तिक आभिजात्य के निकट जनसामान्य से जुड़ी हुई भाषा के इस रूप का प्रयोग निराला के शिल्पगत दोहरे स्वभाव का द्योतक है । " सब ताने देकर " " बैठाकर " " के घर " जो प्रयोग भाषा- शैथिल्य के सूचक नहीं हैं, अपितु वर्ण्य-स्थिति और वर्णन की समानुरूपता के प्रतिफलन हैं ।

बहुत छोटे शब्द-प्रयोग भाषा की समाहार शक्ति में कितनी वृद्धि कर देते हैं, इसका प्रमाण ६४वें छंद में " कुंकुम-शोभा " प्रयोग में देखा जा सकता है -

बोली भाभी, उगना कुंकुम-शोभा की ।

रत्नावली के लिए " कुंकुम-शोभा " का यह बिंब उसके सौभाग्य, श्री की छवि-छायाएँ उद्भूत करता है, और समग्र छंद को अपनी आभा से आलोकित करता है । यहाँ कला-श्रेष्ठता और सरलता का समन्वय उल्लेखनीय है, जिसके कारण रत्नावली की भाभी का यह प्रयोग भाषिक वर्णन में संभावित हो जाता है, और वस्तु एवं बिंब का संयुक्त रूप प्रस्तुत करता है । शब्दों की प्रभाव-शीलता ऐसे स्थलों में देखी जा सकती है ।

मानव-हृदय में विरोधी भावों की एक साथ अभिव्यक्ति के चित्रण की दृष्टि से छायावादी कवियों में प्रसाद सिद्धहस्त हैं। विशेषतः उनकी "कामायनी" में इस स्थिति के चित्र बड़ी संख्या में हैं। निराला ने रत्नावली के मन में उठते हुए परस्पर विपरीत भावों की टकराहट में एक भाव की विजय का बड़ा संश्लिष्ट रूप निम्न बिंब में प्रस्तुत किया है -

उस प्रतिमा का, आया तब कुछ
मर्यादागर्जित धर्म विपुल,
कुछ अश्रु-भार से झुकी पलक छवि पावन,
घन घिर-घिर निस्सीम गगन
उमड़े भावों के घन पर घन,
फैला, ढक सघन स्नेह-उपवन, यह सावन।

एक ओर रत्नावली अपने पति के प्रति सघन से भरी हुई है, दूसरी ओर पिता के परिवार की ममता भी उसे बाँधे हुए है। भाई के उपालंभ उसे और भी संकुचित कर देते हैं। अन्ततः परिवार की ममता विजय पाती है। भावों के सावनकालीन बादलों ने रत्नावली के हृदय-रूपी निस्सीम गगन को घेर लिया। प्रिय के स्नेह का उपवन उन बादलों द्वारा ढक दिया गया। अन्तिम चार पंक्तियों की गतिशीलता में रत्नावली के आन्दोलित भाव सजीव हो उठे हैं।

रत्नावली अपने कन्या-रूप की मर्यादा-निर्वाह के लिए भाई के साथ पितृ-गृह जाने को उद्यत हो जाती है। उसकी आंतरिक ग्लानि और उसके उन्मोचन के प्रयास को कवि ने एक पौराणिक बिम्ब में रूपायित किया है :-

ज्यों पृथ्वी से निकली सदोष वह सीता,
अंक में उसी के आज लीन -
निज मर्यादा पर समासीन,

डॉ० प्रतिमा कृष्णबल ने इस बिम्ब की प्रसंग-प्रतिकूलता पर आपत्ति प्रकट की है - इस छंद में ग्लानि-पीड़ित रत्नावली की मनःस्थिति को तीव्र बनाने के लिए निराला ने सीता के भूमि-गर्भ में विलीन होने का जो बिम्ब

में पुष्पानुभावों का निष्कलंकभाव नहीं प्रस्तुत कर रहा है । तुलसीदास की मुग्ध स्थिति का मधुमयपरक अंकन निम्न छन्द में हुआ है :-

हैं मुँदे नयन, ज्ञानोन्मीलित,
कलि में सौरभ ज्यों, चित में स्थित ;
अपनी असीमता में अवसित प्राणाश्रय ।
जिस कलिका में कवि रहा बंद,
वह आज उसी में खुली मंद,
भारती-रूप में सुरभि-छंद निष्प्रश्रय ।

उनके बाह्य नेत्र मुँदे हुए हैं, पर ज्ञान-नेत्र जाग्रत हैं । प्राणों से तादात्म्य की स्थिति बताने के लिए कली में निहित सौरभ की उपमा सटीक है । उनकी सरस्वती से सुवासित होने का अंकन बड़ी सुकुमार रीति से हुआ है । यह जागरण संपूर्ण जगत् को प्रभावित कर देता है, एक अनोखा मुक्ति-भाव उद्भूत होता है । शब्दों में भी आन्तरिक उल्लास का स्पंदन हो रहा है -

जागी जगती उठीं छल-छल
जागे भावाकुल शब्दोच्छल,
गूँजा जग का कानन-मण्डल, पर्वत-तल ;
सूना उर ऋषियों का ऊना
सुनता स्वर, हो हर्षित, दूना,
आसुर भावों से जो भूना, था निश्चल

जागरण के प्रभात का चित्र कवि की मौलिक कल्पना से अनुप्रेरित है -

जागो जागो आया प्रभात,
बीती वह, बीती अंध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल ;
बाँधो बाँधो किरणें चेतन ;
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमा बल ।

और अपने से उगा मैं
कलम मेरा नहीं लगता
मेरा जीवन आप जगता

कवि का यह निराला अंदाज़ अनुकरणीय है, जिसमें शब्दों की सपाटता में व्यंग्यत्व पैदा कर दिया गया है । सामान्य जन की आत्मनिर्भरता को तूल देते हुए कुकुरमुत्ता का औद्धत्य- भरा आत्मविश्वास अपना सीधा उपयुक्त शैली-भाषा में उभर उठा है :

तू है नकली, मैं हूँ मौलिक
तू है बकरा, मैं हूँ कौलिक
तू रंगा और मैं धुला
पानी मैं, तू बुलबुला

" तू है नकली, मैं हूँ मौलिक " की उद्घोषणा सामान्य-साधारण की स्वनिर्मित शक्ति को स्वर देती है, जिसमें स्थायित्व की प्रतीति " पानी मैं, तू बुलबुला " के बिंब द्वारा होती है ।

कुकुरमुत्ता जब अपनी तारीफ़ के पुल बाँधता है, तो अतिशयोक्तिपूर्ण स्थिति उत्पन्न होती है । सृष्टि-व्यापी विस्तार में वह अपने को विद्यमान मानता है । चीन का छाता, भारत का छत्र, महायुद्ध का पैराशूट, विष्णु का सुदर्शन चक्र, यशोदा की मथानी, राम का धनुष , बलराम का हल - सभी में उसकी सत्ता अन्तर्व्याप्त है, इतना ही नहीं -

सुबह का सूरज हूँ मैं ही
चाँद मैं ही शाम का ।

इतिहास, भूगोल, दर्शन, संगीत, साहित्यकला- ग़रज़ यह कि दुनिया की हर चीज़ उसके प्रभाव-क्षेत्र में है । ऐसी पंक्तियों में कवि की निरीक्षण-शक्ति द्रष्टव्य है । कुकुरमुत्ता ने इस सृष्टि -व्यापी महत्त्व को स्थापित कर यह क्या कहना चाहता है, यह एक विवादास्पद प्रश्न रहा है । ऊपरी दृष्टि से देखने पर तो कुकुरमुत्ता की इस लम्बी-चौड़ी डींग में निरर्थकता की प्रतीति होती है

'कुकुरमुत्ता' के दूसरे खण्ड का आरंभ नव्वाब के बाग के बाहर पड़े कापड़ों की दीन दशा के वर्णन से होता है। निम्नवर्गीय मनुष्यों के कुत्सित जीवन को वर्णन में प्रामाणिक बनाने के लिए उन्हीं से सिरजी हुई यह भाषा अपने अभिप्राय में अनुपम है :

जगह गन्दी, रुका सड़ता हुआ पानी
मोरियों में, जिन्दगी की लन्तरानी –
बिलबिलाते कीड़े, बिखरी हड्डियाँ
सेलरों की परों की थी गड्डियाँ
कहीं मुर्गी, कहीं अण्डे
धूप खाते हुए कण्डे।

'जगह गंदी, रुका सड़ता हुआ पानी / मोरियों में, जिन्दगी की लन्तरानी' की सपाटता में जो संप्रेषण अनुस्यूत है, वह भाषा के साथ अनुभव की सच्चाई की ओर संकेत करता है। इस पंक्ति में अर्द्ध-विरामों की नियोजना भी कवि की परिवेश-ग्रहण दृष्टि को उभारती है। कवि पूरी निर्ममता से, बिना किसी संकोच या पक्षपात के, निम्नवर्गीय जीवन में व्याप्त यथार्थ को उजागर कर रहा है। आगे 'जिन्दगी की लन्तरानी' के नमूने के रूप में 'बिलबिलाते कीड़े, बिखरी हड्डियाँ / सेलरों की परों की थी गड्डियाँ। कहीं मुर्गी कहीं अण्डे / धूप खाते हुए कण्डे' का प्रस्तुतीकरण एक तिलमिला देनेवाली धमक की सृष्टि करता है। इस विषम वातावरण की परिणति इस प्रकार होती है –

हवा बदबू से मिली
हर तरह की बासीली पड़ गई।

यह अपने में बड़ी बात है कि जहाँ तत्सम शब्दों से भरपूर और सफल प्रयोग से कवि ने हिन्दी के अभिजात शब्दकोश की संपन्नता दी है, वहीं वहीं 'कुकुरमुत्ता' के माध्यम से, बेहद मामूली, ग्रामीण और कड़े-कठोर शब्दों से भरा-पूरा आत्मविश्वासी व्यक्तित्व सिरजा है, और इस परंपरित धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया है कि कविता की रचना के लिए संस्कारशील शब्द ही उपयुक्त होते हैं।

लोभ से परवश हुई नव्वाबजादी बहार कुकुरमुत्ता पर निसार होती अपनी सखी गोली, नौकरानी और टेरियर कुत्ते के साथ गोली की झोपड़ी में जाती है। उसका परिहासमय चित्रण कवि करता है -

चली गोली आगे ज्यों डिक्टेटर
बहार उसके पीछे ज्यों भुक्खड़ फ़ालोअर
उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर
आधुनिक पोयेट (Poet)
पीछे बाँदी बचत की सोचती
कैपिटलिस्ट क्वेट ।

इसमें सन्देह नहीं कि इस तरह के निराले व्यंग्य-चित्रों की निकट नियोजना की शुरुआत कर निराला हिन्दी कविता की संवेदना को एक नया मोड़ देते हैं। " डिक्टेटर ", " भुक्खड़ फ़ालोअर ", " कैपिटलिस्ट क्वेट " और सब से बढ़कर " आधुनिक पोयेट " की यहाँ अच्छी-ख़ासी ख़बर ली गई है :

गोली की माँ द्वारा पकाये गये कुकुरमुत्ता के कलिया-कबाब को शौक से खाकर बहार अपने पिता नव्वाब से उसका ज़िक्र करती है। नव्वाब भी लोभ के वशीभूत होकर अपने माली से कहते हैं :

" कुकुरमुत्ता पकड़ के ला तू ताज़ा-ताज़ा ।"

माली के निषेधात्मक उत्तर पर गुस्से से काँपते हुए नव्वाब माली को कुकुरमुत्ता उगाने का हुक्म देते हैं। माली के इस उत्तर के क्रम में निराला बदलते हुए व्यंग्य की पुष्टि के साथ " कुकुरमुत्ता " काव्य की समाप्ति करते हैं :

बोला माली, " फ़रमाएँ मआफ़ ख़ता,
कुकुरमुत्ता अब उगाया नहीं उगता ।"

" कुकुरमुत्ता " के माध्यम से जन-साधारण और सर्वहारा की अदम्य जीवनी-शक्ति और उसकी अकृत्रिम जीवन-पद्धति का यत्नपूर्वक उद्घोषण यहाँ कवि करता है। और, जन-साधारण के जीवन में रची-बसी भाषा की स्थिति जिससे जुड़ी हुई है, जो किसी के आदेश से नहीं बनती, वरन् स्वतः सहज रूप में विकसित होती है। हिन्दी काव्यभाषा के इस नये और अपेक्षाकृत अकृत्रिम आयाम का गहराई में संस्पर्श कर निराला ने परवर्ती कविता की व्यापक और गद्यात्मक प्रवृत्ति के लिए पृष्ठभूमि तैयार की है।

("स्नेह-निर्झर बह गया है")

निराला के गीतों में - विशेषत: उत्तर जीवनकाल के गहन आत्मसंघर्ष से युक्त गीतों में एक ओर आत्मक्षरण की अनुभूति कितनी विरल और गंभीर है, दूसरी ओर उतना ही अपनी रचनात्मकता और आत्मदान का तीखा, ताज़ा पुट (प्रसाद की तरह प्रशांत, उदात्त नहीं) उभरता है। ये दोनों तत्त्व जटिल, सूक्ष्म और अपने में विशिष्ट हैं तथा इनकी टकराहट अधिकतर गीतों में अर्थ-प्रक्रिया को सघन और संचरणशील बनाती है। "स्नेह-निर्झर बह गया है" (१९४२ ई०) निराला का ऐसा ही गीत है।

अपने जीवित प्राण-तत्त्व के लिए कवि ने रेत का जो बिंब प्रस्तुत किया है, वह निस्सारता, क्षणिकता और आकर्षणहीन शून्यता की अर्थ-छायाएँ उद्भूत करता है :

स्नेह-निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।

स्नेह-संवेदना से शून्य, मृत्यु के स्पंदन को अनुभूत करनेवाला व्यक्ति अपने अशांत तन के लिए ऐसी परिकल्पना करे, तो वह कविता का विशिष्ट, रचनात्मक अनुभव बन जाता है। रेत का बिंब अपने निरावरण में भारवाही जीवन की खोखली शून्यता को विवृत करता है।

आगे कवि आम की सूखी डाल के बिंब में से विगत के वैभव और वर्तमान की अवसन्न स्थिति का करुण किन्तु भव्य चित्र विजड़ित करता है :

आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है, "अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ -
जीवन दह गया है।"

घटना में अपनी व्यथा की अनुभूति बराबर रखना स्वाभाविक भी है। आगे आम की सूखी डाल के बिंब में से उनका यही आत्म-बोध व्यक्त हुआ है :

दिये हैं मैंने जगत को फूल-फल,
किया है अपनी प्रभा से चकित चल ;
पर, अनश्वर था सकल पल्लवित पल—
ठाट जीवन का वही
जो ढह गया है !

आम की सूखी डाल ने अपने यौवन में फल-फूल का दान किया है, यानी सर्जनशील व्यक्तित्व जगत को सुभावन-कामना प्रदान करता है उसे समृद्ध करता है। आत्म-धारणा का दूसरा अंश यहाँ पर दार्शनिक की तटस्थता से संपृक्त हो जाता है, जो सहज नहीं जाता, अनुभव को महिमाशाली बना देता है :

पर, अनश्वर था सकल पल्लवित पल
ठाट जीवन का वही,
जो ढह गया है।

ठाट ऊपरी चमक-दमक, लावण्य, वैभव का प्रतीक है। वह ढह गया है, पर जो स्थायी तत्व है, सर्जन-प्रक्रिया का परिणाम है, वह सुरक्षित है। आंतरिक स्मृति अक्षुण्ण है। रचनाकार का जो "पल्लवित पल" रहा है, वह समय के स्तर पर विलुप्त हो जाने पर भी प्रभाव के स्तर पर अनश्वर है। रचनाकार के और जगत के मानस में उसकी स्मृति सदा बनी रहती है।

अंतिम अंश में पुलिन पर अब न आनेवाली प्रियतमा का चित्र भी इसी बाहरी शून्यता को उरेहता है :

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा।
बह रही है हृदय पर केवल अमा,
मैं अलक्षित हूँ, यही
कवि कह गया है।

को याद दिला देती है -

न था कुछ तो खुदा था,
कुछ न होता तो खुदा होता ।
डुबोया मुझको होने ने
न मैं होता तो क्या होता ? ("गालिब")

+ + + + +

तुम मेरे पास होते हो गोया ।
जब कोई दूसरा नहीं होता ।। ("मोमिन")

यद्यपि निराला की पंक्तियों का इन उद्धृत शेरों से कोई तथ्यगत साम्य नहीं है, ग़ालिब के शेर में अहं के एकाकी ,अस्तित्व की अनुभूति से उत्पन्न विषाद का अंकन है, मोमिन के शेर में प्रिय से निकटता सान्निध्य की स्थिति का कौतूहलपूर्ण चित्रण है, तथापि संप्रेषण की सादगी और इस सादगी में अनुस्यूत एक भंगिमा के एकतार (भीतर बाहर, बाहर भीतर , देखा जब से, हुआ अनश्वर ", " डुबोया मुझको होने ने । न मैं होता तो क्या होता " जब कोई दूसरा नहीं होता ") की दृष्टि से तीनों उद्धरण समानान्तर दिशा की ओर बढ़ते प्रतीत होते हैं ।" "हुआ " से प्रस्तुत गीत का " अनश्वर " शब्द अनेक सूक्ष्म-गंभीर अर्थ छायाएँ उद्भूत करता है, जिनमें सांसारिक संघर्ष से मृत्यु निवृत्ति का भाव उतना नहीं है, जितना मरणधर्मा होने के बावजूद गहरी रचनात्मकता से परिपूर्ण व्यक्तित्व का आत्म विश्वास है । पहले भी " स्नेह-निर्झर बह गया है " गीत में कवि कह चुका है - " पर अनश्वर था सकल पल्लवित पद ।"

जन-साधारण में प्रचलित गीत रूप कजली को इस गीत में एक नये और प्रभावशाली ढंग से कवि ने प्रस्तुत किया है -

काले काले बादल छाये न आये बीर जवाहर लाल ।
कैसे कैसे नाग मँडलाये न आये बीर जवाहर लाल ।

जवाहर लाल नेहरू को लक्ष्य कर कवि ने शोषित जनता की दुर्दशा

को, वर्षा के स्थल में विनोदमय रीति से चित्रित किया है । लेकिन भी यह विनोदमयता शोषण की पीड़ा को और तीव्र कर देती है -

> पुरवाई की है फुफकारें, झन-झन ये सिर की बौछारें,
> हम हैं जो गुफा में समाये, न आये चीर फाड़कर छात ।

" बेला " में संवेदना के वैविध्य से पीछे भाषा की विविध भंगिमाएँ, छंदों के नवीन रूप हैं, लेकिन कुछेक को छोड़कर " बेला " के लगभग सभी गीत एक नये प्रयोग के आकर्षण से अधिक प्रेरक हैं, रचनात्मकता का कोई गहरा उन्मेष उनमें नहीं दिखलाई देता । स्पष्ट जाहिर है कि खड़ीबोली की उच्चारणगत मौलिकता और गेयता की स्थापना में ये गीत एक सीमा तक सफल हुए हैं, जो यहाँ कवि का एक खास उद्देश्य रहा है ।

(" नये पत्ते ")

सही मानों में सामान्य -साधारण जीवन-स्थितियों से सिरजी हुई भाषा की शुरुआत निराला में " कुकुरमुत्ता " से होती है, जो अपनी बेजोड़ संरचना के कारण सम्पूर्ण आधुनिक हिन्दी काव्य में ऐतिहासिक महत्व रखता है । " कुकुरमुत्ता " के प्रथम संस्करण में (जो एक संकलन है) " कुकुरमुत्ता " कविता के अलावा अन्य सात कविताएँ हैं - (१) " गर्म पकौड़ी " , (२) " प्रेम-संगीत " (३) " रानी और कानी " (४) " खजोहरा " (५) " मास्को-डायलाग्स " (६) " स्फटिक-शिला " और (७) " [illegible] " । कालांतर में निराला ने इन सातों कविताओं को अपने एक काव्य संकलन " नये पत्ते " में सम्मिलित कर लिया (द्र० " कुकुरमुत्ता " की भूमिका) और " कुकुरमुत्ता " का दूसरा संस्करण स्वतंत्र पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ ।

" कुकुरमुत्ता " से शुरू हुई भाषा के ठेठ विधान की यात्रा " नये पत्ते " में और आगे बढ़ती है। यहाँ पर आकर कवि उपेक्षित -सामान्य को विविध ढंगों से देखने की कोशिश करता है ।

मैं जितना चटोरी हूँ, किन्तु बाईं आँख (जो कानी है) सारी सहानुभूति के बावजूद अपनी कामुकता के कारण केवल भयानक यथार्थ की नग्न सच्चाई सी रह गई -

> डोलिन वह बाईं आँख कानी
>
> ज्यों की त्यों रह गई रखती भिखारिनी ।

यहाँ "भिखारिनी" में भी नग्न सत्य की कड़ी मार है, वहीं कविता का मर्म निहित है ।

" युगों की गाँठ " के संग्रह में " रानी और कानी " में अनुभव और भाषा का एक नवीन नया धरातल मिलता है । इसी प्रकार रोमान्टिक और क्लासिकल कलाकार का एक नया आयाम " नये पत्ते " की एक दूसरी कविता " प्रेम-संगीत " में देखा जा सकता है, जिसमें अन्तर्जातीय प्रेम की स्वच्छंदता का विनोदमय चित्रण है और इस दृष्टि से शीर्षक की अभिजात शब्दावली " प्रेम-संगीत " कविता के वर्ण्य के संदर्भ में बड़ी व्यंग्यपूर्ण लगती है । कविता में सपाट किन्तु वक्र भाषा का तेवर द्रष्टव्य है -

> बम्हन का लड़का
>
> मैं उसको प्यार करता हूँ ।
>
> जात की कहारिन वह
>
> मेरे घर की पनिहारिन वह
>
> आती है होते तड़का
>
> उसके पीछे मैं मरता हूँ ।

काव्य-विषय के रूप में " गर्म पकौड़ी " की अवतारणा कुछ-कुछ उसी प्रकार के साहस और नवीनता की सूचक है, जो छायावादी काव्य के प्रारंभ में " नीरव प्रेम ", " उच्छ्वास ", " छाया ", " आँसू ", " लहर ", जैसी सूक्ष्म विषय-वस्तुओं पर लिखने की प्रवृत्ति विकसित हुई थी । " गर्म पकौड़ी " में जन-साधारण का तीव्र-दुर्निवार आकर्षण मुखरित हुआ है । दो नये अप्रस्तुतों की योजना देखने योग्य है -

> मेरी जीभ जल गई,
>
> सिसकियाँ निकल रहीं ,

तीखी आलोचना करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है - सौन्दर्यप्रियता का यह 'एण्टीक्लाइमेक्स' है, जो अश्लीलता की सीमा तक पहुँचता है।[१]

किन्तु 'खजोहरा' में अश्लीलता के बजाय सामान्य-साधारण के जीवन की कुछ स्थितियों का बड़े उन्मुक्त भाव से अंकन हुआ है। यदि अश्लीलता है, तो वह जन-सामान्य के जीवन में है, रचनाकार के चित्रण में नहीं, जो स्वयं अपनों में स्फुट और सहज है। संवेदना और अभिव्यक्ति के स्तर पर कवि का यह साहस है, जिसके कारण सामान्य-साधारण जन के मामूली से लगनेवाले अनुभवों को वह काव्य के स्तर पर प्रतिष्ठापित करता है।

'स्फटिक-शिला' में बहुत अनौपचारिक रीति से कवि चित्रकूट की यात्रा का वर्णन करता है, जिसमें उसकी यथार्थ-ग्रहण दृष्टि धार्मिक स्थल की महत्ता के वर्णन की ओर उन्मुख न होकर अत्यन्त सामान्य दृश्यों तुच्छ समझे जानेवाले लोगों पर टिकी है। एक बूढ़ी नारी के प्रति कठोर करुणा का सपाट गद्यात्मकता में उभर उठी है -

मैंने देखा, बड़ा मैला
  मन उसका सनाथ से
चोट खाये हुए वह रामजी के राज से,
  बूढ़ों को मिला नहीं,
  जिनसे कुछ भी कहीं
  ढाढस बँधाया मैंने मीठे-मीठे शब्द कहकर
  देखती रही वह आँसुओं की आँखों रह रहकर

यहाँ 'बड़ा मैला। मन उसका सनाथ से' में वृद्ध नारी के हृदय के विक्षोभ, खीझपन की बड़ी सटीक अभिव्यक्ति मिली है। आगे 'चोट खाये वह रामजी के राज से / बूढ़ों को मिला नहीं / जिनसे कुछ भी कहीं' में समूची धार्मिकता-आध्यात्मिकता पर प्रहार है। 'रामजी के राज' प्रयोग

---

१) कवि निराला, पृ० ५३

अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तर पर कवि का अन्तर यहाँ द्रष्टव्य है, जिसके फलस्वरूप वह नितान्त स्वाभाविक मानवीय व्यापार को पौराणिक प्रसंग की परिणति देकर एक प्रकार से क्षति-पूर्ति करने की चेष्टा करता है, कामी को उदात्त कल्पना से संपृक्त कर उसकी तीव्रता को कम कर देता है। जानकी के स्मरण से नारद भले ही अब उस नग्न नारी-शरीर से अपने को पृथक् कर लें, पर इसमें संदेह नहीं कि कल्पित मानस को उघारने का उसका उद्देश्य व्यर्थ नहीं हुआ है। हिन्दी-काव्य के संदर्भ में नई और इसीलिए साहसपूर्ण ऐसी स्थितियों को, उनके सम्पूर्ण रूप में उपस्थित कर सकने की चेष्टा को केवल अश्लीलता का " बिल्ला " देना समीक्षा की संकीर्णता का सूचक होगा। इन्होंने अपनी सारी सपाटता में नग्न शरीर और (साथ-ही) नग्न मानस की क्रिया और प्रतिक्रिया का एक जीवन्त चित्र बनाने की बढ़िया कोशिश की है।

विवेच्य कविताएँ " कुकुरमुत्ता " के प्रथम संस्करण में भी देखी जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त " नये पत्ते " की कविताओं " थोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा ", " राजे ने अपनी रखवाली की ", " कुत्ता भौंकने लगा, " डिप्टी साहब आये " महँगू महँगा रहा - " में ग्रामों की विविध भूमियों का आकलन वर्णन की नितान्त गद्यात्मक, किन्तु व्यंग्य-प्रवण भाषा में हुआ है और इनमें " कुकुरमुत्ता " की कविताओं के आगे की विकास-यात्रा का बोध होता है। विशेषता यह है कि " मास्को-डायलाग्स " की तरह इन कविताओं में भी वर्णन के भीतर से व्यंग्य की अबाध ध्वनि सुनाई पड़ती है, अभिधा के बावजूद उनमें " स्वशब्दवाच्यत्व " नहीं है। " महँगू महँगा रहा " का एक खासा उदाहरण देखने योग्य है -

आजकल पण्डितजी देश में विराजते हैं।
माताजी को स्वीटजरलैण्ड के अस्पताल
तपेदिक के इलाज के लिए छोड़ा है।
बड़े भारी नेता हैं।

यहाँ एक-एक शब्द में (जो अलग-अलग नितान्त सामान्य है, किन्तु विशिष्ट क्रम में अनोखी है) कथनी और करनी के बीच के अंतराल पर बड़ा

उद्घाटन हुआ व्यंग्य कवि ने किया है । निराला की यह व्यंग्य-प्रणाली उन्हें आधुनिक भाव-बोध में विशिष्ट स्थान देती है ।

" नये पत्ते " - और उसके पूर्व " कुकुरमुत्ता " और " अणिमा " काव्य-संकलन की कुछ यथार्थपरक कविताओं के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी उठाया जा सकता है क्या निराला जन-साधारण के जीवन से अभिव्यक्त इस भाषा को उतना ही समर्थ, प्राणवान् और अर्थ-प्रवण बना सके हैं, जितना कि रोमाण्टिक और क्लैसिकल काव्य की तत्सम शब्द-प्रधान भाषा को ?

भाषा के अभिजात और सामान्य दोनों धरातलों का तेजस्वी निराला ने समान दक्षता से किया है और जन-साधारण के जीवन से निकली उनकी भाषा में कोई वर्जना नहीं है, कोई हीनता-ग्रन्थि नहीं है । " कुकुरमुत्ता " की ऊँची-नीची डींगों में " खजोहरा " की ग्राम्य-प्रकृति के वर्णन में " स्फटिक-शिला " के ठेठ, देसी वातावरण के अंकन में निराला पूरे आत्म-विश्वास से खरी टकसाली भाषा का प्रयोग करते चलते हैं ।

(परवर्ती गीत : " अर्चना ", " आराधना ", " गीतगुंज ")

निराला का परवर्ती काव्य (" अर्चना," आराधना", " गीतगुंज ") अनुभव और अभिव्यक्ति के स्तर पर उनके पूर्ववर्ती काव्य से जुड़ा हुआ है, और कुछ मानों में कवि की पिछली उपलब्धियों को नये संदर्भ में प्रस्तुत करता है । इन परवर्ती गीतों की काव्यभाषा का अध्ययन कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है - (१) इन तीनों गीत - संकलनों का बहुत बड़ा भाग हिन्दी भाषा के निजी सौन्दर्य, लोकपरक सांगीतिक संभावना से युक्त है, और एक-एक दिन में इस प्रकार के कई गीतों की रचना अपने आप में इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत देती है कि गीत-रचना में मँजी निराला की प्रतिभा बड़े बेलाग भाव से, आत्म-विश्वास को क़ायम किये हुए, लोक-तत्त्व को काव्य में प्रतिष्ठित करती है, और इन गीतों में कवि " गीतिका " के संस्कार-निष्ठ शब्दों की रचनात्मक क्षतिपूर्ति

प्यास लगी है, बुझा जाओ,
अमृत के घूँट पिला जाओ ।

प्रणय की तृप्ति और आत्मिक मुक्ति के अनुभव को इस गीत में व्यक्त कर दिया गया है । कुछ आत्मीय प्रतीकों में कवि बेकली के दुःख से उबरने की अनुनय करता है :-

समझा है अपना सपना है,
कुटिया में तपना- तपना है
निठुर दीप-शिखा में जलना है,
मुस्कानें आज खिला जाओ -
अमृत के घूँट पिला जाओ ।

दूसरे गीत " बाँधो न नाव इस ठाँव, बंधु " में गीत की अनुभूतिगत तीव्रता और सुकुमारता को भी मूर्तिमन्त कर दिया गया है -

बाँधो न नाव इस ठाँव, बंधु
पूछेगा सारा गाँव, बन्धु !

यहाँ नाव के न बाँधने की अनुनय और सारे गाँव के पूछने की आशंका में जो लोक-लज्जा का भाव है, वह हिन्दी के अपने तद्भव-रूप से समन्वित इस गीत में रूपायित हो उठा है । उल्लेखनीय यह है कि चित्र सामान्य जन-जीवन का है किन्तु कवि ने उसमें सूक्ष्म और सुकुमार संवेदना अनुस्यूत कर दी है ।

प्रेयसी की स्मृति से उद्भूत आह्लादकारी रोमांच और [illegible] सहज भाषा में इस तरह विवृत हुई है -

यह घाट वही जिस पर हँसकर
वह कभी नहाती थी धँस कर
आँखें रह जाती थीं फँसकर
काँपते थे दोनों पाँव बंधु ।

" हँसकर ", " धँसकर ", " फँसकर " जैसी एकदम बोलचाल की पूर्वकालिक क्रियाएँ प्रणय के उन्मुक्त अनुभव को कैशोर ढंग से व्यक्त करती हैं ।

" [illegible] " के तीन गीत इस खण्ड में सम्मिलित किये जा

सकते हैं ।" झुलसा रहता है अब जीवन "(२२) में जीवन की रुग्णता, [illegible], सीमाहीनता और उदास प्रकृति के अनुभव में संगुम्फित कर दिया गया है :-

झुलसा रहता है अब जीवन,
पतझड़ का जैसा वन-उपवन ।
झर झर कर जितने पत्र नवल
कर गये रिक्त तनु का वल्कल
है चिह्न शेष केवल संबल
जिनसे लहराता था कानन ।

अन्तिम अंश में कवि के मानस में जीर्णता के एहसास [illegible] उससे अवसाद और उसमें एक दार्शनिक निर्लिप्तता उभरती है :

यह वायु चलती जाती है,
कोयल कुछ [illegible] कुछ गाई है,
स्वर में क्या भरी रुलाई है,
दोनों उठते जाते उन्मन ।

३७ वें गीत की नयी अभिव्यक्ति-प्रणाली देखने योग्य है -

मेरा फूल न कुम्हला पाये
जल उलीच कर मूल सींचकर
लौटे तुम तरु-तल से गाये ।

गीत की सारी आशावादिता - प्रकृति के प्रसन्न-उन्मुक्त चित्र, मन की जीवनाकांक्षा - के बावजूद तनाव द्रष्टव्य है -

लौटी ग्राम वधू पनघट से,
लगा चितेरा अपने पट से,
बँधी नाव खिलती है तट से,
कवि के अग्नि-प्राण उकताये ।

सारी निश्चिन्तता के बावजूद 'कवि के अग्नि-प्राण उकताये' में जीवन की बेचैनी और तनाव गहरी हो गई है । इस तरह की पंक्तियाँ आधुनिक

भाव-बोध में बिल्कुल निकट से संस्पर्श करती है ।

" मन न मिले न मिले नहिं के पद " में ज्ञान-हीन मानव की दुर्दशा पर तीखा व्यंग्य है -

गहरी रही वासना की तह,
न बना यौवन, न बना जीवन,
भरे हुए उपवन में अनमन
मानव रहा अमान भरा-मद ।

अंतिम अंश में कवि का विक्षोभ और तीव्र हो गया है -

ज्ञान गया तो प्रायः पशु है,
वसु न हुआ तो निश्चित वसु है,
कलियुग में जब दस्यु है,
अपने प्रण में अप्रण, न आच्छद ।

" ज्ञान गया तो प्रायः पशु है" में 'प्रायः' का प्रयोग ज्ञानहीन मानव के पशुत्व -भाव को हल्का नहीं करता, वरन् और सघन कर देता है, जैसे " तोड़ती पत्थर " कविता में " प्रायः " का प्रयोग दुपहर के भाव को कम न कर और गहराई दे देता है - " प्रायः हुई दुपहर । "

आत्मिक मुक्ति के अनुभव को बहुत मौलिक ढंग से निराला ने प्रस्तुत गीत ' कौपीन भी छाँह तुमने छीनी / पर ही सुगंध रति की भीनी " में मुखरित किया है -

जिस तन से जाना मन भाया,
समझे भी कुछ न समझ पाया,
ऐसी निष्काम हुई काया,
जैसे कोई साड़ी झीनी ।

झीनी साड़ी का अप्रस्तुत सारे प्रसंग को आलोकित कर देता है और निष्कामता का भाव कहीं गहरे जाकर मन को छू लेता है ।" आत्मिक मुक्ति के प्रसंग में इस तरह का मौलिक अप्रस्तुत, आत्मीयता, तन्मयता की अभि-व्यंजनाएँ 'व्युत्पन्न करता है ।

कोई नहीं और,
अब तुम ही ठौर
दूर पथ का पौर
कर दो अभी पार ।

जिसमें कातरता और विनय सिर्फ लय से इस ठहराव में मुखरित हो गये हैं । लय का और अधिक कलात्मक उपयोग ६२ वें गीत में द्रष्टव्य है, जहाँ शब्दों की विशिष्ट संयोजना, भाव का भौतिक रूप एक नई संवेदना जागृत करता है -

मग्न तन, रुग्ण मन
जीवन विषण्ण वन ।
क्षीण क्षण क्षण देह
जीर्ण सज्जित गेह,
घिर गये हैं मेह,
प्रलय के प्रवर्षण ।
चलता नहीं हाथ
कोई नहीं साथ
उन्नत, विनत माथ
दो शरण, दोषारण ।

कला-चेष्टा और सहजता का ऐसा निखरा हुआ रूप करुणा और कातरता से भरा वातावरण में प्रस्तुत करना अपने में स्पृहणीय है । पूर्ववर्ती गीतों में अर्चना, ' स्नेह-निर्झर बह गया है ', के समकक्ष यह गीत अपने रचना-विधान और लय की सरलता -सादगी में एक विशिष्ट स्थान रखता है । शब्दों में कवि ने प्रवाहशील करुणा भर दी है । ' क्षीण क्षण क्षण देह । जीर्ण सज्जित गेह ' में मानव जीवन के दो विरोधी दृश्यों - उतार-चढ़ाव- की अवतारणा है । निराला की सार्थक पद-सृष्टि का बड़ा करुण पर भव्य रूप ऐसे गीतों में देखा जा सकता है । अन्तिम पंक्ति ' दो शरण, दोषारण ' में चमत्कार का उपयोग कितनी भावात्मक व सार्थकता, संवेदनात्मक लिये है

तद्भव प्रयोगों की दृष्टि से तीन गीतों " ऊँट बैल का साथ हुआ है ", " मानव जहाँ बैल घोड़ा है ", " खेत जोतकर घर आये हैं " और उल्लेखनीय हैं। " मानव जहाँ बैल घोड़ा है " अपनी संरचना की ताज़गी में विशिष्ट है-

मानव जहाँ बैल घोड़ा है
कैसा तन मन का जोड़ा है ?

सपाट बयानी का तीखापन ऐसे प्रयोगों में देखा जा सकता है। " मानव-मानव एक है " के नाम पर साम्यवाद के मिथ्या प्रचारकों पर करारा व्यंग्य कवि ने किया है। अन्तिम पंक्तियों " पक पक कर जैसा फूटा है/ कैसा सावन का फोड़ा है " में रिस-रिसकर बही हुई गंदगी और उसके विस्फोट का सटीक अंकन हुआ है।

तत्सम शब्दों के बीच तद्भवों का बड़े बेलाग भाव से प्रयोग निराला की परवर्ती गीत-सृष्टि की एक सामान्य प्रवृत्ति है, यद्यपि पूर्ववर्ती काव्य " सरोज-स्मृति ", " वनबेला ", " दान ", जैसी कविताओं में भी अभिव्यक्ति के ये दोनों रूप मिलते हैं, पर बहुत विस्तार में यह प्रवृत्ति परवर्ती गीतों में दिखाई पड़ती है - उदाहरण स्वरूप उन गीतों को लिया जा सकता है, जिनमें तत्सम और तद्भव के संयोग से विशिष्ट रचनात्मकता संभव हुई है। " आराधना " संकलन से अच्छे उदाहरण हैं। " मानव के तन केतन फहरे " जैसे आवाहन-गीत में भाषा का परिष्कृत रूप है -

मानव के तन केतन फहरे।
विजय तुम्हारी नभ में लहरे।
छूटे के कठ-सम्बल सब हारे
तुम पर जन-तन-मन-धन वारे,
असुरों को पी-पीकर मारे,
अंधकार का मानस घहरे।

गीत की परिणति बोलचाल के इन शब्दों में होती है और वो अस्वाभाविक नहीं लगती -

जो न हुआ वह सुधि होकर
जो न गया वह लौट रहे हर,
जो न हुआ सोचो तुम भी हर,
टेक तुम्हारे मन में ठहरे ।

" आराधना " के तत्सम-तद्भव के सम्मिश्रण में यदि कुछ गीत अपनी सर्जन-प्रक्रिया में अस्पष्ट हैं, उनकी रचनात्मकता का सही बोध नहीं हो पाता । उदाहरणार्थ गीत सं० (२) (४३)। ५०वाँ गीत "तुम से लाग लगी जो मन की " अपनी भाषिक संरचना की दृष्टि से उल्लेखनीय है, जिसमें तादात्म्य की अनुभूति को पहले तो बड़े सहज शब्दों में, परिचित प्रतीकों में मुखरित किया गया है -

तुम से लाग लगी जो मन की
जग की हुई वासना बासी ।
गंगा की निर्मल धारा की
मिली मुक्ति, मानस की काशी ।

विशेषतः पहली दो पंक्तियों की आत्मीयता और अन्तिम दो पंक्तियों का सुस्पष्ट प्रतीक-विधान बड़ा भास्वर प्रतीत होता है । " वासना " और " बासी " के अनुप्रास में तत्सम-तद्भव का मेल बेजोड़ है । एक में आकर्षण की व्यंजना है, दूसरे में उपराम का भाव है । अन्तिम अंश में संस्कृत का " निर् " उपसर्ग रचनात्मक आवश्यकता का प्रतिफलन है, जिसमें मानसिक मुक्ति का विशदता से अंकन हुआ है -

निःस्पृह, निःस्व, निरामय-निर्मम,
निराकुलता, निर्भय, निरुद्गम,
निर्मेय, निराकार, निःसम क्रम,
माया आदि पदों की दासी ।

२४वें गीत " हिम से आतप के तप कुम्हले " में भी तत्सम और तद्भव का ऐसा ही रचनात्मक रिश्ता देखा जा सकता है । कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं -
भीगे कठिन धरा निष्पावन
पंक आविल छक अभिभावक

की " निष्यापन ", " चतुर्दिक ", " अभिभावन " और " सीमा ", " उषाओं की सन्निकटता में ही सच्चा जागरण, पुष्ट सचिंत उदित हो सकती है ।

निराला के मन में तत्सम शब्दावली के प्रति ज़बर्दस्त आकर्षण रहा है, जिसका बहुत सघन रूप उनके पूर्ववर्ती काव्य में देखा जा सकता है । परवर्ती गीतों की सामान्यतया लोक-प्रचलित ठेठ शब्दावली से भिन्न उन्होंने संस्कृतनिष्ठ शब्दों से परिपूर्ण अनेक गीतों की भी रचना की है । " अर्चना " का प्रार्थना-गीत (जिसमें जागरण की कामना है) तत्सम शब्दावली पर आधारित गीत-रचना का एक उत्कृष्ट उदाहरण है । इस गीत की बनावट देखने योग्य है -

तिमिरदारण मिहिर दरसो ।
ज्योति के कर अन्ध कारा -
गार जग को सजग परसो ।

सारा जग अँधेरी कारा है, जिसका अँधेरा तभी मिट सकता है, जब तिमिरदारण मिहिर (सूक्ष्म स्तर पर दीप्तिमान सत्य) स्पर्श करे । " गगन के संपात पर उत्थान देकर प्राण बरसो " की आंतरिक ध्वनि-साम्य की नियोजना से युक्त मौलिक तत्सम-प्रयोग गीत को तीव्र भास्वरता प्रदान करते हैं । " गीतिका " के जागरण-गीतों की संस्कृत-निष्ठ भाषा से साम्य भी रखा जा सकता है । " आराधना " के प्रथम प्रार्थना-गीत " पद्मा के पद को पाकर हे ! " में भी संस्कार-निष्ठ शब्दों की अर्थ-गरिमा अनुस्यूत है । " आराधना " के छठें गीत " मरा हूँ हज़ार मरण / पाई तब चरण-शरण " भी प्रिय-सान्निध्य के अनुभव को तत्सम शब्दों में अभिव्यक्ति देता है, जिसमें " मरा हूँ हज़ार मरण " की मौलिकता आध्यात्मिक सार्थकता और समृद्धि से भरी हुई है । ऐसे प्रयोग संसार की विविध व्यथा बाधाएँ, घात-प्रतिघात की बड़ी सटीक अभिव्यक्ति देते हैं ।

कुछ गीतों में एक शब्द की पुनः पुनः आवृत्ति द्वारा कवि ने उन्हें विशिष्ट संरचना से युक्त किया है । " अर्चना " में " भीड " शब्द की यह आवृत्ति द्रष्टव्य है -

नील जलधि जल
नील गगन-तल
नील कमल-दल
नील नयन-द्वय ।

" नील " शब्द विस्तार और गहराई की व्यंजना करता है, जिसकी अभिव्यक्ति कवि ने प्रकृति के विराट् और कोमल दोनों रूपों में की है । कवि " नील " की यह छटा बड़ी दूर तक उल्लेखित करता चलता है, जिसमें " भूमि ", " मृत्यु डर ", " अनिल -दर ", " नित्य-क्रय " तक समाहित हो जाते हैं । इस प्रकार का यह अहित भाव " नील " की इस आवृत्ति में है, जिसमें शाब्दिक खिलवाड़ नहीं, अनुभव की तल्लीनता है । " आराधना " के पूर्व गीत में भी " नील " की ऐसी ही आवृत्ति हुई है -

नील नयन नील पलक,
नील वदन, नील फलक ।

यहाँ प्रकृति के अपेक्षाकृत कोमल रूपों में " नील " को स्थान दिया गया है । " अर्चना " में " नील जलधि जल " गीत में " नील " और " जलधि -जल " के बीच जो रिक्त स्थान है, वह भी " नील " की गहराई और विस्तार को सूक्ष्म अभिव्यक्ति देता है, यह योजना " आराधना " के प्रस्तुत गीत में नहीं है ।

" आराधना " के पूर्व गीत में " ज्योति " शब्द की आवृत्ति हुई है, जिसमें जागरण, प्रकाश और जीवन्तता के अनुभव को बड़ी रचनात्मक संवेदनशीलता से, 'ज्योति' शब्द की पुनरुक्ति में प्रस्तुत किया गया है । स्वयं निराला के अनेक जागरण-गीतों की संरचना के समकक्ष इस गीत की बनावट रखने योग्य है -

ज्योति प्रात, ज्योति रात
ज्योति नयन, ज्योति गात ।

जिसमें प्रकृति ही नहीं, मानवीय प्रणय को भी समेट लिया

" गायें ", " नाचे ", " माँजे ", " डाँटे ", " निपाटे ", " सँवारे " की क्रिया-प्रयोग गतिदता से परिवृत्तन और मनोपचारिकता को लक्षित किये जाते हैं ।

परवर्ती गीतों का यह अध्ययन उस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि निराला का रचनातीत व्यक्तित्व उतना विकृत और [illegible] नहीं हुआ, जैसा कि एक प्रचलित भ्रम इन परवर्ती गीतों के संबंध में फैला हुआ है, वरन् कवि का विराट् व्यक्तित्व भाषा के ठेठ प्रयोगों में, लोक-जीवन के अनुगत में अपना उन्मीलन ढूँढता है । एक बात और है - " गीतिका " के संस्कृतनिष्ठ गीतों में निराला ने गीत-सौष्ठव को एक निश्चित संभावना पर पहुँचा दिया था, किन्तु परवर्ती गीतों के प्रणयन के बिना हिन्दी भाषा की अपनी पकड़ के संस्पर्श से निराला वंचित रह जाते । कहना न होगा कि कवि की मानसिक अस्वस्थता के फलस्वरूप अनेक गीतों की अस्पष्ट भावभूमि और अभिव्यक्ति के बावजूद वे हिन्दी के गीतात्मक आत्मविश्वास की प्रतिष्ठा करने में कामयाब हुए हैं और इस तरह उन्होंने सहजता पर आधारित रचनात्मकता का एक और आयाम विकसित किया है ।

परिशिष्ट

(इस सूची में पुस्तकों के प्रयुक्त संस्करणों का उल्लेख है।)

(क) आधार रचनाएँ

१) अणिमा : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९७१ ई०।

२) अनामिका : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९६३ ई०।

३) अपराजिता : रामेश्वर शुक्ल अंचल, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५९ ई०।

४) अर्चना : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग, १९५२ ई०।

५) आँसू : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२५ वि०।

६) आधुनिक कवि (१) : महादेवी वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००६।

७) आधुनिक कवि (३) : रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २०११

८) आधुनिक कवि (९) : नरेन्द्र शर्मा : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९५७ ई०।

९) आधुनिक कवि (११) : रामेश्वर शुक्ल 'अंचल,' हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९५७ ई०।

१०) आराधना : सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, साहित्यकार संसद, प्रयाग, सं० २०१०

११) कानन-कुसुम : जयशंकर प्रसाद, भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२९ वि०।

१२) कामायनी : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२९ वि०।

१३) कुकुरमुत्ता : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं० २०२९ वि०।

१४) गीतगुंज : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सं० २०१९ वि०।

१५) गीतिका : सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला ", भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२१ वि० ।

१६) गुंजन : सुमित्रानन्दन पन्त, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २००३ वि

१७) ग्राम्या : सुमित्रानन्दन पन्त, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद सं० " ९७ वि० ।

१८) चित्राधार : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०१४ वि० ।

१९) झरना : जयशंकर प्रसाद, भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद सं० २०२६ वि० ।

२०) तारापथ : सुमित्रानन्दन पन्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६८ ई० ।

२१) तुलसीदास : सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला ", भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९७० ई० ।

२२) दीपशिखा : महादेवी वर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२२ वि

२३) नये पत्ते : सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला ", निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग, १९६२ ई०

२४) नीरजा : महादेवी वर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९७१ ई०

२५) नीहार : महादेवी वर्मा, साहित्य भवन प्रा० लि०, प्रयाग, १९७१ ई० ।

२६) परिमल : सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला ", गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, १९५९ ई० ।

२७) पल्लव : सुमित्रानन्दन पन्त, भारती भण्डार, इलाहाबाद

२८) प्रेम-पथिक : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २०२५ वि० ।

२९) बेला : सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला ", निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग, १९६ ई०।

३०) मधुकण : भगवती चरण वर्मा, ओझा बंधु आश्रम, प्रयाग, १९३२ ई०।

३१) युगवाणी : सुमित्रानन्दन पन्त, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० " ९९ ।

३२) युगांत : सुमित्रानन्दन पन्त, इन्द्र प्रिंटिंग वर्क्स, अल्मोड़ा, १९३६ ई० ।

३३) लहर : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २०२६ वि० ।

३४) सांध्य-काकली : सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला ", वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६९ ई० ।

(ग) आलोचनात्मक ग्रंथ

१) अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या : रामस्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, १९७२ ई० ।

२) आधुनिक हिन्दी कविता की भाषा : ब्रजकिशोर चतुर्वेदी, गया प्रसाद एण्ड संस, गयाकुंज, आगरा, १९५१ ई० ।

३) कवि निराला : नन्ददुलारे वाजपेयी, वाणीवितान प्रकाशन, वाराणसी, १९६५ ई० ।

४) कविता के नये प्रतिमान : नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली, १९६८ ई० ।

५) कामायनी का पुनर्मूल्यांकन : रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७० ई० ।

६) काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२६ वि० ।

७) क्रांतिकारी कवि निराला : बच्चन सिंह, प्रकाशक बच्चनसिंह, काशी, सं० २००४ वि० ।

८) खड़ीबोली का आन्दोलन : शितिकंठ मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१३ वि० ।

९) चिन्तामणि (१) : रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस प्रा० लि०, इलाहाबाद, १९६७ ई०

१०) छायावाद का काव्य-शिल्प : प्रतिमा कृष्णबल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९७१ ई० ।

११) जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २००७ वि० ।

१२) निराला : रामविलास शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी प्रा० लि०, १९६२ ई०

१३) निराला : आत्महंता आस्था : दूधनाथ सिंह, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७२ ई० ।

१५) निराला का साहित्य और साधना : विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९५५ ई० ।

१६) निराला की साहित्य-साधना (१) : रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७२ ई० ।

१७) पंत और पल्लव : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ १९६६ ई० ।

१८) पोएटिक डिक्शन : ओवेन बारफील्ड, फाबर एण्ड फाबर, १९५२ ई०

१९) पोएट्री एंड एक्सपीरियंस : आर्चिबाल्ड मैक्लीश, १९६० ई० ।

२०) प्रबंध- पद्म : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, १९६० ई० ।

२१) प्रबंध-प्रतिमा : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० ९७ वि० ।

२२) प्रिय-प्रवास : भूमिका : अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, २००० वि०।

२३) भाषा और संवेदना : रामस्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, १९६४ ई० ।

२४) लिटरेरी क्रिटिसिज़्म : ए शार्ट हिस्ट्री : विम्सेट तथा ब्रुक्स, आक्सफोर्ड पब्लिशिंग, कलकत्ता, १९५७ ई० ।

२५) लैंग्वेज पोएट्स यूज : विनिफ्रेड नोवोटनी, एथलोन प्रेस, १९६२ ई० ।

२६) साहित्य-दर्शन : जानकी वल्लभ शास्त्री, कला निकेतन, १९५७ ई० ।

२७) सेवेन टाइप्स ऑफ एम्बीग्विटी : विलियम एम्पसन, १९३० ई० ।

२८) स्कन्दगुप्त : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २०२४ वि० ।

२९) स्केप्टिसिज़्म एण्ड पोएट्री : डी० जी० जेम्स

३०) हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २००२ वि० ।

पत्र - पत्रिकाएँ

---

१) आलोचना : (जुलाई-सितंबर, १९७० ई०) (अक्टूबर-दिसंबर, १९७० ई०)

२) एनकाउण्टर : मार्च, १९७२ ई० ।

३) साप्ताहिक हिन्दुस्तान : ४ फरवरी, १९६८ ई० ।

४) साहित्य , अक्टूबर, वर्ष १, अंक ३, १९५० ई० ।